गुरमति संगीत की वादन परम्परा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

(तंत्री वाद्यों के संदर्भ में)

GURMAT SANGEET KI VADAN PARAMPRA KA VISHLESHNATMAK ADHIYAN (TANTRI VADHEON KE SANDHARB MEIN)

THESIS

SUBMITTED TO THE PANJAB UNIVERSITY, CHANDIGARH
FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY
IN THE FACULTY OF LANGUAGES

2006

SUBMITTED BY

REENA

DEPARTMENT OF GURU NANAK SIKH STUDIES
PANJAB UNIVERSITY,
CHANDIGARH

4.2 गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्य

1) रबाब : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

2) सिरंदा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

3) ताउस : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

4) दिलरूबा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

5) इसराज : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

6) तानपुरा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

7) सितार : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

5. पंचम अध्याय **275-301**

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण

5.1 गुरमति संगीत : वाद्य वर्गीकरण की संगीत वैज्ञानिकता

5.2 गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों की उपयोगिता व महत्त्व : संगीत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वैज्ञानिक विश्लेषण

Acknowledgement

गुरू गोबिन्द दोऊ खडे, काके लागूं पायें

बलिहारी गुरू आपने, जिन गोबिन्द दीयो मिलाये।

गुरू की कृपा हो तो एक अल्प बुद्धि भी गोबिन्द से मिल सकता है। इसलिये गुरू का स्थान परमात्मा से भी उँचा है। मैं गुरूओं को नमन करती हूँ। यह शोध कार्य भी गुरू की कृपा से ही पूर्ण हुआ है।

माननीय डा० दर्शन सिंह, भूतपूर्व अध्यक्ष गुरू नानक सिक्ख स्टडीज, प्रो० एमेराइटस, पंजाब यूनीवर्सिटी चण्डीगढ की प्रेरणा व मार्गदर्शन से ही यह शोध कार्य सम्भव हो पाया है। उनके स्नेहिल नम्र और उत्साहित करने वाले स्वभाव के फलस्वरूप यह कार्य अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ है।

माननीय डा० गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत विभाग, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला, से न केवल शोध की प्रेरणा मिली अपितु प्रत्येक कार्य में मागदर्शन व सहायता मिली है। उनके गहन अध्ययन व चिन्तन से यह शोध कार्य भरपूर रूप में लाभान्वित हुआ है। गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों के विषय में अध्ययन करने की प्रेरणा व प्रोत्साहन उन्हीं से मिला है।

माननीय डा० अमृत पाल कौर अध्ययक्ष पंजाबी विभाग, पंजाबी यूनीवर्सिटी पटियाला के भी समय समय पर उचित मार्गदशन से कार्य समपन्नता में सहयोग मिला है। मैं उनकी अति आभारी हूँ।

मैं प्रो० जसपाल कौर कंग अध्ययक्ष गुरू नानक सिक्ख स्टडीज़, पंजाब युनीवर्सिटी चण्डीगढ़ की अति आभारी हूँ। जिन के सहयोग व योग्य अगवाई से यह कार्य पूर्ण हुआ है।

प्रत्येक बार रूके हुए कार्य को पुन: एक नये उत्साह के साथ आरम्भ करने की प्रेरणा अपनी माता श्रीमति रमा शर्मा से प्राप्त हुई। अपने गुरूओं के पश्चात् अपनी माता को नमन करती हूँ। जिनके बिना यह शोध कार्य कभी सम्भव नहीं हो पाता। इस शोध कार्य की सभी त्रुटियाँ मेरी अल्प बुद्धि का परिणाम है व इस शोध कार्य के विशिष्ट तत्व मेरे गुरूओं की देन हैं।

तिथि:- 26.12.2006

Reena.

रीना

प्राकथन

सिक्ख धर्म में प्रचलित शब्द कीर्तन परम्परा के समूच्चे संगीतिक विस्तार को हम गुरमति संगीत के रूप में पहचानते हैं। गुरमति संगीत परम्परा को अपने सिद्धान्तिक और व्यवहारिक प्रचलन हैं। इस परम्परा का आरम्भ सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरू नानक देव जी द्वारा हुआ है उन के बाद समूह गुरू साहिबान ने इस परम्परा को अपनी अगवाई और सरपरस्ती में विकसित किया । श्री गुरू अर्जुन देव जी नी श्री गुरू साहिबानों और संतों भक्तों की वाणी को भिन्न भिन्न गायन शैलियों के अन्तर्गत अंकित किया। यह ग्रन्थ संगीत के भिन्न-भिन्न तथ्यों को इकाईयों से संकलित किया हुआ है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न संगीतिक तत्त्व और इकाईयाँ, शब्द कीर्तन सम्बन्धी फुरमान गुरमति संगीत का सिद्धान्त सृजन करते हैं। इसके साथ ही गुरमति संगीत की एक विशाल व्यवहारिक परम्परा भी मौजूद है। जिसमें गुरमति संगीत की राग परम्परा शास्त्रीय और लोक गायन शैलियाँ की परम्परा पर कीर्तन हित भिन्न भिन्न वाद्यों की परम्परा विद्यमान हैं।

गुरमति संगीत की यह भिन्न-भिन्न परम्पराएं स्वतन्त्र अध्ययन और विश्लेषण की समर्था रखती है। हम अपने अध्ययन के लिये गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों की वादन परम्परा का आपने खोज का विषय चुना है। गुरमति संगीत की वाद्य परम्परा को इतिहासिक संदर्भ में अध्ययन करें तो श्री नानक देव जी द्वारा रबाब का प्रचलन, गुरू राम दास जी और गुरू अर्जुन देव जी द्वारा संरदे का प्रचलन, श्री गुरू हर गोबिन्द सिंह जी के काल में ताऊस, इसराज और सारंगी का प्रचलन श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी

के काल में तंबूरे का प्रचलन, गुरमति संगीत में तन्त्री वाद्यों की परम्परा को प्रत्यक्ष कर रहा है।

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों के संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण के लिये हमने अपने शोध कार्य को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

1. हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य व उनकी उपयोगिता
2. गुरमति संगीत की उत्पत्ति एवं विकास
3. गुरमति संगीत प्रबन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन
4. गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्य
5. गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण

हमारे शोध कार्य का प्रथम अध्यय हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य व उनकी उपयोगिता है। इस अध्याय में हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा में प्रयुक्त भिन्न -भिन्न वाद्यों का अध्ययन करने से पहले इसकी पृष्ठ भूमि सम्बन्धी अध्ययन किया जायेगा। इसी तरह हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्यों के वर्गीकरण इन की व्यवहारिक उपयोगिता, वादन परम्परा और वाद्यों के आन्तिरिक सम्बन्ध को इन के सौंदर्यात्मक आधार और संदर्भ में विश्लेषित किया जायेगा।

हमारे शोध कार्य का दूसरा अध्याय, गुरमति संगीत की उत्पति एवं विकास है। गुरमति संगीत में प्रयुक्त किये गये तंत्री वाद्यों के अध्ययन के लिये आवश्यक है कि इस परम्परा की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन करते हुए विभिन्न गुरूओं के काल में इन वाद्यों का प्रचलन और एतिहासिक पृष्ठभूमि को जाना जाये।

गुरमति संगीत प्रबन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन हमारे शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय होगा। इस अध्याय में गुरमति संगीत के सिद्धान्तों की ईकाईयों की व्याख्या करते हुए इस परम्परा के मूल स्रोत्र श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के राग गायन रूपों , शब्द कीर्तन, कीर्तन चौंकियां, परम्पराओं सम्बन्धी विस्तृत विश्लेषण किया जायेगा। जिस से तंत्री वाद्यों के प्रयोग के लिये यह आधार प्रत्यक्ष हो सकता है।

हमारा मूल विषय क्योंकि तंत्री वाद्यों पर आधारित है, इस के लिये हम अपने शोध कार्य के चतुर्थ अध्याय में गुरमति संगीत में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न वाद्यों के अध्ययन और विश्लेषण के उपर केन्द्रित करने का यत्न किया है। इसमें गुरमति संगीत के वाद्य वर्गीकरण की पेशकारी करते हुए भिन्न-भिन्न वाद्यों को इनकी उत्पत्ति स्वरूप और वादन विधि का परिपेख में अध्ययन का विषय बनाया जायेगा। हमारे शोध कार्य का विषय गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों की संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण है। अन्तिम पाँचवे अध्याय में हम गुरमति संगीत के वाद्यों की वाद्य वर्गीकरण के संदर्भ में संगीत वैज्ञानिकता का अध्ययन करेंगे। अपने अध्ययन विषय की पूर्ति के लिये गुरमति संगीत के तंत्री वाद्यों की उपयोगिता और महत्व का वैज्ञानिक विश्लेषण खोज सामग्री द्वारा भी यही यत्न किया है। कि गुरमति संगीत के तंत्री वाद्यों की गुरमति संगीत के मूल विधान और प्राकृति के संदर्भ में उपयोगिता और महत्त्व को स्पष्ट किया जायेगा। इस शोध कार्य में सहायक हुए है उन का बहुत बहुत धन्यवाद है। हम इस कार्य के प्रकाशन को सम्पन्न करने में सहायक सृहदय व्यक्तियों के भी ऋणि है।

प्रथम अध्याय

हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य व उनकी उपयोगिता

1.1 हिन्दोस्तानी संगीत : गायन, वादन, नृत्य (एतिहासिक दृष्टि से)

1.2 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा : परिचयात्मक एवं एतिहासिक अवलोकन।

1.3 हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य ।

1.4 हिन्दोस्तानी संगीत का वाद्य वर्गीकरण ।

1.5 हिन्दोस्तानी संगीत में वाद्य : व्यवहारिक उपयोगिता ।

1.6 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा एवं वाद्य : आन्तरिक सम्बन्ध ।

1.7 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा के सौदंर्यात्मिक आधार ।

हिन्दोस्तानी संगीत में गायन, वादन और नृत्य तीन शाखाएं हैं। गायन, वादन और नृत्य को परस्पर सम्बन्धित माना गया है :

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्विच

अतो गीतं प्रधानत्वादत्रादा व भिधीयते ।। (संगीत रत्नाकर)

अर्थात तीनों कलाओं में से गायन को ही प्राथमिकता दी गई है। गायन में स्वर, ताल, शुद्ध उच्चारण, हाव-भाव और शुद्ध मुद्रा का प्रयोग सम्यक प्रकार से होता है।[1]

गायन, वादन व नृत्य यद्यपि एक दूसरे की पूरक कलाएं हैं परन्तु आधुनिक युग में नृत्य कला को अलग परिभाषा दी गई है। हालांकि नृत्य में भी गायन व वादन की आवश्यकता रहती है। गायन वादन व नृतन में पारस्परिक सम्बन्ध होने का मूल कारण उनमें प्रयुक्त आधार तत्त्व हैं। इन तीनों कलाओं में मूल तत्त्व स्वर तथा लय है। जो नाद और गति के रूप हैं। गायन, वादन व नृत्य में यह तत्व भिन्न परिमाण में पाये जाते हैं। गायन में स्वर और लय के साथ-साथ शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। काव्य की विशेषताएं गायन कला में आने के कारण गायन अधिक सार्थक व व्यापक बन जाता है व उसकी उपयोगिता मानव के लिये बढ़ जाती है। उपकरणों की न्यूनता, सर्वप्रियता एवं उपयोगिता के कारण संगीत में गायन को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ''नाट्य शास्त्र के अनुसार गीत नाटक के प्रमुख अंगों में से एक है तथा वादन तथा नर्तन उसके अनुगामी हैं।'' (नाट्य शास्त्र 4, 260, 65)[2]

---

1. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 15.
2. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 15.

गायन वादन व नृत्य प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत का अभिन्न अंग रहे हैं। कालीदास के मेघदूत में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों को आवश्यक कहा गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गीत, वाद्य, नृत्य तथा नाट्य का उल्लेख सहचरी कलाओं के रूप में हुआ है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वाद्य तथा नृत्य को गीत का अनुवर्ती माना गया है तथा नृतकला के लिये गीत तथा वाद्य का ज्ञान आवश्यक कहा गया है।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में 'गन्धत्व वेद' के अर्न्तगत गीत (गायन), वादित्त (वादन), नच्च अर्थात नृत्य, नाट्य तथा अख्यानम् अर्थात कथा पठन का समावेश है। समाज, सम्मद जैसे प्राचीन लोकोत्सवों से लेकर अद्यतन लोकोत्सवों तक गीत – वाद्य – नृत्य के सहचर्य की परम्परा बराबर उपलब्ध है। प्राचीन शिल्पों तथा भित्ति चित्रों में इन तीनों का साकार दर्शन उपलब्ध होता है।[3] संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि से वादन कला संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि कला है। इसमें स्वर और लय का ही स्थान रहता है। इसमें न तो काव्य की आवश्यकता है और न ही अंगों के संचालन की। ''इस प्रकार वाद्य कला गायन और नृत्य से अधिक सूक्ष्म और आकृत्रिम आनन्द प्रदान करने वाली होती है।''[4]

भारतीय संगीत में आरम्भ से ही वादन कला को गायन व नृत्य के साथ प्रयोग किया जाता था। ऋगवेद में दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा

---

3. शरच्चन्दं श्रीधर परांजपे, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 52

4. लालमणि मिश्र *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 15

आघाटि इत्यादि वाद्यों का उल्लेख पाया जाता है, जो गायन के साथ सहचर्य बनाये रखने के लिये आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किये जाते रहे होंगे।[5] हिन्दोस्तानी संगीत में वादन कला को दो रूपों में प्रयुक्त किया जाता है, समूह वादन व एकाकी वादन। समूह वादन में गायन या नृत्य के साथ वाद्यों को प्रयुक्त किया जाता है। इनमें वादन का प्रयोग गायन या नृत्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये किया जाता है। इसके इलावा गायक के स्वर की शुद्धता को परखने के लिये भी गायन के साथ वादन का प्रयोग आवश्यक रहता है। वादन के साथ गायन करने से गायक अपने स्वर से भटकता नहीं है। इस कारण हिन्दोस्तानी संगीत में गायन के समय तानपूरे का प्रयोग आवश्यक रहता है।

वादन कला का दूसरा रूप एकांकी वादन है। इसमें भिन्न वाद्यों का एकाकी वादन किया जाता है। इनमें तन्त्री वाद्य, सुषिर वाद्य यहाँ तक की अवनद्ध वाद्यों का भी एकांकी वादन किया जाता है। तन्त्री वाद्य व सुषिर वाद्यों के साथ गति नापने के लिये अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होता है। एकांकी वादन का प्रचलन भी शायद इसी कारण हुआ होगा क्योंकि वादन कला मानव मन के भावों को व्यक्त करने में अधिक सर्म्थ है। क्योंकि इसमें न तो शब्दों की आवश्यकता है और न ही नृत्य की। ''चाहे वादन कला अधिक सूक्ष्म और शब्दों के न रहने के कारण सामान्य-जन की समझ से परे है परन्तु दूसरी ओर अबोध शिशुओं और मानवेतर प्राणियों के लिये आकर्षण का प्रबल

---

5. वसंत (संपा. लक्ष्मी नारायण गर्ग) *संगीत विशारद,* पृ. 252.

केन्द्र है। वादन के द्वारा अद्‌भुत स्वर तथा लय का आनन्द प्राणी मात्र की निधि है।''[6] एकांकी वादन के कारण वाद्यों को और अधिक उत्तम व संशोधित करना भी आवश्यक हो गया होगा। वाद्यों में गले की खूबियों को निकालना और उनसे मानव मन की भावनाओं को व्यक्त करना, उनमें चल रहे निरन्तर परिवर्तनों का कारण है। नृत्य कला में भी संगीत के दो मूल तत्वों स्वर व लय का प्रयोग होता है। हिन्दोस्तानी संगीत में नृत्य कला के साथ वादन आवश्यक रहता है। नाट्य-शास्त्र में भी नर्तन के अर्न्तगत वादन व गायन को अभिन्न अंग बताया गया है। यद्यपि वादन की इसमें प्रधानता रहती है। ''महर्षि भरत ने नर्तन के तीन भेद कहे हैं जिन्हें नृत्त, नृत् और नृत्य कहा है। इसमें नृत तो नाट्य है, नृत्त् में नाट्य का प्रभाव कम होकर संगीत का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है और नृत्य में सगीत का प्रभाव अधिक बढ़ जाता है और नाट्य गुण अंगीभूत होकर रह होते हैं। नृत्य करते समय यद्यपि गान एवं वाद्य-वादन का विधान उपलब्ध होता है किन्तु इस प्रक्रिया से नृत्य में स्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव संगीत की दृष्टि से नृत्य एकांगी है, अर्थात केवल गति अथवा लय पर आधारित है।''[7] नृत्य को न तो पूर्ण रूप से संगीत माना जा सकता है और न ही नृत्य को नाटक माना जा सकता है इसलिए इसे स्वतन्त्र कला के रूप में ही स्वीकार करना ठीक होगा। नृत्य को संगीत के अर्न्तगत न रखते हुए एक स्वतन्त्र कला मानना ही अधिक उपयुक्त लगता है। परन्तु नृत्य गायन और वादन के बिना पूर्ण नहीं हो

---

6. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 9

7. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ0 9

सकता। परन्तु वादन, नृत्य और गायन के बिना भी पूर्ण हो सकता है। गायन अथवा कण्ठ संगीत में काव्य के साथ-साथ वादन भी अति आवश्यक है। ''कण्ठ संगीत में स्वर एवं लयतत्त्व के साथ-साथ काव्य का संयोग कम या अधिक मात्रा में होता है, नृत्य संगीत में लय तत्त्व के साथ अंग-संचालन के रूप में नाट्य का योग होता है, किन्तु वाद्य संगीत में केवल स्वर तथा लयतत्व ही होते हैं। वाद्य कला किसी अन्य कला का आश्रय नहीं लेती।''[8]

हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा : परिचयात्मक एवं इतिहासिक अवलोकन –

हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा, प्राचीन एवं सदृढ़ पृष्ठ भूमि पर निर्मित एक विशाल परम्परा है। जिसे संगीत वादकों ने सदियों के विकास द्वारा विशिष्ट व मौलिक भारतीय स्वरूप में विकसित किया है। हिन्दोस्तानी संगीतात्मक परम्परा के बारे में इतिहासिक अवलोकन से पहले इसकी पृष्ठभूमि के विषय में जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय संगीत के संदर्भ में हिन्दोस्तानी संगीत की पृष्ठभूमि के मूल्यांकन का प्रारम्भ हम भारतीय संगीत के एतिहासिक विकास से आरम्भ करते हैं। भारत का प्राचीन इतिहास ई० पू० 3500 के लगभग शुरू होता है। इस काल का कोई इतिहास

---

8. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ0 9

न मिलने के कारण इसे अन्धकार युग कहा गया है। इस युग को इतिहास कारों ने चार भागों में बांटा है। पूर्व पाषाण काल, उत्तर पाषाण काल, ताम्र काल व लौहकाल।

पूर्व पाषाण काल के लोगों ने पत्थरों को काट कर दो चौकोर मंजीरे जैसे वाद्यों को बनाया। वह गाते समय इस वाद्य को साथ बजाया करते थे। इस पाषाण वाद्य का नाम 'अग्सा' था।[9] पूर्व पाषाण काल के लोग इसे बजा कर विचित्र स्वरों का आन्नद लेते थे। ऐसा कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलता जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस काल में किसी वाद्य का प्रयोग होता था अथवा नहीं। उत्तर पाषाण काल के लोगों को अन्य लोगों ने आकर परास्त कर दिया। उन लोगों के काल को ताम्रकाल कहा जाता था। ''इस युग में संगीत को धार्मिक स्वरूप प्राप्त था। वासतव में संगीत को धार्मिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय इसी युग के लोगों को दिया जा सकता है।''[10] लौहकाल में पामीर पर्वत से जाति भारत में आई। यह लौहे के औजार व हथियार प्रयोग में लाते थे। उन्होने संगीतिक वाद्य भी बनाया। परन्तु वह वाद्य अधिक प्रचलित नहीं हो पाया। अन्धकार युग के वाद्य निर्माण के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिल पाती। परन्तु उसके बाद की सभ्यताओं में अवश्य ही संगीत वाद्यों का निर्माण व उनकी वादन परम्परा अधिक प्रपफुल्लित होती रही। ''आर्यों की सभ्यता में लोग बाँसुरी, नगाड़े व तंत्री वाद्यों को बजाने में दक्ष हो गये थे।''[11]

---

9. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ0 45
10. सुनीता शर्मा (डा.) *भारतीय संगीत का इतिहास : आध्यात्मिक एंव दार्शनिक,* पृ. 30
11. In recent excavations, archeologists have discovered that the people of very early Indust Valley probably pre-aryan, civilization were skilled in the playing of flutes, primitive drums and stringed instruments known generically as veenas which were something like lutes. Ravi shankar, *My music My life,* Page 19

एक चित्र में एक ने डमरू जैसा वाद्य उठाया हुआ है। इसके इलावा मिट्टी की बनी सिट्टीयां भी मिली हैं। नगाडे व वीणाओं के भी चित्ररूप मिलते हैं।[12] सिन्धु घाटी की सभ्यता से अस्थीयों से बनी हुई विकृत वंशी, वीणा और चमड़े से मढ़े हुये वाद्यों के नमूने मिलें हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता में वादन का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा। चमड़े से मढ़े हुये मृदंग जैसे वाद्यों की मूर्तियों से प्रमाणित होता है कि उस समय में लय वाद्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। ऐसे वाद्यों को गले में डाल कर भी बजाया जाता था।

''उस काल में वाद्यों का प्रयोग संगीत की सभी कलाओं के साथ होता था। तत्कालीन एक सिक्के पर नृत्य का दृश्य है। पर चर्म वाद्य की ध्वनि के साथ नृत्य लयात्मकिता दृष्टिगोचर होती है। हड़प्पा के एक सिक्के पर शेर को चर्म वाद्य की लयात्मिक ध्वनि के साथ वश में करने का यत्न अंकित है। एक अन्य सिक्के पर मानव आकृति के गले में चर्म वाद्य झूल रहा है।''[13] खुदाई से प्राप्त कलात्मक आकृतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय में धार्मिक व लौकिक संगीत समारोहों में गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामूहिक प्रयोग होता था। ''गीत तथा नृत्य के

---

12. The Indus civilization, first discovered at mohenjodaro and Harappa, but now known to extend to far flung sities reveals itself from about 3000. B.C.The musical Instruments so far excavated or seen in the pictographs are not many, Castanets and cymbals have been found, a statutte of a woman carrying what looks like a damaru has been unearthed, also whistles made a clay. Seals and heiroglyphs show long drums and harps. All these lead to the inference that the music of those days was not very elaborate.
B.C. Deva, *Musical Instruments* Page 14, 15

13. Lakshaman Sawroop, *The Rigveda and Mohan Jodaro, Indian culture, Page 153.*

साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्य बजाये जाते थे। चीनी मिट्टी की एक मुद्रा में एक पुरूष को व्यघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुये अंकित किया गया है। हड़प्पा से प्राप्त एक अन्य तावीज में वाद्य के सम्मुख ढोल बजाये जाने के दृश्य हैं। उस समय में ढोल के साथ-साथ तार वाद्य भी प्रचलित थे। दो मुद्राओं पर मृदंग जैसी वस्तुएं अंकित हैं। ढोल का चित्रण भी एक दूसरी मुद्रा पर है। इनमें एक स्त्री ढोल को बगल में दबाये हुए हैं।''[14] ऐसा माना जा सकता है कि उस समय लय वाद्य व तार वाद्यों का प्रयोग सामूहिक रूप में होता था। गीत और नृत्य में लय वाद्यों का प्रयोग आवश्यक माना जाता रहा होगा। धन वाद्यों को भी इन में शामिल किया गया होगा। ''एक अन्य स्थान पर ढोलक की आकृति के वाद्य को मृणमयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता हुआ दिखाया गया है। झाँझ तथा करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलब्ध हैं। ऐसे वाद्यों का प्रयोग सम्भवत: नृत्य की लय को सूचित करने के लिये किया जाता रहा हो।''[15] सिन्धु वाद्यों सभ्यता की वादन परम्परा अवश्य ही उन्नतिशील रही होगी। सभी प्रकार के वाद्यों का प्रयोग उस काल में होता था। वीणा के साथ-साथ वंशी जैसे वाद्य भी अनेक मूर्तियों पर अंकित है। ''मुद्राओं तथा ताबीजों के दृश्यों में अनेक ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें वीणा का रूप माना जा सकता है। धनुषाकार वीणा तथा अन्य वंशी जैसे वाद्य उपलब्ध है।''[16] पाकिस्तान में स्थित हड़प्पा और मोहनजोदाड़ों की खुदाई सन् 1922-23 में हुई । जिसके द्वारा हमें उस काल संगीत वाद्यों के बारे में पता चलता है। ''मोहनजोदाड़ों की

---

14. स्वतन्त्र शर्मा (डा.) *भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण,* प्रथम संस्करण 1988, इलाहाबाद, पृ. 11
15. वही
16. वही

खुदाई में से प्राप्त अनेक मोहरों में से एक पर 'हार्प' अंकित है। यह तार वाद्यों में सबसे ज्यादा बजाया जाता था। एक दूसरे शिलालेख पर मृदगं पर खेलता हुआ व्यक्ति अंकित है। जिससे सिद्ध होता है है कि उस समय के लोगों में वाद्य संगीत कीं बड़ी अभिरूचि थी।''[17]

मोहनजोदाड़ों और हड़प्पा की खुदाई में से प्राप्त मोहरों और प्राचीन नगरों के भाग्यवशेषों को चित्रों द्वारा प्रकट किया गया है। एक चित्र पशुपति की मोहर है। आदमी मृदंग वादन कर रहा है। उसके चारों ओर कुछ पशु बैठे हैं। इससे यह जानकारी मिलती है कि उस समय के लोग मृदंग जैसे तालवाद्यों को बजाकर पशुओं को आनन्दविभोर करना जानते थे।[18]

एक नृत्य करती हुई बालिका का चित्र है। इस चित्र से प्रकट होता है कि मोहनजोदाड़ो और सिन्धु घाटी के लोग संगीत और वाद्य कलाओं में निपुण थे।[19]

वैदिक काल : भारत की संस्कृति के इतिहास में वैदिक युग सबसे प्राचीन माना जाता है। इस युग में चार वेद रचे गये। ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद व सामवेद। ऋगवेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें रचित मन्त्रों को ऋचा कहते हैं। सामवेद में मंत्रों का गेय रूप उल्लेखित है। ''सामवेद में वाणी को समस्त बह्मण्ड के समकक्ष

---

17. राव अवतार वीर, *भारतीय संगीत,* पृ. 27
18. वही, पृ. 31
19. वही, पृ. 32

माना गया है। ऋगवेद में वाणी एवं ब्रह्म की एकरूपता अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होती है।''[20]

वैदिक काल में संगीत को अनिवार्य समझा जाता था और संगीत को धार्मिक कर्मकाण्ड के लिये अवश्यक बना दिया गया था। ऐसा माना जाता था कि संगीत के द्वारा राक्षी एवं पापों का नाश होता है।[21]

सामवेद से गन्धर्व वेद की उत्पत्ति हुई और गन्धर्व वेद से सोलह हजार राग-रागिनियों का निर्माण हुआ।[22]

वैदिक काल में रचित उपनिषदों के द्वार भी उस काल के संगीत की स्थिति स्पष्ट होती है। उपनिषदों में गीत, वाद्य तथा नृत्य से प्राप्त आनन्द को आलौकिक माना गया है। 'छान्दोश्योपनिषद् में उद्गीथोपासना की विधि का उल्लेख मिलता है। इस विधि के अनुसार उद्गीथ अर्थात ओम् अक्षर अथवा सामवेद के दूसरे भाग का वीणा-वादन के साथ गान करते हुए ब्रह्म-चिन्तन करने का उपदेश है।[23]

–वीणा नाम अलाबु वीणा त्रितंत्रि : सप्ततिशततीन्तरित्यादीनां गण वीणागणः।

तेन वीणागण संघा तेन ये गायन्ति शब्दयन्ति ते वीणगणनाः ।

ते शिष्यभ्ता येषां गायनाचार्यादीनां सन्ति वे वीणागणः ।

---

20. सुधिकान्त भारद्वाज, *वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,* भाग 2, पृ.8
21. बलबीर आचार्य, (डा.) *ऋगवेदीय ब्राह्मणों का संगीतिक अध्ययन,* पृ. 183
22. वाचस्पति गैरोला, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* पृ. 94
23. कान्तिचन्द्र पाण्डेय (डा.) *स्वतन्त्र कला शास्त्र,* पृ. 473

अर्थात जो आचार्य अपने शिष्यों को तीन, सात या सौ तारों वाली वीणा का वादन सिखाता है, वही वास्तव में गुरू है और वही गुरू बनने के योग्य है। वैदिक काल में भिन्न प्रकार की वीणाएं प्रचलित थीं, जिनमें तारों की संख्या अलग- अलग रहती थी। 'बाण' नामक वीणा सबसे अधिक प्रचलित थी। इस वीणा की विशेषता उसमें लगे सो तारों के कारण थी जिसकी तुलना पुरूष की सौ वर्ष की आयु से की गई है। महाव्रत यज्ञ के अवसर पर इस वीणा का वादन इसके धार्मिक महत्त्व है। सोमस्तुति के समय ऋषिगण इसी बाण नामक वाद्य का वादन करते एवं साथ ही गायन भी करते थे। 'बाण' नामक वाद्य का वादन सप्त स्वरों द्वारा होता था। इसकी पुष्टि विश्वदेव की स्तुति के अवसर पर बजने वाले 'बाण' के उल्लेख से हो जाती है। (ऋगवेद, 10, 32, 4)[24]

वैदिक काल में गायन, वादन के साथ-साथ नृत्य का भी प्रचलन था। ''ऋगवेद में दुंदुभि, वाण, नाडी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा अघाटि इत्यादि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। जो गान के साथ प्रयुक्त किये जाते थे।''[25]

वैदिक काल में संगीत वाद्यों की विशाल पृष्ठभूमि रही है। सभी तरह के वाद्य प्रकार वैदिक काल के समय प्रयुक्त होते थे। वीणा, वेणु, काहल, पटह, मुरज, मृदङ्ग,

---

24. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 8
25. के. वासुदेव शास्त्री, *संगीत शास्त्र,* पृ0 78

कांस्य आदि वाद्य वैदिक काल में थे। वेदों के अनुसार यज्ञ करते समय वीणा-वादन के साथ सामवेद का गान होता था। सामवेद में मन्त्रोचारण के साथ बजाई जाने वाली वीणाओं के दस प्रकार थे। अघाटी, पिच्छोला, कर्कटिका, अलाबु, वक्रा, कपिशीर्षणी, शील वीणा, महावीणा, काण्डवीणा तथा बाण । इनमें से अघाटी वीणा लोह शलाका से बजाई जाती थी। कर्कटिका में दो तन्त्रीयां व अलाबु वीणा में कद्दु लगा रहता था। वक्रा आकार में वक्र व कपिशीर्षणी वीणा बन्दर के सिर के समानहोती है। सामगायकों और उनकी स्त्रियों के द्वारा भी वीणा बजायी जाती थी। नारदीय शिक्षा में वेणु वाद्य स्वरों की तुलना सामगायकों के स्वरों से की गयी है।

"पस्समगानां प्रथमः स वेणोर्भध्यस्वरः"(नारदीय शिक्षा)[26]

नारद और स्वाति मुनि के पश्चात् भरतमुनि ने वाद्यों का वर्णन किया है: इसका उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है:

मृदङ्ग पणवानाञ्च दर्दुरस्य तथैव च।
गान्धर्वञ्चैव वाद्याञ्च स्वातिना नारदेन च ।
विस्तार गुणसम्पन्न मुक्तं लक्ष्णकर्मतः।
अनुवत्या तना स्वतेरातोद्यानां समासतः ।
पौष्कराणः प्रवक्ष्यामि निर्वृन्तिं सम्यवं तथा।' (33 श्लोक 2-4)

---

26. वही

'गन्धर्वमेतत् कथितं मया हि,

पूर्व यदुक्त त्विह नारदेन ।

कुर्याद्य एवं मनुजः प्रयोगं,

सम्मान योग्यः कुशलेपु गच्छेत।'

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 32 श्लोक 478)

इसका तात्पर्य यह है कि ''स्वाति और नारद ने मृदङ्ग, पणव, दर्दुर आदि अवनद्ध वाद्यों, तन्त्रीवाद्यों और अन्य वाद्यों के भी विस्तारपूर्वक सुस्पष्ट लक्ष्ण और वादन क्रम बताये हैं। उनका अनुसरण करके मैं भी पुष्कर (तीन मुख युक्त अवनद्ध वाद्य) आदि गद्यों की उत्पत्ति, बनाने का क्रम और वादन क्रम बताऊँगा।''[27]

नाट्य शास्त्र के 33वें अध्याय में पुष्कर, पणव, दर्दुर, मुरज, झल्लरी, पटह आदि के वादन क्रम उनमें बोलने वाले अक्षर इत्यादि अवनद्ध वाद्यों के विवरण के रूप में विस्तारपूर्वक दिये गये हैं। ''वैदिक काल में आघाती, दुन्दुभि, भूं दुन्दुभि वानस्पति आदि अवनद्ध वाद्य, सुषिर में तुणव और नादि और तन्त्री वाद्यों में वाण, काण्ड व गोधा वीणाएं प्रयुक्त की जाती थी।''[28]

उस काल में वीणा एक प्रमुख वाद्य था। वीणाओं के अनेक नाम प्रचलित थे - जैसे महत्ती, पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत्त - कोकिला - औदुम्बरी घोषवती, सैरंध्री

---

27. के. वासुदेव शास्त्री, *संगीत शास्त्र,* पृ. 84

28. In Vedic period there was the aghati, probably a cymbal. Drums such as the bhoomi dundubhi, dundhubi, vanaspati were used. Among the flutes were the toonava and the nadi, Among veenas were the vana, the Kanda, the godha and others. B.C. Deva, *Musical Instruments,* Page 16.

– जया, जेष्ठा, कच्छपी कुन्जिका।[29] उस काल में वीणा के निर्माण में तीन बातों का ध्यान रखा जाता था। सारणा, घोड़ी, नखी तथा घोड़े के केश की तारें । उस समय चमड़े का भी उपयोग वाद्य को बनाने में होने लगा था। वीणा की प्रगति 'बाह्मण', 'आरण्यक' और सूत्र काल में ज्यादा हुई।

रामायण काल : रामायण की रचना उत्तर वैदिककाल में असाधारण, अमूल्य एवम् महत्त्वपूर्ण घटना है। महर्षि बाल्मीकि ने 500 ई0 में रामायण की रचना की थी। उस काल में संगीत के लिए अन्य संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता था। इस काल के संगीत के लिये गान्धर्व संज्ञा का प्रयोग हुआ है। संगीतज्ञ को गान्धर्व – तत्वज्ञ कहा जाता था। इसमें विभिन्न प्रकार की मर्यादाओं से बद्ध संगीत – शास्त्रों को गन्धर्वम कहा गया है। इस काल में राजा तथा प्रजा सभी संगीत के परम पोषक थे।[30] रामायण में गायन या गीति, वादन के लिये वादित्र और नृत्य के लिये गीतम् नृत्यम् चा वाद्यम् चा कहा गया है।[31] गायन में वीणा वादन के बहुत महत्त्व था इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं :

– पाठये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभि: सप्तभियुत्तफं तन्त्रीलयसमन्वितम्।।

– बाल्मीकि रामायण, पृ0 1, 4, 7

अर्थात गायन मधुर हो, तीनों प्रमाणों अथवा लयों (द्रुत, मध्य, विलंबित) से युक्त हो, सात जातियों से युक्त हो, वीणा वादन की लय से मिला हुआ हो।[32]

---

29. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 74
30. अमलदास शर्मा, *विश्व संगीत का इतिहास,* पृ. 17
31. Music was known by the name of Gandharavam or Sangitam. The Science of music was called 'Gandharava Tattva'. Music included geeti or vocal music, vaditra or instrumental music and Nritya or dancing, 'Gitam, Nritam cha vadyam cha.' - Ibid, P- 59
32. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 84

गायन के साथ कोई तंत्री वाद्य अथवा वाद्य आवश्य रहता था। 'रामायण में लव-कुश का गायन विद्या में निपुण, स्वर, ताल, मूर्च्छना स्थानादि के तेत्वज्ञ के रूप में उल्लेख हुआ है। ये सभी संगीत के आधारभ्त तत्व होते हैं।

लव और कुश के द्वारा वीणा के साथ गायन करने का उल्लेख रामायण में मिलता है।[33]

शंख, दुन्दुभि, सुघोषा और अनेक प्रकार के वेणु वाद्यों का प्रयोग होता था। सभी वाद्यों के सामूहिक वादन को 'तूर्य' कहा जाता था। वाद्यों को आतोद्य या वादित्र कहा जाता था। बाल्मीकि रामायण में वीणा, विपंची, मृदंग, मड्डक, पटह, पणव, डिंडिम तथा आडम्बर आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। वीणा के अनेक प्रकारों में विपंची तथा वल्लकी भी रामायण काल में प्रयुक्त किये जाते थे। उस काल में वीणा सबसे ज्यादा लोकप्रिय वाद्य था। अवनद्ध वाद्यों में मुरज, चेलिका, दुन्दुभि आते थे। तत वाद्यों को बजाने के लिये 'कोण' का प्रयोग किया जाता था। लय वाद्यों में भेरी, मृदंग, मडरूक, डिणडिम, दुन्दुभि, मुरज, पणव व पटह का भी प्रयोग किया जाता था। घन वाद्यों के अन्र्तगत, स्वसतिक, घण्टा, ताल या करताल आते थे।[34]

तत वाद्यों में वीणा के विपंची प्रकार का महत्त्वपूर्ण स्थान था। नाट्य शास्त्र में विपंची को नौ तारों वाली वीणा बताया गया है। रामायण में वीणा वादन की विधि भी

---

33. "Lava and Kusha chanted the Ramayana in the presence of their father to the accompaniment of the cellestical vina which was taught them by sage valmiki, the author of metrical composition in sanskrit." S.M. Tagore, *Universal History of Music,* Page 52.

34. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 92

बताई गई है। वीणा को कोण या नाखूनों से बजाया जाता था। उत्तर काण्ड में इसका उल्लेख मिलता है :

इमास्तंत्री सुमधुराः स्थानं व पूर्वदर्शनम।

मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ।।

वीणा पर स्वर स्थान बने होते थे, इन अपूर्व स्वरों का वादन करते समय गायन करना चाहिये। इस वीणा को कोण से नहीं बजाया जाता था।[35] रामायण के युद्ध काण्ड में कोण द्वारा वीणा वादन का भी उल्लेख प्राप्त होता है :

मम चापमयी वीणा शरकोणैः प्रवाहिताम्

ज्या शब्दंतुमुलां घोरामर्तगीत मद्य स्वनाम्।

नाराचतलसं नादां नदीमहित वाहिनीम्।

अवगाहन महारंगं वादपिष्याम्यहं रणे। (युद्ध 24, 42)[36]

वीणा को धनुष के समान माना गया है और इस वीणा को बाण जैसे कौण से बजाया जाता था। वीणा के स्वर धनुष के प्रत्यंचा से निकली ध्वनि के समान आर्तो का चीत्कार उच्च स्वर में गाया जाने वाल संगीत, नाराचों की ध्वनि हाथों से दिये ताल के समान है। ताल को हाथ से प्रदर्शित किया जाता था तथा ताल शब्दों का उच्चारण किया जाता था। इस प्रकार के ताल वादकों को 'तालापचर' कहते थे।[37]

---

35. धर्मावती श्रीवास्व, (डा.) *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 89-90
36. वही
37. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 92

रामायण काल में गन्धर्वों के द्वारा गायन तथा वीणा वादन किया जाता था। शुभ अवसरों पर वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। राज्य सभाओं में मुरज, पणव और वेणु, वाद्यों का वादन होता था। राजा के आगमन पर मंगल गीतों के साथ-साथ मृदंग तथा शंख बजाये जाते थे। ''विपंची वीणा के साथ नृत्य किया जाता था। बाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख मिलता है - **विपंची परिगृहन्या नियता नृत्यशालिनी ।।**''[38] रामायण में विभिन्न स्थानों पर अनेक अवसरों पर अलग-अलग वाद्यों का वर्णन मिलता है। रामचन्द्र के जन्म व विवाह के अवसर पर देवदुन्दुभियों का वादन हुआ। व्यग्र भरत के लिये गायन, वादन, नृत्य और नाटक से मनोरंजन किया गया। सीता के लिये वीणा तथा वेणु वादन किया गया। भरत मिलाप के समय शंख, दुन्दुभियों और मंगलगायन का आयोजन हुआ। राजकीय यात्राओं में त्र्यधारी, तालवादक तथा स्वस्तिकपाणि नर्तक आगे-आगे चला कहते थे। ''**सु पुरोगाभिथिस्त्यै स्ताल – स्वस्तिकपाणिभिः। प्रत्याहरदूभिर्मुदितैर्म गलानि वृतो यथौ**'' (बाल्मीकि रामायण) सुग्रीव के महल में लक्ष्मण को गायन के साथ तंत्री की ध्वनि भी सुनाई दी। **तंत्रीगीत समाकीण समगीतपदाक्षरम्।। किष्किन्धा० 33, 21)**''[39]

युद्ध के समय युद्धों योद्धओं का उत्साह बढ़ाने के लिये, सेना को सूचित करने के लिये व राजा की आज्ञा को बताने के लिये भेरि, दुन्दुभि, मृदंग तथा शंख का वादन किया जाता था। रावण द्वारा हनुमान को दण्डित किये जाने पर राक्षसों ने शंख व भेरी

---

38. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे : *भारतीय संगीत का इतिहास*, पृ0 92
39 वही, पृ० 90

बजा कर उद्घोषणा की। युद्ध काल में तथा विजय प्राप्त करने के बाद गीत, वाद्य तथा नृत्य का प्रयोग होता था। राम वियोग में सीता को देखकर बाल्मीकि को ऐसी वीणा का स्मरण हो आया जिसका रूप बहुत दिनों से अस्पष्ट रहने से विकृत हो गया हो तथा जिसमें तन्त्रियां न रही हों - **क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुत्रफाभिव वल्लकाभ्री सतां मर्तृहिते युत्तफमयुत्तफां रक्षसां वशे।। (बाल्मीकि रामायण)**[40]

सामूहिक वाद्यों के लिये 'तूर्य' संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। बाल्मीकि रामायण में राम के बनवास से लोटने के अवसर पर भरत कहते हैं :

त्र्यसंघातनिर्घोवै: कांचीत्पुरनि: स्वनै:।

मघुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शोप्वच।। (युद्ध काण्ड 17,61)

'त्र्य' में वाद्यों से उत्पन्न होने वाले नाद का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

त्र्याभरणनिर्घोष: सर्वत परिनादिताम्। (युद्धकाण्ड 5, 3, 11) बाल्मीकि रामायण)[41]

'त्र्य' का अर्थ रामायण काल में संभवतया वृन्दवादन से ही लिया जाता रहा होगा। त्र्य का अर्थ तुरही भी हो सकता है। तुरही का प्रयोग घोषणा करने के लिये किया जाता होगा।[42]

महाभारत काल - महाभारत में वाद्यों के चारों प्रकारों का उल्लेख मिलता है।तत वाद्यों में वीणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में वीणा के कुछ प्रकारों का निम्न

---

40. शरच्चन्द्र श्रीधर परांचपे , *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ0 92
41. वही, पृ. 93
42. धर्मावती श्री वास्तव (डा0), *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ0 71

प्रकार से वर्णन मिलता है। विपंची वीणा जो गन्धार स्वर उत्पन्न कर रही थी, कि तुलना द्रौपदी से की गई है - (महाभारत, 16, 18) वीणा का वादन अवनद्धवाद्य मृदंग आदि के साथ होता था। वेणु वीणा मृदंगा नं. (महाभारत 1, 224, 25) द्रोपदी के स्वंयवर पर भी वेणु और वीणा वादन हुआ। (महाभारत, 278, 24) राज्य में बजने वाले वाद्यों में व यज्ञस्थल पर नृत्य के साथ भी वीणा का उपयोग होता था। विश्वावसु नामक गंध र्व वीणा वादक था। नारद भी कच्छपी वीणा का वादन करते थे। (कच्छपी सुख शब्दां तां गृहा वीणा मनोरमाम् 1, 9, 54, 29) इसका एक सिरा कच्छप जैसा था। इस प्रकार के वाद्य आज भी प्रचलित हैं।[43] महाभारत में वीणा के स्वरूप की तुलना धनुष से की गई है। धुनष में जिस प्रकार डोरी होती है उसी प्रकार वीणा में तन्त्री होती है। डोरी लगाने के लिये धनुष में दो भाग होते हैं, वीणा में भी दो खूंटियां होती हैं। धनुष की लकड़ी के समान ही वीणा में कद्द्युक्त दाँड़ होती है। वीणा से स्वर या वर्ण उत्पन्न होते हैं और धनुष के शर उसके वर्ण के समान हैं :

धनुर्युतै रूक्मपुंरवैः शरैः संनानर्व भिदिषतां मिध्यनीकानि गजानाभिव प्रथमः।।
पशैपधानां ज्यातंत्री चापदण्डां महास्वनाम्। शरवर्णां धनुवीर्णा शत्रमध्ये प्रवादय।
(8, 27, 7, 4, 33, 25, 26)[44]

वीणा की धनुष से तुलना किये जाने पर यह अनुमान भी लगाया जा सकता हूँ कि वीणा के आविष्कार में धनुष की परिकल्पना रही होगी।

---

43 धर्मावती श्री वास्तव (डा0), *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ0 70

44 वही, पृ. 71

महाभारत काल में दुन्दुभि, मृदगं, आनक, मुरज, पणव, पुष्कर, पटह, आडम्बर, डिण्डिम, नन्दिवाद्य, तोमर तथा भेरी प्रयोग किये जाते थे। भरत के नाट्य शास्त्र में डिण्डिम, पटह, मृदगं, भेरी, दुन्दुभि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन वाद्यों के स्वरूप के विषय में महाभारत में उल्लेख नहीं किया गया है। इन वाद्यों का वादन गायन व नृत्य के साथ व युद्ध घोषणा के समय किया जाता था। शंख वाद्य का इस काल में कापफी उपयोग होता था। ''श्री कृष्ण द्वारा प्रयुक्त शंख का नाम 'पंचजनय' था। पाँचों पाँडव भी शंख बजाते थे।''[45]

सुषिर वाद्यों में वेणु, क्रकच, गोमुख, शंख, गोविषणिक, किलकिला आदि वाद्यों का प्रयोग होता था। किलकिला व क्रकच का उल्लेख सर्वप्रथम महाभारत में मिलता है। (किलकिला शब्दः 6, 42, 4) (किलकिला शब्दर्भूरमुत्सुमनोहरा 24, 58, 20 महाभारत) क्रकच, सिंघनी के समान वाद्य था जिसका उपयोग युद्ध में किया जाता था। किलकिला वाद्य का प्रयोग आदिवासी आज भी करते हैं।[46]

घन वार्द्यों में झर्झर, स्वस्तिक और करताल का उल्लेख महाभारत में आता है (झर्करेष्वानकेषु 7, 58, 4, 7, 79, 25) (स्वस्तिक 4,63, 27, स्वस्किपाणयश्च

---

45. The mahabharata abounds in description of the musical instruments of war and peace. The conch - trumpet was much in use at this time. Krishna used the conch called- 'Panchjanya'. The fire Pandava - brothers - Yudhisthira, Bhima, Arjuna, Nakula and Sahdeva, respectively used to conche during prayer time naed Ananta Vijaya, Paundra, Devedatta, Sugnosha and Manipushpa. Krishna is credited with the invention of music (Flute). He was study a dexterous player on this instrument that the milkmide of Vrindavana neglected their domestic duties and ran to listen on its strains while the river yamuna in bewildered costacy forget its onward course.' S.M. Tagore, *Universal History of Music,* P. - 52

46. धर्मावती श्रीवास्तव (डा.) ***प्राचीन भारत में संगीत*** पृ. 72

47. धर्मावती श्री वास्तव (डा.) *प्राचीन में सगीत,* पृ. 72

करताल 7, 58, 2, 23, 27, 230, 7 पृष्ठ 22) महाभारत हाथ से ताल देने को 'पाणिस्वर' कहा जाता था।''[47] झर्झर वाद्य अवश्य ही झाँझ के समान होता होगा। यह बड़े आकार का धातु से बना हुआ मजीरे के समान वाद्य होता है इसका प्रयोग युद्ध में होता है। एक अन्य घन वाद्य का नाम 'ताल' था। नृत्य के साथ इसकी संगति की जाती थी। स्वस्तिक व करताल वाद्य भी झर्झर के समान थे परन्तु उससे आकार में छोटे थे। वाद्यों के समूह वादन को त्र्य कहा जाता था। कहीं-कहीं त्र्य का अर्थ तुरहियों से भी लिया जा सकता है।

पाणिनि काल : पाणिनि उत्तरी पश्चिमी भारत के रहने वाले थे। उन्होने अष्टध्यायी नामक ग्रन्थ की रचना की जो संस्कृत व्याकरण पर आधारित था। उनके काल को ईसा से लगभग 800 वर्ष पूर्व माना जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों पर संगीत का प्रयोग होता था। यज्ञों पर संगीतिक मन्त्रोच्चारण करके आहुति दी जाती थी। इसके अतिरिक्त जनसाधारण भी अपना मनोरंजन उच्चकोटि के संगीत से करता था। गायन के साथ वीणा वादन और वंशी वादन भी होता था।[48]

बुद्ध काल

बिहार तथा पूर्वी हिन्दोस्तान में लगभग पाँच शताब्दी ई0 पू0 बौद्ध धर्म का उदय हुआ और यह अत्यन्त वेग के साथ पफैला। मुस्लिम धर्म की भांति किसी शास्त्रबल

---

48. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 102

अथवा अन्य प्रकार के दबाब के कारण नहीं, अपितु अपनी सैद्धान्तिक प्रेरक शक्ति के बल पर इसका विकास हुआ।[49] बुद्ध काल में संगीत के लिये 'गांधर्व' तथा 'शिल्प' संज्ञा प्रयुक्त होती थी। बौद्ध धर्म के पाली त्रिपिटकों में गायन, वादन तथा नृत्य का उल्लेख प्राप्त होता है।

बुद्ध काल में गायन, वादन और नृत्य कलाओं का प्रचार था। गायन और वादन परस्पर स्वर में मिले होते थे ताकि तंत्री स्वर और गीत स्वर का एकीकरण हो सके। नृत्य के साथ गायन और वादन भी होता था।[50] अनेक वाद्यों एवं गायन की ध्वनि सर्वदाविभिन्न नगरियों की शोभा को बढ़ाती रहती थी। इसी प्रकार कुशावती राजधानी के लिये भी कहा गया है कि वह दस शब्दों से परिपूर्ण रहती थी, जिसमें गीत के अतिरिक्त भेरी, मृदंग, वीणा, मजीरे एवं ताल के शब्द समाविष्ट थे।[51]

''बौद्ध धर्म में हाँलाकि संगीत को विशेष स्थान नहीं दिया गया। परन्तु इसके प्रचार के लिये वाद्यों का सहारा अवश्य लिया गया। बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष गायकों की टोलियां बना कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते थे और गीत-वाद्यों के सहारे बौद्ध तत्त्व-ज्ञान का प्रसार करते थे, जिससे श्रोताओं के हृदय में समरसता उत्पन्न होती थी।''[52]

---

49. सर मोनियर विलियम्स, *हिन्दु धर्म,* (रपान्तरकार मान सिंह), पृ. 52.
50. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 104
51. वही, पृ. 106
52. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, *संगीत,* लेख-समाज कल्याण में सगीत का योगदान, अप्रैल, 1964, पृ. 31,

बौद्ध शिल्पों में अनेक स्थानों पर वाद्यों के चित्र अंकित हैं। प्रारंभिक बौद्ध-शिल्प में अनेक स्थानों पर एक चित्र दिखाई देता है और वह हैं - इन्द्र का भगवान बुद्ध में से निकल आना। इसमें इन्द्र के साथ एक मित्र पंचशिख भी है, जो वाद्य बजाने वाला गन्धर्व था। वह बुद्ध के निकट आया करता था। वह पत्थरों से बनी हुई सूनी गुपफाओं को वाद्य-वादन से गुंजयमान किया करता था।''[53]

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के अवसर पर मल्लों द्वारा कई दिनों तक गायन, वादन और नृत्य का प्रदर्शन किया गया। जिन का अंकन सांची की कला में देखा जा सकता है। 'भरहुत की कला में नृत्य की कुछ मुद्राओं को भी देखा जा सकता है। भरहुत के संगीतरूपक में चार अप्सराओं में से प्रथम ऊपर की पंक्ति वाली 'पटाक' मुद्रा में है, उसके दोनों हाथ उसी मुद्रा में हैं।'[54]

'सांची के एक अर्द्धचित्र में नागराजा एक वृक्ष के नीचे बैठा है, उसके निकट ही अनेक नागिनियां भी बैठी हैं। वे प्यालों में कुछ लिये हुए खा-पी रही हैं अन्य नागिनियां नृत्य और गान में व्यस्त हैं। एक के हाथ में चंवर है तथा दूसरी सवेणु वाद्य बजा रही है।[55]

बौद्ध कालीन संगीत वाद्यों का उल्लेख बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'पाली त्रिपिटकों' में मिलता है। पाली त्रिपिटक ग्रन्थें में गायन, वादन तथा नृत्य का और कहीं केवल नृत्य

---

53. सुनीता शर्मा (डा.) *भारतीय संगीत का इतिहास : अध्यात्मिक एंव दार्शनिक,* पृ. 63
54. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 105
55. सुनीता शर्मा, *भारतीय संगीत का इतिहास: अध्यात्मिक एंव दार्शनिक,* पृ. 63.

और केवल वादन का उल्लेख प्राप्त होता है। ''बौद्ध काल में वाद्यों की ध्वनि को अति पवित्र मानते हुए उनकी तुलना 'सूगत की ध्वनि' से की गई।''[56]

तत वाद्यों के अर्न्तगत वीणा प्रचलित व महत्वपूर्ण वाद्य था। त्रिपिटकों में 'वेलतु पाण्डु' वीणा का उल्लेख मिलता है। वेलतु पीले वृक्ष की लकड़ी होने के कारण इसका यह नाम रखा गया। जातकों के द्वारा सप्ततंत्री वीणा का वादन होता था। पंचशिख नामक गंधर्व पुत्र द्वारा 'वेलवु पाण्डु' वीणा के वादन से बुद्ध भी अत्यन्त प्रभावित हुए।[57]

त्रिपिटकों में वीणा की वादन विधि का भी उल्लेख मिलता है। जातक वीणा की प्रत्येक तन्त्री को बारी-बारी तोड़कर एक तार से वीणा वादन करते थे। ''शिल्पवन्त नामक वीणा वादन ने इसी विधि से वीणा वादन किया।''[58] वीणा की मार्जना विधि के अनुसार वीणा के तारों को न अधिक कसा होना चाहिये न ही अधिक ढीला होना चाहिये। दोनों प्रकार से वीणा स्वरयुक्त व वादन के लिये उपयुक्त नहीं रहती। वीणा को मध्यम परिमाण में मिलाना चाहिये। इससे इस काल में त्रिस्थानों के विषय में भी पता चलता है।[59] मार नामक राक्षस के द्वारा महात्मा बुद्ध को आकर्षित करने के लिये वीणा वादन का उल्लेख मिलता है। राक्षसों द्वारा गायन वादन का उल्लेख सांची की कला में भी मिलता है। कुमार दीर्घायु द्वारा भी वीणा वादन का वर्णन मिलता है।[60] वीणा के

---

56. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत*, पृ० 63
57. वही
58. वही
59. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत*, पृ. 99
60. वही, पृ. 100

एकांकी वादन का भी उल्लेख मिलता है। वीणा को अन्य वाद्यों मेरी, मृदगं के साथ भी बजाया जाता था। इस आशय में 'मड्डु वीणा' का वर्णन मिलता है। परन्तु इसका रूप स्पष्ट नहीं है। वल्लकी, विपंची, महती वीणा, भ्रमरिका वीणा और एकादश वीणा, वीणा के अन्य प्रकार थे। मृदगं, पणव, भेरी, मुरज, डिणडिम दुन्दुभि, आडम्बर, कुंभत्णिक तथा मरू एवं मरू पटह आदि आनद्ध वाद्यों का त्रिपिटकों में उल्लेख मिलता है। मरू पटह, पुष्कर वर्ग के वाद्य का वर्णन केवल महावस्तु में मिलता है। परन्तु इसका स्वरूप स्पष्ट नहीं है। इन वाद्यों का प्रयोग गायन, नृत्य के साथ-साथ सेना में घोषणा करने पर व यात्रा में और राज्य महलों में होता था। ढोल वादकों को जुलूस में आगे रखा जाता था! सुषिर वाद्यों में शंख, वेणु तूणव, सुघोषक और नकुल आदि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। सुघोषक 'तुरही' के समान वाद्य है। नकुल का और कहीं वर्णन नहीं मिलता है परन्तु आधुनिक आंचलिक प्रदेशों में सुषिर वाद्य की भाँति प्रचलित है। एक अन्य वाद्य वेणु जिसके दो मुख थे बौद्ध काल में प्रचलित थे, साँची में भी अंकित हैं।[61] घन वाद्यों में करताल, शम्या और ताल का वर्णन मिलता है। बुद्ध घोष मजारे की भाँति वाद्य था। 'पाणि स्वरिका' करताल वादन की भांति था। 'त्र्य' को 'त्रिय' कहा गया है। जिसे समूह में प्रयुक्त वाद्यों के लिये प्रयोग किया जाता था। जिसमें पंचांगिक त्र्य संज्ञा का उल्लेख मिलता है। 'मुरज वेणिका' का प्रयोग पंचागिक त्र्य में होता था। जो कि झाँस था डपफ के समान वाद्य था। 'मुरज वेणिका' आधुनिक खंजरी के प्रकार का वाद्य

---

61. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 102

माना जा सकता है। चार प्रकार के वाद्य वर्गों के अलावा एक अन्य मिश्रण से बना अंग पंचागिक त्र्य में सम्मिलित होंगे। जिसका उपयोग समाजिक व धार्मिक उपलक्ष्यों में होता था। पंचागिकत्र्य में वाद्य वादन में एक दुसरे में परस्पर एकरूपता होनी चाहिये।[62]

जैन युग (ईसा से 599 वर्ष पूर्व) - जैन सूत्र में वाद्यों के लिये 'आतोद्य' संज्ञा दी गई है तथा वाद्यों के चार प्रकार तत, वितत, धन और सुषिर माने हैं। उस काल में ही अवनद्ध को वितत कहा जाने लगा होगा। तत वाद्यों में वीणा, विपंची, वद्धीसक, तुणक, पानक, तुम्बवीणा, बल्लरी, भामरी, कच्छपी आदि प्रयुक्त होते थे। आचारांग सूत्र में तत वाद्यों का उल्लेख आता है - जहां वीणा सद्वाणि वा विपंची-सद्वणि वा ववीसगसद्वाणिवा तुणयसद्राणि वा वणय सद्वाणिवा तुम्बवीणिय सद्दाणि वा दकुण सद्वाणि वा (2:22, 2, पृ0 226 आचरांग सूत्र) कल्पसूत्र के अनुसार **वीणाणय वल्लकीगय भामरीवय कच्छपीणय कल्पसूत्र के अनुसार वीणाणय वल्लकीगणय भामरीणय कच्छपीणय** (कल्पसूत्र पृ० 227-28-20) बाँस या पलाश के पतले टुकड़े से बनी वेणु पालाशिक वीणा का वर्णन सूत्रकृतांग के (पृ0 276) पर आता है। जिसे दाँत और बायें हाथ के बीच रखकर वीणा की तरह हाथ से किया जाता था।[63] आचारांग व कल्पसूत्र में वीणा वादकों का भी वर्णन मिलता है। (कल्पसूत्र 223-253)

उस काल में वीणाओं में तंत्रियों और आकार के आधार पर ही अन्तर किया जाता था। तुणक, पाणक धंकुन नामक वीणाएं प्रचलित थीं। हो सकता है कि यह

---

62. वही, पृ. 103.

63. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 119

किसी प्रान्त विशेष की वीणाएं हों। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, नन्दि-मृदंग, दुन्दुभि, झल्लरी, पटह, भेरी पणव, मुरज, हडुक, भंभा आदि आते थे। साचारांग सूत्र में इनका उल्लेख मिलता है (भुइंग सद्धणि व नन्दी मुईंग सद्वाणिवा झल्लरि सद्वाणि वा (2, 22, 2, पृ० 226 आचारांग सूत्र) झल्लरी खंजरी जैसा वाद्य था। हुडक भी इसी प्रकार का वाद्य था। इनका भेद इनके आकार तथा वादन की विधि से होता था।[64] सुषिर वाद्यों में शंख, वेणु, पिरिपिरिया, त्णइल्ल, श्रृंग आदि वाद्य आते थे। श्रृंग, सिंघनी के समान वाद्य था। खुरमुही व पिरिपिरया भी इस श्रेणी में आते थे। परन्तु इनका स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। वेणु वाद्य बाँसुरी के समान था।[65] काँस्य ताल, (मजीरे के समान वाद्य), लत्तिय, गौहिय, किरकिरिय आदि वाद्य घन वाद्यों सके अर्न्तगत आते थे। परन्तु इनका रूप स्पष्ट नहीं मिलता। किरकिरिय वाद्य करताल के समान रहा होगा। वाद्यों के समूह को 'त्र्य' कहा जाता था एक अन्य व्याख्या के अनुसार त्र्य को तुरही (सुषिरवाद्य) के अनुसार भी माना गया है। ''एक अन्य जैन ग्रन्थ 'जम्ब्दीपानुवती' में दस प्रकार के कल्पवृक्षों का उल्लेख मिलता है जिनसे एक 'तुरियंग' था। जिससे चार प्रकार के वाद्य उत्पन्न हुए। स्वामी रस्भ द्वारा इस वृक्ष से संगीत वाद्यों का आविष्कार हुआ।''[66]

– गायन्ताणि वा वायंताणि व नच्चन्ताणि।(1) कल्पसूत्र में भी पृ0 223 पर संगीत के विभिन्न वाद्यों का उल्लेख किया गया है।[67]

---

64. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 119
65. वही, पृ. 120
66. धर्मावती श्रीवास्तव, *प्राचीन भारत में संगीत,* पृ. 122
67. सुनीता शर्मा (डा.) *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 66

1. शंख 2. संरिख्या 3. खरमोही 4. पेया 5. पीरिपिरिया 6. वणव 7. पटह 8. भम्भा (ठक्का) 9. होरमा (महारका) 10. भेरी, 11. झल्लरी, 12. दुन्दुभि, 13. मुरज, 14. मृदंग, 15. नन्दी मृदगं, 16. आलिंग्य, 17. कुन्तब, 18. गोमुखी, 19. मर्दल, 20. वीणा, 21. विपन्ची, 22. वल्लकी, 23. महत्ती, 24. कच्छपी, 25. चित्र वीणा, 26. बदीशा, 27. सुघोषा, 28. नन्दीघोषा, 29. भ्रामरी, 30. षडभ्रामरी, 31. परिवादिनी, 32. त्णा, 33. त्म्बवीणा, 34. आमोत, 35. झंझा, 36. नकुल, 37. मुकुन्द, 38. हुड्डकी, 39. विचिकी, 40. करटा, 41. डिंडिम, 42. किनिय, 43.कदम्भ , 44. दरदरिका, 45. कलशीय, 46. मड़्डुक, 47. ताल, 48. कासतालय, 49. लतिया, 50. मकरिका, 51. शिसुमारिका, 52. वंश, 53. वेणु, 54. वाली, 55. परिली, 56. बदगा, 57. शरंग ।[68]

जैन गयोपसेनिय सूत्र में 60 प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया है परन्तु 57 नाम ही इसमें उपलब्ध हैं।

गुप्त काल - गुप्त काल को भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस काल में संगीत का भी अत्याधिक विकास हुआ। राजाओं ने संगीत में अपनी रूचि दिखाई और संगीत के प्रचार के लिये महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। इस काल में संगीत के भाव पक्ष और कला पक्ष, शास्त्रीय पक्ष और लौकिक पक्ष को बढ़ावा मिला।

---

68. अरूण कुमार सेन, *भारतीय तालों का शास्तीय विवेचन,* पृ. 137

चन्द्रगुप्त प्रथम के काल में संगीत की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई, परन्तु उसकी अध्यात्मिक पृष्ठभूमि में परिवर्तन अवश्य आ गया था। 'वीणा का प्रचलन इस युग में भी चालू रहा।'[69]

समुन्द्र गुप्त के सिक्कों में इन्हें वीणा-वादन करते हुए दिखाया गया है।[70]

कई इतिहासकारों के अनुसार सितार इसी युग की देन है। ''सितार को उत्पत्ति इसी काल में मानी जाती है।''[71]

इस काल में 'मृच्छकटिक' के रचयिता शुद्रक भी महान् नाटककार थे। उनके नाटक प्राय: संगीत प्रधान होते थे। जिनमें संगीत के मौलिक तथ्यों की पूर्ण रक्षा की गई। नाटकों एवं काव्यों में विपंची, परिवादनी, किन्नरी आदि वीणाओं का उल्लेख किया गया है। गुप्तकाल में शिल्प कला की भी बड़ी उन्नति हुई। अजंता अमरावती और साँची के स्तूपों में वस्तु कला विशारदों ने विविध प्रकार की वीणाओं के नमूने अंकित किये हैं। भास नाटककार ने भी अपने नाटकों में वीणाओं का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि इस काल में वीणा का प्रचलन खूब जोरों पर था।[72]

राजपूत काल : राजपूत काल 647 ई0 से 1000 ई0 तक रहा। इस काल में भारत के अनेक छोटे-छोटे टुकड़े हो गये। गुप्त काल में जो संगीत की स्थिति थी, वह इस काल में ना रह पाई। संगीत अनेक वर्गों में विभाजित हो गया था। संगीत में घरानों की प्रथा भी इसी काल की देन है जिसने संगीत का दायरा संकुचित कर दिया।

---

69. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 141
70. भगवत शरण शर्मा, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 58
71. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 152
72. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ0 53

'इस काल में संगीत के राग-रागनियों के बहुत चित्र मिलते हैं। जिनमें वीणा के अनेक प्रकारों का ज्ञान होता है।' 'सोमनाथ के मन्दिर में चौलादेव नाम की नर्तकी वीणा के साथ गायन करती थी। पृथ्वीराज चौहान भी प्रखर वीणा वादक था।'[73] इससे स्पष्ट होता है कि यद्यपि गुप्त काल के बाद वीणा का प्रचार कम हो गया था। परन्तु राजपूत काल में वीणा पिफर प्रचार में रही।

मध्यकाल - भारत में महमूद गजनबी के आक्रमण 1000ई0 में आरम्भ हुए और 1026 ई0 में अपने अन्तिम आक्रमण में उसने अनेक राज्यों को हराकर मुस्लिम-सत्ता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार भारत में मुस्लिम संस्कृति का उदय ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ। मुसलमानों के आने से हिन्दु संस्कृति का पत्न और मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा। 'सन्त, कवियों और संगीतज्ञों ने इन दोनों संस्कृति-धाराओं में एकता तथा समन्वय स्थापित करने का सपफल प्रयास किया। सभी कलाओं पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा। संगीत कला भी इस प्रभाव से अछूती न रही। वैसे तो मुस्लिम धर्म में संगीत निषिद्ध माना जाता है। परन्तु जिस प्रकार हिन्दु धर्म में भक्ति अन्दोलन संगीत के माध्यम से प्रचारित किया जा रहा था। उसी प्रकार मुसलमानों ने भी मस्जिद और मजारों पर गाना-बजाना शुरू कर दिया। इस प्रकार निषिद्ध होते हुए भी संगीत के आध्यात्मिक स्वरूप को मुस्लिम समाज में मान्यता प्राप्त हो गई। इस प्रकार चिश्ती परम्परा का उदय हुआ।

---

73. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ0 170

चिश्ती परम्परा - मुस्लिम शासक और सूपफी संत संगीत को सदैव आदर-सम्मान की दृष्टि से देखते थे। खिलजी वंश, तुगलक वंश और मुगल बादशाह भी सूपफी सन्तों को पीर-पैगम्बर मानकर उनकी मजारों पर सजदा करते थे और उनसे परम्परागत धार्मिक गायकी सुनने जाते थे। इस गायकी में गानों के विषय, गायक, श्रोता, समय, स्थान, उपस्थित जनसमूह और वाद्यों के विषय में मर्यादाओं का पालन किया जाता था। ''गीतों का विषय श्रृंगार-प्रधान नहीं होना चाहिये। गायक और साधक के लिये संगीत धन अर्जित करने का साधन मात्र नहीं होना चाहिये। श्रोता जन गायकी के आदर्शों को समझने वाले हो। वे झूठी वाहवाही करने वाले न हों। नमाज के समय को छोड़कर किसी भी समय गाना गाया या सुना जा सकता है। सभा का स्थान पवित्र होना चाहिये। वाद्य मज़ामीर और मआज़िपफ हो।[74] चिश्ती परम्परा में गायकी के अर्न्तगत प्रयुक्त वाद्यों को मज़मीर और मआज़िपफ कहा जाता था। इन वाद्यों का प्रयोग ईश्वर उपासना के लिये किया जाता था। अन्य अवसरों और समारोहों पर भी वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। मज़ामीर वाद्य सुषिर वाद्यों को कहते थे जिनमें नपफीरी, बांसुरी, शहनाई आदि वाद्य होते थे। मआजिपफ घन वाद्य और अवनद्ध वाद्यों को कहते थे जिनमें ढोल, ढपफ, नक्कार आदि वाद्य आते थे। इन वाद्यों को हाथ या लकड़ी से बजाया जाता है।[75]

---

74. आचार्य वृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* पृ. 33

75. वही

इस्लाम धर्म में संगीत निषिद्ध आवश्य था परन्तु मुसलमान अपने साथ निश्चय ही संगीतिक संस्कृति लाये थे। इस्लाम केवल विलासपूर्ण संगीत ही निषिद्ध माना गया था । ''सामान्य मुसलमान संगीत कला को बेशक हराम (धर्म विरूद्ध) समझता हो, किन्तु इसलाम ने मौसीकी (संगीतकला) को कभी हराम बताया हो - ऐसा धार्मिक ग्रन्थों में कहीं उल्लेख नहीं मिलता।''[76]

अलाऊद्वीन खिलजी के राज्यकाल में प्रसिद्ध सूपफी शेख निजामुद्धीन चिश्ती ने संगीत के द्वारा सूपफी विचारधारा का प्रचार किया। सूपिफयों की दरगाहों पर भारतीय और अरबी, साहित्य, संगीत, धुनों तथा वाद्यों के समिश्रण से गायन-वादन होता था।

खिलजी काल – 13वीं और 14वीं शताब्दी में अलाऊदीन खिलजी ने उत्तरी और दक्षिणी भारत के राज्यों को जीत कर अपने अधिकार में किया। ''इस काल में सितार, तबला का आविष्कार हुआ। कुछ इतिहासकार इसका श्रेय अमीर खुसरो को देते हैं।''[77]

खिलजी युग में जिन वाद्यों का वर्णन मिलता है उनमें नक्कारे, तुम्बरा, दुन्दुभी, झाँझ, ढोल, नपफीरी तथा सरना आदि आते हैं।

जलालुदीन खिलजी के (1290-1296) के दरबारी गायकां में मुहम्मद सना, चंगी ढोल बजाते व पफकाई की पुत्री पफुतुहा और नुसरत खातून गाना गाती थी।

---

76. असद अली, *भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव,* पृ. 207

77. स्वतन्त्र शर्मा, *भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण,* पृ. 6

अलाउद्दीन खिलजी 1296 - 1316 ई0 के दरबार में भारतीय वाद्यों का भी वादन होता था। उनके पुत्र के विवाह पर देवगिरी से गायक व नर्तकियां दिल्ली पहुँचे इनके साथ भारतीय वाद्य भी था। गयासुदीन तुगलक (1320 - 1325) के काल में निजामुद्दीन चिश्ती वाद्यों के साथ सभा सुनते थे। मुहम्मद तुगलक (1325 - 1351) के दरबार में 1200 गायक थे जो गायन की शिक्षा भी देते थे। सुलतान की यात्रा के समय दो सौ नक्कारे, चालीस बड़े तम्बूरे, बीस बड़ी दुन्दुभियाँ और दस बड़े झाँझ बजते थे। सेना के द्वारा ढोल, नफ्कीरी और सरना आदि वाद्यों का प्रयोग होता था। फिरोज शाह तुगलक ने बड़े ढोल का आविष्कार किया। यह ढोल सामान्य ढोल से लम्बाई और चौड़ाई में एक हाथ लम्बे थे। सिकन्दर लोदी (1488 - 1517 ई0) सिकन्दर लोदी के दरबार में चंग, कानून, तम्बूरा, और वीणा आदि वाद्यों का वादन होता था। इस व्यक्तियों द्वारा शहनाई पर गौरा कल्याण, कानडा और हुसैनी रागों में वादन होता था। जिसे रात का एक पहर बीत जाने पर बजाया जाता था। मुजफ्फर शाह गुजराती (1511 - 1526) सभी प्रकार के वाद्य बजाने में निपुण था।[79]

मुगल काल - यह काल सन् 1525 ई0 से बाबर से प्रारम्भ होता है। बाबर एक वीर योद्धा होने के साथ-साथ एक संगीतज्ञ भी थे। वह गायन विद्या में प्रवीण थे। और गायकों का आदर समान भी करता थे। इस काल में भारतीय संगीत उन्नति के मार्ग पर बढ़ता रहा। मुगल काल में बाबर के समय में ही श्री गुरू नानक देव जी द्वारा सिक्ख

---

78. आचार्य वृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* पृ. 29, 59, 60, 61, 62

79. वही

धर्म की स्थापना हुई। श्री गुरू नानक देव जी ने अपने समकालीन भक्ति आन्दोलन की तरह संगीत को माध्यम रूप में अपनाया। परन्तु उनकी शैली और संगीतिक मौलिकता उनके द्वारा रचित संगीत को न केवल तत्कालीन भक्ति संगीत से बल्कि समस्त भारतीय संगीत से भिन्न बना देती है। उन्होने शब्द कीर्तन परम्परा को विशिष्ट विध ान प्रदान किया। और अपनी समस्त वाणी की रचना रागों के अधीन की। श्री गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई गई यह परम्परा आधुनिक काल में भी प्रचलित है।

अतहर अब्बास रिजवी (मुगलकालीन भारत, बाबर) के पृष्ठ 595 - 596 पर लिखते हैं कि बाबर ने अपने सम्बन्धी हुसैन मिर्जा के कलाकारों की निम्न प्रकार से चर्चा की है। ख्वाजा अब्दुल्लाह मखारीद गायक एवं कानून वादक थे। कूले मुहम्मद उबदी बरबत वादक और गिटार वादक थे। शैखी नाई नै, बरकत, गिटार व वीणा वादक था। शाह कुली गिटार वादक, हुसैन ऊदी बरबत वादक, गुलाम शादी मीर अंजू और बनाई गायक थे।[80]

इनमें से कुछ वाद्यों का नाम प्राचीन भारतीय वाद्यों में नहीं मिलता जैसे नै, बरबत और गिटार हो सकता है कि यह वाद्य मुसलमान अरब देश से अपने साथ लाये हों। या पिफर भारतीय वाद्यों में ही कुछ परिवर्तन करके नये नाम रख दिये हों। बाबर काल में कानून, गिटार, बरबत, वीणा आदि प्रमुख वाद्य थे। यह सभी तंत्री वाद्य हैं।

---

80. भगवत शरण शर्मा, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 78

हुमायुँ काल में श्री गुरू अंगद देव जी (1504 - 52) ई0 में गुरू गद्दी पर बैठे। उन्होने प्रथम गुरू की भाँति ही कीर्तन को परम्परा को कायम रखा और वाणी व संगीत के सुमेल के द्वारा जनमानस तक आध्यात्मिक संदेश पहुँचाया।

हुमायुँ काल में संगीत वाद्य, हुमायुँ के काल में रबाब, कानून, करना, चंग, नै वाद्य, गिज़क आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

अतहर अब्बास रिज़वी ने (मुगलकालीन भारत, हुमायुँ) पृ0 389 में चंग, कानून और बरबत वाद्यों की ध्वनि को सभी के लिये रूचिकर बताया है। हुमायुँ के दरबार में गायक और वादकों के नाम इस प्रकार हैं:- मीर सैयद अली गिज़क वादक, बाबा दोस्त तूनकतार, जान मुहम्मद अरलात, यार मुहम्मद, बहराम - गिजकवादक, तूपफान - रबाब वादक, मुल्ला ताहिर बुखारी, मस्तूर बेग बकावल, रहमान कुली खुशनेगी, इर्रज तरसून बरलास बायजीद - करना वादक, मुहम्मद जान- कानून वादक कजक-गिजक वादक, कासिम - चंगवादक, गैबल्लाह- चंगवादक, मुखलिस कुब्सी, तूपफान-नै वादक, अरबे बाई, हापिफज मेहरी बकावली, हापिफज नासिर, हापिफज कमालुद्वीन हुसैन, मौलाना सिपहरी, ख्वाजा मुहिब अली बख्शी, मौलाना बज्मी, मौलाना मीर जान जैवन्दी ज़र्वज़न, महमूद किरकी राक, साकी दराज, तरसून अली करावल।[81]

---

81. आचार्य बृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* पृ. 70,71

बादशाह अकबर के काल में संगीत ने पर्याप्त उन्नति की। उन्होने प्रत्येक जाति के संगीतकार को अपने दरबार में संरक्षण दिया। अकबर स्वंय संगीत प्रिय थे इसलिये उन्होने संगीत कला के लिये प्रयास किये। 'इस युग में ईरानी तथा भारतीय पद्धतियों को मिलाकर संगीत की एक ऐसी पद्धति बनाई गई थी, जिसमें दोनों की विशेषताओं का मिश्रण था।[82]

श्री गुरू अमरदास और श्री गुरू रामदास क्रमशः (1479 - 1584), (1534 - 81) अकबर के समकालीन थे। उन्होने भी अपनी वाणी की रचना संगीतिक पृष्ठभूमि के आधार पर की। ''कानूने मौसीकी के लेखक अनुसार गुरू अमरदास जी ने 'सिरन्दा' नामक वाद्य ईजाद किया।''[83]

गायन शैलियों पर मुस्लम संगीत का प्रभाव पड़ने के साथ ही इस काल में भारतीय संगीत वाद्यों को भी नया रूप दिया जाने लगा। इन वाद्यों में सितार और तबले के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अकबर काल में वीणा का स्थान सितार ने ले लिया था। परन्तु वीणा का प्रयोग भी भारतीय संगीतकारों के द्वारा होता रहा। मृदंग का स्थान तबले ने ले लिया था। मंजीरा वाद्य का भी प्रयोग शुरू हो गया था।[84] अकबर के दरबारी अबुल पफजल द्वारा लिखित आईने अकबरी में मृदंग और खडताल नामक वाद्यों का उल्लेख मिलता है। यह वाद्य राज महलों से लेकर मंदिरों तक प्रचलित थे। खडताल वाद्य शास्त्रीय संगीत में भी प्रयुक्त होता था और लोक संगीत में भी।

---

82. भगवत शरण शर्मा, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 85, 86

83. गुरनाम सिंह (डा.) *आदि ग्रन्थ : रामकोष,* पृ. 22

84. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 233

अकबर के दरबार में तानसेन, रामदास, सुबहान खां, सुरजान खां, मियां चांद, विचित्रखां, वीमण्डल खां, सरोदखां, मियाँ लाल, चाँद खां और वीणा वादक शहाब खां प्रमुख संगीतकार थे।[85]

अबकर के पुत्र जहाँगीर का शासन काल 1605 ई0 से 1627 ई0 तक था। उन्हें संगीत से बेहद लगाव था। उन्हें सितार वादन सुनना अत्याधिक प्रिय था। नृत्य कला को भी वे पसंद करते थे। जहाँगीर काल में भारतीय संगीत की धारा भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही चलती रही।

श्री गुरू अर्जुनदेव और श्री गुरू हरगोबिन्द क्रमशः (1563-1606), (1595-1644) जहाँगीर के समकालीन सिक्ख गुरू थे। आपजी ने भी अपनी वाणी की रचना अनेक रागों में की। 'सुखमनी' श्री गुरू अर्जुन देव जी की प्रसिद्ध रचना है। इसी काल में कीर्तन के साथ सरंदा और तबला का प्रयोग आरम्भ हुआ। इससे पहले रबाब, मध्यम वीणा (सितार) और तम्बूरे आदि वाद्यों का भी प्रयोग होता था।

इस काल में सितार का प्रचलन पूर्वकालों की अपेक्षा अधिक हो गया था।

जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात उनका पुत्र शाहजहाँ सन् 1628 ई0 में गद्दी पर बैठा। उसने भी उनके संगीतकारों को आश्रय देकर संगीत प्रेमी होने का प्रमाण दिया। वह स्वंय भी अच्छा गायक था। उसका स्वर बड़ा मधुर और हृदयगाही था। शाहजहां

---

85. आचार्य बृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, पृ. 74

सितार बजाने में भी प्रवीण था। दरबारी संगीत समारोह में इस बात का पूर्ण रूप से ध्यान रखा जाता था कि हिन्दु संगीतज्ञों की अपेक्षा न सह पाये।[86]

शाहजहाँ ने अपने युग में प्रचलित ध्रुपदों का संग्रह भी करवाया। कई ध्रुपद शाहजहाँ से सम्बन्धित उपलब्ध होते हैं।[87]

श्री गुरू हरि राये और श्री गुरू हरिकृष्ण क्रमशः (1631-1661), (1656-1664) शाहजहाँ के समकालीन सिक्ख गुरू थे। उन्हें वाणी लिखने का समय परिस्थितियों ने नहीं दिया, परन्तु इनके दरबारों में नित्य कीर्तन होता था।

शाहजहाँ के काल में सितार अत्यन्त प्रचलित वाद्य बन चुका था। सितार के साथ तबला वादन भी प्रचलित था। 'शाहजहाँ स्वंय भी सितार वादन में प्रवीण था।'[88] सितार का प्रचलन इस काल में अधिक होने के कारण निश्चय ही वीणा का प्रयोग कम हो गया होगा। राजमहलों में वीणा का प्रयोग न के बराबर होगा। केवल भारतीय संगीतज्ञ ही वीणा वादन करते होंगे।

औरंगजेब 1658 ई0 में गद्दी पर बैठा। ज्यादातर विद्वानों ने उसे संगीत का शत्रु होना ही घोषित किया है 'परन्तु आचार्य बृहस्पति ने औरंगजेब को संगीत-प्रेमी और संगीतकारों का मान सम्मान करने वाला बादशाह प्रमाणित किया है।[89]

'औरंगजेब अपने राज्य के प्रारम्भिक दिनों में गायन और वाद्य-संगीत को सुनता था।

---

86. डी. एस. नरूला (डा.), *गुरमति संगीत : विभिन्न परिपेख,* (संपा) गुरनाम सिंह (डा.) लेख गुरमति संगीत का इतिहासिक विकास, पृ. 42
87. योगेन्द्र पाल शर्मा, बच्चितर सिंह, *भारती संगीत दा इतिहास,* पृ. 49
88. उमेश जोशी, *भारतीय संगीत का इतिहास,* पृ. 241
89. आचार्य बृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* पृ. 76

श्री गुरू तेग बहादुर और श्री गुरू गोबिन्द सिंह क्रमशः (1622-75), (1666-1708) औरंगजेब के समकालीन सिक्ख गुरू थे। श्री गुरू तेग बहादुर जी ने अनेक रागों में अपनी वाणी की रचना की। उन्होने अपनी वाणी गायन के साथ मृदंग वाद्य का भी प्रयोग संगीत वाद्य के रूप में किया।

'जोनपुर में एक रागी गुरबख्श सिंह को जो गुरू जी ने बख्शा था वह आज भी वहाँ के गुरूद्वारा संगीत मृदंगावली' में देखा जा सकता है।[90]

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने भी अपने पूर्वकालीन गुरूओं की भाँति संगीत और संगीत वाद्यों को विशेष महत्व दिया। 'उन के काल में 'मयूर वीणा' का प्रयोग भी कीर्तन में होने लग पड़ा था। अर्थात अब कीर्तन के साथ सरंदा, मध्यम वीणा (सितार) कछुआ, ताऊस, पखावज और तबला आदि वाद्यों का प्रयोग होने लग पड़ा था।[91]

औरंगजेब के काल में सितार, तबला और अन्य वाद्यों के साथ मृदंग भी प्रमुख अवनद्ध वाद्य था।

औरंगजेब के दरबार में खुशहाल खां, बिसराम खां, रसबैन खां, हयात, सरसनैन, सुखीसेन कलावन्त और किरपा मृदगं वादक आदि थे। औरंगजेब ने खुशहाल खां को 'गुनसमन्दर खां' और किरपा को 'मृदगंराय' की उपाधि दी।[92]

'औरंगजेब ने जब आलमगीर की उपाधि ग्रहण की तब अनेक देशों के राजदूतों को निंमत्रित किया गया। जब एशिया का शाह अब्बास द्वितीय आया तो उसके स्वागत

90. डी.एस. नरूला (डा.), *गुरमति संगीतः विभिन्न परिपेख* (संपा), गुरनाम सिंह (डा.) लेख गुरमति संगीत दा इतिहासिक विकास, पृ.43

91. वही

92. आचार्य बृहस्पति, *मुसलमान और भारतीय संगीत,* पृ.77

हेतु जो प्रबन्ध किया था वह अत्यन्त शानदार था। एक देखने वाले व्यक्ति ने लिखा है कि अन्य बातों के साथ-साथ ढोल, बंसी और तुरही आदि का भी स्वागत समारोह में इस्तेमाल किया गया था।[93]

हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य

'वाद्य' शब्द 'वद' धातु से बना है और इसका अर्थ है जिससे बुलवाया जा सके। अर्थात मनुष्य स्वंय अपने शरीर से नाद उत्पन्न न करके जिस यन्त्र में से नाद उत्पन्न कर सकता है यानि जिससे बुलवा सकता है, वह है 'वाद्य'। मानव द्वारा निर्मित ऐसा यन्त्र वाद्य कहलाता है जिस पर आघात करने से नाद उत्पन्न हो। 'वाद्य' के तीन पर्यायवाची शब्द हमारी प्राचीन संस्कृति साहित्य में मिलते हैं। वादित्र, आतोद्य, वाद्य

वादित्र - 'वद' धातु में णितन् प्रत्यय: से वादित्र शब्द बनता है जिसका अर्थ है बोलने योग्य।

आतोद्य- 'आतोद्य' शब्द की व्युत्पति है: आसमतात तुद्यते ताड़यते इति आतोद्य' अर्थात जो चारों ओर से वादन के योग्य हो, आतोद्य है। संगीत वाद्यों की उत्पति, विकास व आविष्कार को लेकर संगीतकारों के विभिन्न मत हैं। ''गायक को सहारा देने उसके मन को और अधिक गायन में स्थिर करने, गान क्रिया के काल को नापने के लिए वाद्यों का आविष्कार हुआ जिस साधन द्वारा संगीतात्मक स्वरों की

---

93. भगवत शरण शर्मा, *भारतीय इतिहास में संगीत,* पृ. 86

उत्पत्ति होती है उसको वाद्य (Instrument) कहते हैं।''[94] धार्मिक आस्थाओं से वाद्यों के आविष्कार को जोड़ा जाये तो अनेक मत सामने आते हैं जैसे ''दक्ष-यज्ञ विध्वसं से शिव को जो क्रोध उत्पन्न हुआ। उसको शांत करने के लिये स्वाति और नारद आदि ऋषियों ने वाद्यों का निर्माण किया।''

वाद्य दक्षाध्वरध्वंसोद्वेगत्यागाय शुंभना।

चक्रे कौतुकतो नंदि स्वाति तुंबरू नारदै।[95]

वाद्यों के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव के संबंध में एक अन्य स्रोत के अनुसार ''पूर्व-काल में पृथ्वी पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इनमें से एक का नाम तूर्यांग था। इसी कल्पवृक्ष ने मनुष्य को चार प्रकार के वाद्य प्रदान किये।''[96]

हिन्दुस्तानी संगीत की पृष्ठभूमि पर भारतीय संगीत की वादन परम्परा का एक विशाल कैनवस मौजूद है। जिसमें विभिन्न वाद्यों की संयुक्त व स्वतन्त्र वादन परम्परा भी मौजूद रही है जिसके बारे में हमने पहले विचार किया है। भारतीय संगीत का दो पद्धतियों में विभाजन होने के पश्चात् हिन्दोस्तानी संगीत में परम्परागत व मुस्लिम वाद्य संगीत में से प्रचार में आये। वाद्यों व वादन परम्परा का एक विशिष्ट वादन प्रवाह प्रवहित रहा है। इन वाद्यों स्वतन्त्र स्वरूप व वादन शैली के बारे में विचार करने से पूर्व इन वाद्यों के मौलिक वाद्य वर्गीकरण के बारे में विश्लेषण करना अति अनिवार्य है।

---

94. प्रो. तारा सिंह, *सितार तरंगिनी,* पृ. 79

95. स्वर मेल कल्लानिधि (टीका) पृ. 22

96. *निबन्ध संगीत* (लेख) संगीत वाद्यों की उत्पत्ति एंव विकास, (लेखक) कैलाश पंकज श्रीवास्तव, (संपा) लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ. 54.

हिन्दोस्तानी संगीत का वाद्य वर्गीकरण

हिन्दोस्तानी संगीत में वाद्यों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। तत, अवनद्ध, सुषिर तथा घन इन चार प्रकार के वर्गों के सम्बन्ध में कहा गया है -

ततं वाद्यतुं देवानां गंधर्वाणां च शौषिरम् ।
आनद्ध राक्षसानांतु किन्नराणां घनं विदुः।
निजावतारे गोविंदः सर्वमेवानयत क्षितौ।

अर्थात् तत वाद्य देवताओं से, सुषिर गन्धर्वों से, आनद्ध राक्षसों से तथा घन किन्नरों से संबंधित थे। जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आये।[97]

संगीत मकरन्द के रचियता नारद ने कल्पित ध्वनि उत्पन्न करने के पाँच साधनों का उल्लेख किया है। ये ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज होती हैं। कण्ठ ध्वनि को शरीरज, वीणा आदि वाद्य जो नाखुनों से ध्वनि उत्पन्न करते हो नखज, वायु से बजने वाले वाद्य वंशी आदि वायुज हैं, मृदंग आदि वाद्य जो चर्म से मढ़े हो चर्मज व लोहे से बने वाद्य ताल, मंजीरा इत्यादि लोहज हैं। इनमें से शरीरज ईश्वर द्वारा निर्मित व बाकी चारों प्रकार मानव निर्मित हैं। महर्षि भरत और दत्तिल ने वाद्यों के चार वर्ग माने हैं, तत, आनद्ध, घन व सुषिर। नारद ने तीन ही प्रकार के वाद्य माने हैं: आनद्ध, तत एवं सुषिर। (नारदमते चार्मणं तान्त्रिक घनं चेति विधा वाद्यलक्षणम्।

---

97. वही

चिक्कः।[98] शरीरज ध्वनि को वाद्य प्रकार मानने वाले विद्वान वाद्यों के पाँच प्रकार मानते हैं। परन्तु जो शरीरज ध्वनि को वाद्यों से भिन्न मानते हैं उन्होने वाद्यों के चार प्रकारों को माना है। महर्षि भरत के अनुसार : तंत चैवावनद्धं च धनं सुषिरमेवच।

चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ।।१।।
ततं तन्त्रीकृत ज्ञेयमबनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।९९।।[99]

इस प्रकार तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर क्रमशः तन्त्रीवाद्य, पुष्कर वाद्य, ताल वाद्य तथा वंशी वाद्य है। महर्षि भरत ने सभी वाद्यों को आतोद्य कहा है। बाल्मीकि व कालीदास ने भी वाद्य समूह को 'तूर्य' शब्द दिया है। महाभारत में भी अनेक वाद्यों के साथ बजने पर तूर्य का उल्लेख हुआ है। पाली साहित्य में भी 'तुरिय' शब्द को वृन्दावन के समान माना गया है। विमानवत्थु में तुरिय पंचागिक के अर्न्तगत पाँच प्रकार के वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्हें आतत, वितत, आतत-वितत, घन तथा सुषिर कहा गया है।

'वितत' शब्द पाली से आया है जो गायकी में तुकबन्दी के लिये प्रयुक्त होता होगा। विमान वत्थु तुरिय (वृन्दवादन) में तत को आतत व अवनद्ध को वितत कहा गया है और वाद्यों के पाँच प्रकार बताये हैं। मध्य काल में दोनों ही शब्द वितत और अवनद्ध प्रयुक्त होते रहे। वितत शब्द तानसेन से पहले भी प्रयुक्त किया जाता रहा

---

98. वही

99. भरत, *नाट्य शास्त्र,* पृ. 2612

होगा। उनके पूर्व कवि जायसी ने पद्मावत (पृ ६८७) में वितत शब्द का प्रयोग किया है:

तत वितत सिखर घन तारा

पाँचों सबद होइ झनकारा।।७।।

कई विद्वानों के अनुसार तत उन तन्त्री वाद्यों को कहते हैं जो प्रहार से बजाये जाते हैं व वितत उन तन्त्री वाद्यों को कहा जाता है जो रगड़ कर बजाये जाते हैं। परन्तु यह तर्कसंगत नहीं लगता। क्योंकि सभी प्रकार के तन्त्री वाद्यों को तत वाद्य कहा जाना चाहिये। अत: वितत का अर्थ अवनद्ध से लिया जाना चाहिए। प्रहार करके और रगड़ कर बजाये जाने वाले वाद्य तत वाद्यों की ही उपश्रेणी में आते हैं।

सभी प्रकार के तन्त्री वाद्यों को 'तत-वाद्य' कहते हैं। छिद्रों में पफूंक मारने से ध्वनि उत्पन्न करने वाले 'सुषिरवाद्य' हैं। चमड़े से मढ़े हुए वाद्य 'अनवद्ध' वाद्य कहलाते हैं। कांस्य आदि धातुओं से बने वाद्यों को घन वाद्य कहा जाता है। दशम ग्रन्थ में भी चार प्रकार के वाद्यों का इस तरह वर्णन मिलता है। ''तत बित घन सुपरस बाजै। मन मन रागे गुनि गन नाजै।''[100]

तत वाद्यों में विभिन्न प्रकार की वीणाएं, जिनमें एक तन्त्री, नकुल, त्रितन्त्रिका, चित्रा, विपन्ची, मत्तकोकिला का प्रयोग तानसेन द्वारा हुआ है। तानसेन ने संगीतसार में तत, वितत, घन, सुषिर नाम से वाद्यों के वर्गीकरण का उल्लेख किया है :

---

100. तारा सिंह, *सितार तरंगिनी,* पृ. 79

तत को पहले कहत हैं वितत दूसरो जान ।

तीजो घन चौथे सिखर तानसेन परमान।।

तार लगे सब साज के सो तत ही तुम मान।

चरम मढ्यो जाको मुखर वितत सु कहे बखान।।

कंस ताल के आदि दै घन जिय जानहु गीत।

तानसेन संगीत रहा बाजत सिखर पुनीत।।

: नाद नगर बसायो सुरपति महल छायो उनचास

कोट तान अच्छर विश्राम पायो।

गीत छन्द तत वितत घन शिखर कंचन ताल के

किवाड आलाप ताली।

हीरा पै थाट नग लगे बरज जंजीर त्रेवट कुंजी

तामे ध्रुपद सो नग छिपायो ।।[101]

इन उद्धरणों में अवनद्ध का प्रयोग कहीं नहीं हुआ। और 'चरम मढयो जाको मुखर वितत सु कहे बखान से यह सिद्ध होता है कि अवनद्ध को ही तानसेन ने वितत कहा है। ''तानसेन के पहले संगीत चूड़ामणि (पृ. 69) में भी अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग मिलता है :

---

101. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 14

तत च विततं चैव धन सुषिरमेव च

गानं चैव तु पञ्चैतत् पञ्चशब्दा: प्रकीर्तिता: ।।१।।

तत् च तन्त्रितं विद्याद विततं मुखवादनम्।

घन च कांस्यतालादि तु सुषिर वायुपूरितम्।।२।।[102]

वाद्यों के चार वर्गों के विषय में सदारंग द्वारा रचित मियाँ मल्हार का ख्याल बड़ा महत्वपूर्ण है।

स्थाई - बाजन तत बितत घन शिखर सब बाजै।

सजन घर काजै सोहाग राज।।''

अन्तरा - इन्द्र राजा नये बरस की मुबारक लीजै,

बून्दन को सेहरा मोतियन चंवर झुलायायो

''सदारंग'' सन मुहम्मद शाह छत्रपती के

जश्न, शुभ दिन आज।।''[103]

चारो वर्गों के वाद्यों में प्राकृतिक तत्व प्रधान रहते हैं 'तत' वाद्य आकाश तत्व प्रधान । 'सुषिर' वाद्य वायुतत्व प्रधान, अवनद्ध जल तत्व प्रधान और घन वाद्य पृथ्वी तत्व प्रधान हैं। चारों प्रकार के वाद्यों में अग्नि तत्व विद्यामान रहता है क्योंकि चारों में से ध्वनि उत्पन्न होती है और ध्वनि तेजोमयी होती है।''[104]

---

102. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 14

103. उद्धत - प्रो. तारा सिंह, *सितार तरगिनी,* पृ. 80

104. विमला मुसलगाँवकर, डा. *भारतीय संगीत का दर्शनपरक अनुशीलन,* पृ. 352 - 353

तत वाद्यों में आलापिनी, किन्नरी, पिनाकी और आधुनिक तन्त्री वाद्य अर्थात जन्त्र, चतुस्तन्त्री, विचित्र वीणा, रूद्रवीणा, सितार, सरोद, स्वरबत, बाल सरस्वती, स्वर मण्डल, सारंगी, दिलरूबा, वायलिन, तंबूरा या तानपुरा, मेार सिंह आदि आते हैं। इन वाद्यों के इलावा कमानी वाले वाद्यों सुर, सिंगार, सुरबहार, रबाब, गरप, गिटार, सरोद व मैंडोलिन।

वादन क्रिया के आधार पर तत वाद्यों के चार उपवर्ग हैं।

अँगुलियों से छेड़ कर बजाये जाने वाले वाद्य जैसे स्वर मण्डल, तानपूरा, कोण या मिजराब से बजाये जाने वाले वाद्य। इसमें सितार, सरोद, रूद्रवीणा, विचित्रवीणा, तंजोरीवीणा, गोटुवाद्यम् आते हैं। गज से रगड़ कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में सारंगी रावण हत्था, इसराज, दिलरूबा, डण्डी से प्रहार करके बजाये जाने वाले वाद्य, जिनमें सन्तूर, कानून आदि वाद्य आते हैं।

गज से रगड़ कर बजाये जाने वाले वाद्य सारंगी, इसराज, दिलरूबा व वायलिन में गज के एक आवर्तन पूरा करने तक आवाज कापफी देर तक स्थाई रहती है इसलिये 'चिर स्थाई रहना' के सिद्धान्त पर इन वाद्यों की वादन शैली मानव कंठ के अनुकूल होती है। इसलिये इन वाद्यों की वादन शैली गायन पर आधारित है। प्रो0 तारा सिंह ने वादन क्रिया के आधार पर वाद्यों को तीन उपवर्गों में बाँटा है। उन्होने डण्डी से प्रहार करके बजाये जाने वाले वाद्य जैसे सन्तूर, कानून आदि का उल्लेख नहीं किया

है।[105] जबकि बनावट के आधार पर तत वाद्यों के छः उपवर्ग प0 लाल मणि मिश्र ने माने हैं।[106]

प्राणियों के शरीर में नाड़ियां सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसी प्रकार तत-वाद्यों में भी तन्त्रीयों की सबसे अधिक प्रधानता रहती है। ततवाद्यों में तन्त्री का इतना महत्व है कि कुछ वीणाओं के नाम तन्त्री संख्या पर मिलते हैं जैसे एक तन्त्रिका, त्रितन्त्रिका, शततन्त्रिका आदि। शरीर में मुख्य 14 नाड़ियां मुख्य हैं और तीन नाडियां को ही प्रमुख माना गया है और उनमें से भी एक को श्रेष्ठतम कहा गया है। (संगीत रत्नाकर) उसी प्रकार शारंगदेव एक तन्त्री वीणा को सभी वीणाओं की प्रकृति के रूप में बताते हैं। शरीर में नाड़ियों के माध्यम से ही नाद का जन्म होता है और तत वाद्यों में तन्त्री पर आघात करने से नाद प्रकट होता है। तत वाद्य में चेतन तत्व अधिक रहता है अतः वाद्यों में तत वाद्यों को सबसे पूर्ण वाद्य माना गया है।[107]

अवनद्ध वाद्यों को वितत भी कहा जाता है। चर्म से मढ़े हुए वाद्यों पर हाथ से प्रहार करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इस वर्ग में मृदंग, पखावज, मांदल, खोल, ढोल, ढोलकी, तबला, डपफ, धोंसा, टम्ब-टम्ब, खंजरी, नगारा आदि वाद्य आते हैं। प्राचीन काल के अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, मार्दल या मद्दल, मुरज, पणव, दर्दुर, हुडुक्का, पुष्कर, घट, डिंडिम, ढक्का, आवुज, कुडुक्का, कडुवा, ढवस, घढस, रूञ्जा, डमरूक, भण्डि, ढक्का, ढक्कुलि, सेल्लुका, झल्लरी, माण, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी,

---

105. तारा सिंह, *सितार तरंगिनी,* पृ. 79, 80

106. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 39

107. विमला मुसलगाँवक्रर, डा. *भारतीय संगीत का दर्शन परक अनुशीलन,* पृ. 352, 353

निस्साण, तुम्बकी आदि हैं। यह वाद्य आज भी कहीं-कहीं किन्हीं और रूपों में प्रयुक्त किये जाते हैं इनके साथ ढोलक, तबला, खन्जरी, ड्रम, कुन्तल, किरिक्कटी, जुमिडिका, दासरीका, तप्पट्टा, तमुक्कु, पम्बै, तबुल (डिंडिम), शुद्ध, मद्धल, ढोलकी आदि भी हैं।[108]

यह वाद्य लय और ताल की गति नामने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं आधुनिक काल में मृदंग पखावज और तबले का कापफी विकास हुआ है व इन्हें स्वतन्त्र वादन में भी प्रयुक्त किया जाता है।

ताल प्रधान वाद्यों में से अवनद्ध वाद्यों को प्रमुख माना गया है। संगीत रत्नाकर में कहा गया है कि स्वर वाद्यों से गीत उत्पन्न होता है और अवनद्ध से वह उपरांजित होता है और घन वाद्यों से उसे मापा जाता है अवनद्ध वाद्यों को वितत, आनद्ध और भाण्डवाद्य भी कहा जाता है। यह वाद्य भीतर से खोखले, मिट्टी, लकड़ी अथवा धातु के बने होते हैं और इनके मुख चर्म से मढ़े होते हैं। हाथ या किसी अन्य वस्तु के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न करते हैं। तत या सुषिर की भांति नाद् की विविधता, विचित्रता इनमें प्राप्त नहीं होती। वाद्यों में अवनद्ध वाद्यों का कार्य केवल मापना ही नहीं किन्तु लघु-गुरू प्रहार करना भी है। जिस प्रकार तंत्री वाद्यों में वीणा इत्यादि का सम्बन्ध मानव शरीर से जोड़कर देखा गया है जैसे तंत्रीयों की नाड़ियों से तुलना की गई है उसी प्रकार अवनद्ध वाद्य भी मानव शरीर की भाँति निर्मित किये गए हैं।

---

108. के वासुदेव शास्त्री, *संगीत शास्त्र,* पृ. 254

अवनद्ध वाद्यों का वर्गीकरण अण्डज देह योनियों के समान है। ये वाद्य अण्डजों की भाँति प्राणियों की त्वचा और प्राकृतिक उपकरणों (मृतिका, लकड़ी, धातु) से मिलकर बनते हैं। इस योनि में त्वचा का विशेष महत्त्व होता है। उसी तरह अवनद्ध वाद्यों में भी त्वचा (खाल) का विशेष महत्व माना जाता है। अवनद्ध वाद्यों में त्वचा कम्पित पदार्थ है। उसके न रहने पर वाद्य का सम्पूर्ण शरीर अस्तित्व में होने पर भी उसमें नादोत्पत्ति की क्षमता नहीं होती।''[109]

सुषिर वाद्य वायुतत्व प्रधान होते हैं। उनमें प्राणवायु के नियम, संयम का महत्व होता है। इनमें प्रमुख तत्व वायु हैं। ये नाद प्रधान वाद्य हैं। प्राण वायु से पफूंके जाने पर अग्नि और वायु के संयोग से यह बजते हैं। इनमें चेतन तत्व का जब प्रवेश होता है तब इनमें ध्वनि उत्पन्न होती है।

शारंगदेव, अभिनवगुप्त आदि ग्रन्थकारों ने तत और सुषिर वाद्यों को गीत की उत्पत्ति से सम्बन्धित बताया है।[110] तत व सुषिर वाद्यों में स्वरों की उत्पत्ति में केवल इतना ही अन्तर है कि तत वाद्य अघात से और सुषिर वाद्यों में वायु को रन्ध्रों में भरने से स्वर उत्पत्ति होती है। देखा जाये सुषिर वाद्य तत वाद्यों से सर्वदा भिन्न हैं। तत वाद्यों को बजाने वाला किसी अन्य के संकेतों पर नाच रहा है। किन्तु सुषिर में तो प्राण ही ध्वनि के रूप में निःसृत होता है। तत वाद्यों के बाद सुषिर वाद्यों को ही उत्तम माना गया है।[111] अभिनव गुप्तपाद ने कहा कि मूर्छित वीणा को अनजान भी बजायेगा तो वह

---

109. विमला मुसलगाँवक्रर, (डा.) *भारतीय संगीत का दर्शन परक अनुशीलन,* पृ. 365
110. वही
111. वही

स्वर में ही बजेगी, किन्तु सुषिर वाद्यों में वह बात नहीं है। सुषिर वाद्यों में 'वंश' को प्रमुख माना जाता है। सुषिर का अर्थ है छिद्र, क्योंकि सुषिर वाद्यों में छिद्र के द्वारा प्राण का संयोग होता है।

सुषिर वाद्य - सुषिर वाद्यों में वायु के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है। इनमें वंशी आदि विविध प्रकार की बाँसुरियाँ, शहनाई, सुन्दरी, नागस्वर, मुखवीणा या छोटा नागस्वर, काहल, श्री चिन्ह (तिरूच्चित्र), शंख, शृङ्ग., क्लारिनट, ट्रम्पेट, साक्सपफोन आदि आते हैं। इनके इलावा, नपफीरी, मुरली, अजगोज़ा, नरसिंगा, सिंगी, कारनेट भी इसी श्रेणी में आते हैं। इन वाद्यों की वादन शैली गायन पर आधारित होती है।

घन वाद्य - घन वाद्यों में स्वरों की उत्पति धातु के कम्पन द्वारा होती है। इस श्रेण में झाँझ, मंजीरा, घुंघरू, चिमटा, घड़ियाल, कैंसीया, छैने, घण्टियां, घंटा, करताल (खड़ताल) खंजरी आदि वाद्य आते हैं। घन वाद्यों का प्रयोग लय दिखाने के लिये किया जाता है। इनमें से एक ही स्वर की उत्पत्ति होती है। कुछ वाद्य ऐसे भी हैं जिन्हें घन वाद्य कहा जा सकता है परन्तु इस श्रेणी में शामिल नहीं है। ''घन वाद्यों का आधुनिक काल में काफी विकास हो रहा है। इस वर्ग का एक और उपवर्ग बनाना चाहिये ताकि आधुनिक तरंगों के सभी प्रकार इस श्रेणी में शामिल हो सकें। दूसरे वर्ग में जल तरंग, नल तरंग, काष्ठ तरंग, स्टील तरंग, खोपरी तरंग शामिल कर सकते हैं। इन सभी वाद्यों का एक अल्ग वर्ग होना चाहिये जिसे 'तरंग वाद्य कह सकते हैं।''[112]

---

112. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 16

घन वाद्यों में पृथ्वी तत्व की प्रधानता रहती है। संगीत रत्नाकर में इन्हें ''घनोमूर्ति: साभिघाताद्घाघते पत्र वद्घनम्'' कह कर इनकी कठोरता और मूर्तिमता की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इनमें कम्पित पदार्थ उनका ढाँचा ही होता है।[113]

घनवाद्य प्राय: लकड़ी, काँसा, पीतल, लोहे आदि के बनते हैं। अन्य धातुओं की अपेक्षा काँसे के बने घन वाद्यों में अधिक समय तक ध्वनि गूँजित होती रहती है। ये वाद्य ताल प्रधान वाद्य हैं। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी तक घन वाद्यों का कापफी प्रयोग होता था। किन्तु अब शास्त्रीय संगीत में इनका स्थान अवनद्ध वाद्यों ने ले लिया है। उत्तर-भारतीय शास्त्रीय संगीत में आजकल घन वाद्य का बिल्कुल प्रयोग नहीं होता। पहले ताल की क्रियाओं को घन वाद्य दर्शाते थे और गीत में स्थित लघु-गुरू की अनुकृति को अवनद्ध वाद्य दर्शाते थे। पर अब दोनों काम अवनद्ध वाद्य ही करते हैं।

घन वाद्यों में तीव्रता की विविधता तो उत्पन्न की जा सकती है पर तारता एक सी रहती है।

दो हजार वर्षों में वाद्य वर्गीकरण में केवल दो परिवर्तन हुए हैं। अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग होना शुरू हो गया और ततानद्ध नाम का नया वर्गीकरण आरम्भ हुआ।

---

113. विमला मुसलगाँवक्रर, (डा.), *भारतीय संगीत का दर्शन परक अनुशीलन,* पृ. 365

ततवाद्य - वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण को पार्थिव देहज योनियां भी प्रभावित करती हैं।

वीणा - ''वेत्ति बुद्धिमात्रभवगच्छतीति वीणा'' यह व्युत्पत्ति शब्दकल्पद्रुम में दी गई है। इससे यह प्रतीत होता है कि सृष्टि के विकास क्रम में ''बुद्धि'' यानि प्रतिभारूप नादात्मक चेतना तत्व (प्रकृत्ति) को सृष्टि के तल तक जो उतार कर ले आती है, उसे ''वीणा'' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि नादात्मक चेतनातत्व का सर्वप्रथम क्रमिक अवतरण कराने से उसे ''वीणा' संज्ञा प्राप्त हुई है।

पर्दो से रहित वीणाओं में घोषिका या एकतन्त्री वीणा और पर्दो वाी वीणा में किन्नरी वीणा प्रचलित थी। किन्नरी वीणा का उल्लेख मानसोल्लास में सर्वप्रथम आता है। ''शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में किन्नरी वीणा के दो प्रकार बताये हैं- लहवी और बृहती।''

नाट्यशास्त्र में भरत ने चित्र वीणा का उल्लेख सात तारों वाली वीणा के रूप में किया है। 'सत्पतन्त्री भवेच्चित्रा' ... (291 118) भरत के अनुसार चित्र वीणा को केवल अंगुलियों से बजाना चाहिये।

'वीणा' शब्द का प्रयोग सबसे पहले वैदिक काल में हुआ। सामवेद में गान के साथ वीणा वादन का प्रयोग विहित है। सामवेद के गायन के साथ बजाई जाने वाली वीणाओं के दस प्रकार थे। अघाटी, पिच्छोला, कर्कटिका, अलाबु, वक्रा, कपिशीर्षणी,

शीलवीणा, महावीणा, काण्डवीणा तथा बाण। अघाटी वीणा को लोहे के त्रिकोण से बजाया जाता था। कर्कटिका वीणा में दो तारें रहती थीं। अलाबु वीणा में कद्दू लगा रहता था। वक्र वीणा, वक्र के समान होती थी। बाण में 100 तारें लगी होती थीं। इनके इलावा वैदिक काल में एक तन्त्री वीणा का भी उपयोग होता था जिसको 'बहनवीणा' या 'घोष' भी कहा जाता था। ''वास्तव में एक तन्त्री वीणा ही विविध प्रकार की वीणाओं की जननी है। दो तन्त्री वाली वीणा को नकुल और तीन तन्त्री वीणा को त्रितन्त्री या जन्त्र कहा गया है। सप्त तारों वाली वीणा को 'चित्रा' और नौ तारों वाली वीणा को 'विपन्ची' कहा गया है। जिन्हें नाखुनों और कोण से बजाया जाता था। ''मत्त्कोकिला'' इक्कीस तारों वाली वीणा है। इसे 'स्वरमण्डल' भी कहते हैं। इस वीणा को सभी वीणाओं में से मुख्य माना गया है क्योंकि इसमें सातों स्वरों के लिये सात-सात तारें लगी होती है।''[114]

वैदिक काल में वीणा के अन्य कई प्रकार भी प्रचलित थे। जिनमें महती, कात्यायनी, रावणी, मत्त कोकिला, औदुम्बरी, घोषवती, सरन्धी, जया-ज्येष्ठा, कच्छुपी, कुन्जिका इत्यादि। मतंग चित्र वीणा बजाते थे। संगीत मकरन्द, संगीत सुधा में भी चित्रा वीणा का उल्लेख मिलता है। ''महर्षि भरत ने विपंची और चित्र वीणा को प्रमुख बताया है।''[115]

---

114. के वासुदेव शास्त्री, *संगीत शास्त्र,* पृ. 85

115. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 43

संगीत रत्नाकर में त्रितन्त्री वीणा का उल्लेख नकुलादि वीणाओं के अर्न्तगत मिलता है:- स्यादन्वर्था त्रितन्त्रिका शारंगदेव के काल में प्रचलित त्रितन्त्री वीणा ने तेरहवीं शताब्दी में वीणाओं के रूप में होने वाले परिवर्तनों द्वारा सितार तथा तम्बूरा का रूप ग्रहण कर लिया। ''कल्लिनाथ ने शारंगदेव द्वारा त्रितन्त्री वीणा को संगीतरत्नाकर की टीका में 'यन्त्र' कहा है :

तंत्र त्रितन्त्रिकैव लोके जन्त्रशब्देनोच्यते। (वाद्याध्यय, पृ0 248)[116]

शारगदेव ने विपंची वीणा को नौ तारों वाली वीणा बताया है जिसका वादन अंगुलियों या कोण से किया जाता था। पुष्कर वाद्यों के आविष्कारक स्वातिमुनि को विपंची वादक कहा जाता है। रामायण में भी महर्षि वाल्मीकि ने विपंची वीणा का उल्लेख किया है। विपंची वीणा का विकास वैदिक युग के पश्चात् हुआ। रूद्र वीणा का उल्लेख संगीत मकरन्द, संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों में मिलता है। जिसमें बारह पर्दे होते थे। रूद्र वीणा के अनेक रूप भेद प्रचलित हुए, जिनमें सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में सरस्वती वीणा तथा तंजोरी वीणा कहा जाने लगा। यह वीणाएं दक्षिण भारत में प्रचलित हैं। ''अहोबल आदि संगीतकारों ने रूद्र वीणा के छह रूप बताये हैं। जिनमें दो तारों वाली रूद्र वीणा को नकुली, तीन तारों वाली रूद्र वीणा को त्रितन्त्री, चार तारों वाली रूद्र वीणा को राजधानी, पांच तारों वाली वीणा को विपंची, छह तारों वाली वीणा को सर्वरी और सात तारों वाली वीणा को परिवादिनी वीणा कहा है।''[117]

---

116. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 43

117. वही

आधुनिक काल में प्रचलित वीणा के आकार, प्रकार, वादन विधि इत्यादि पर ध्यान दिया जाये तो यह महती वीणा से मिलती जुलती लगती है। ''प्रचलित तत वाद्य सितार, सुरबहार, सरोद, इसराज, रबाब, सुरश्रृंगार इत्यादि के साथ महती वीणा का मूलगत पार्थक्य है।''[118]

सभी प्रकार के तत वाद्यों में तबली और खोल होते हैं परन्तु वीणा में तबली नहीं होती। तबली में एक लकड़ी की पट्टी है, जिसके उपर जवारी टिकी होती है, जिसके द्वारा तूम्बा जुड़ा होता है। तबली को अन्यान्य वाद्य के डण्डे के साथ जोड़ा जाता है। बाकी सभी तत् वाद्यों में मुख्य तार, सामने से वाद्य देखने पर दाहिनी ओर रहता है परन्तु महत्ती वीणा में बायीं ओर रहता है। इसलिये इस वीणा का वादन शैली सभी तत वाद्यों से भिन्न है। वर्तमान काल में डाँड काष्ठ निर्मित होता है।

^^egÙkh oh.kk v py FkkV d ko kj gSA bld sinZe ke v kfn }kjk MkaM lst qqjs jgr sgSA oh.kk esa MkaM d sÅ ijh Hkkx esa p kj izku rkj gksrs sgSA v kSj n'kZd d sck;h v kSj nkfgus d kjhd srkj v kSj nk;havkSj ,d N ksVus d krkj jgr kgSA ;g rkj ck;sa gkFk d sv axwBs sl sct k;k t krk gSA fp d kjh d snkssr kjksa d sck;sa gkFk d hd fu"B kv kSj e/;e rkj d ksr t Sh ,oa e è;e ek l sfet jkc d hl gk;k rk l sct k;k t krk gSA**[119] हाँलाकि यह माना गया है कि आजकल के प्रमुख तन्त्री वाद्य महती वीणा से प्रेरित हैं, परन्तु जिस वीणा का सबसे अधिक प्रचलन है वह है विचित्र वीणा। इस वीणा का वादन

---

118. विमलकॉत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 131

119. वही

कठिन होने के कारण मध्यकाल में यह प्राय: विलुप्त सी हो गई थी और इसका स्थान रबाब ने ले लिया था परन्तु आज कल यह वीणा फिर से अपने विकसित रुप में प्रचार में आ गई है और कुछ प्रमुख वाद्यकारों द्वारा भी बजाई जाती है। ''प्राचीन काल में जिसे ब्रह्मवीणा,घोषिका, घोषवती, एकतन्त्री वीणा आदि कहते थे उसी को आज 'विचित्र वीणा अथवा बट्टा बीन कहा जाता है।''[120]

दक्षिण भारत में प्रचलित वीणा जिसे सरस्वती वीणा भी कहा जाता है बीन से भिन्न होती है और उसका सारा ढाँचा लकडी का होता है। कभी-कभी वीणा के पूरे ढाँचे को लकडी के एक ही कुन्दे से बनाया जाता है। उस वीणा को 'इकाण्ड वीणा'[121] कहा जाता है बिना पर्दों की वीणा को ही उत्तरी भारत में विचित्र वीणा और दक्षिणी भारत में गोटुवाद्यम् कहा जाता है।[122] मत्तकोकिला वीणा को बजाने की विधि एक तन्त्री वीणा के समान ही है। मत्तकोकिला आधारवीणा है।[123]

---

120. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 128

121. Veena of South India (also known sometimes as Saraswati Veena) is different from been by being made entirely of wood. The long hollow finger board is also of wood separately made of attached to the neck. But in special cases, the whole instrument is carved out of one log of wood; such a lute is called ekanda veena. The kind of veena is supposed to be of very high quality and is greatly valued B.C. Deva, An Introduction to Indian Music, Page, 55.

122. Without frets are vichitra veena of North India and gottuvadyam of Southern parts of the country. The former is akin to rudra been and the letter to Saraswati Veena, both is construction and manner of plucking. A ball or a small cylinder of glass (or hard ebony wood) is slid along the wires to play the melody. The structure and technique of such instruments place severe handicaps on the player. The absence of frets is itself a difficulty; but to adjust the pressure of Kodu or batta (the slider) is an extremely delicate process and even the slightest change in pressure introduces deviations in pitch. It is therefore rare to find really competent players of these instruments. *B.C. Deva, An Introduction to Indian Music, Page 56.*

123. 'Matta Kokila' which is like Swara- Mandala having strings of silken cord, its plying method is like that of EK-Tantri. According to the author of Bharat-Kosa, the matta kokila is the principal Veena from which other veenas are derived.

\- Sharmistha Ghosh, *String Instruments of North India,* Page - 25

विचित्र वीणा का स्वरुप :– वीणा का दण्ड लगभग पचास इंच लम्बा होता हैं। यह पाँच से चार इंच तक चौडा और दो इच तक गहरा होता है। दण्ड को तुन्न या टीक की लकड़ी से बनाया जाता है। दण्ड वीणा के बडे आकार को दर्शाता है। दण्ड के तीन भाग होते हैं। पहले भाग में खूँटिया लगी रहती हैं। जो संख्या में चार होती हैं। इसका ऊपरी भाग बारह इंच लम्बा होता है। जिसके दोनों भागों में तीन–तीन खूँटियां लगाई जाती हैं। यह भाग नीचे से खुला होता हैं इसका एक सिरा मुख्य दण्ड में प्रवेश करता है और दण्ड के साथ मज़बूती से जोड दिया जाता है। और दूसरे सिरे पर दण्ड की लकडी से ही किसी पक्षी का आकार बना दिया जाता है। दूसरा भाग मुख्य दण्ड का भाग होता है जिसकी लम्बाई लगभग छत्तीस इंच होती है। इस भाग के दक्षिणी पार्श्व में तीन चिकारियों की मुख्य खूँटियाँ लगी होती हैं और वाम पार्श्व में दो चिकारी की खूँटियां लगी रहती हैं। इसके इलावा दक्षिणी पार्श्व में ग्यारह से पंद्रह तक तरब के तारों की खूंटियां लगी होती है। तरब के तारों की व्यवस्था सितार के समान होती हैं। तारों को बाँधने के लिये दण्ड के अन्त में 'लंगोट' लगा दिया जाता है। दण्ड को बीच में से खोखला करने के पश्चात् दण्ड के उपर एक पट्टी को जोड दिया जाता है जो दण्ड का तीसरा भाग है। इस पट्टी के मध्य भाग में तरब की तारों के लिये छिद्र बने होते हैं। इन छिद्रों में हड्डी की फुल्ली लगी रहती है। इन छिद्रों में से तार गुजर कर दण्ड के भीतर प्रवेश करके खूँटियों से बँधा रहता है। इस भाग के ऊपर घोडी रखी जाती हैं जिसकी

लंगोट से दूरी लगभग तीन इंच होती है। परन्तु घोड़ियां रखने के स्थान का फैलाव कुछ अधिक होता है और भीतर से गहराई भी तीन इंच तक कर दी जाती है जिससे स्वरों में अधिक गूँज उत्पन्न हो सके। घोडियों के नीचले भाग को कुछ चौड़ा और गहरा करके किसी बडी चिड़िया के पेट जैसा बना दिया जाता है, उस आकार पर चिड़िया के धड़ और उसका उपरी भाग अलग लकडी लेकर बना दिया जाता है। वीणा में दो समान आकार के त्म्बे लगाये जाते हैं। इन का व्यास लगभग 46 इंच होता है। यह मुख्य दण्ड में वाम पार्श्व में लगभग बारह इंच तथा दक्षिण पार्श्व से लगभग आठ इंच पर होते है।

त्म्बे के नीचे के हिस्से को लगभग दस इंच के व्यास का काटा जाता है। यह वादन क्रिया के समय जमीन से स्पर्श करता है। इस त्म्बे के चारों तरफ छोटे गुटके लगा दिये जाते हैं जिससे वीणा के दण्ड की गूँज उसके भूमि को स्पर्श करते रहने पर भी त्म्बों में प्रवेश करके छिद्रों में से बाहर आ सके। इन तूम्बों को दण्ड से जोडने के लिये लकड़ी का गुलू लगाया जाता है। लकड़ी पर नक्काशी करके सुन्दर पत्ते बनाये जाते हैं। इस गुलू के उपर के भाग में पेंच लगाये जाते है। जिन्हें दण्ड के छिद्रों में लगे हुए पेंच में डाल कर घुमा कर तुम्बों को कस दिया जाता है। वीणा के दण्ड के एक सिरे पर घुड़च रखी जाती है और दूसरे सिरे पर तार गहन लगाया जाता है। जिसके उपर से मुख्य छः तार गुजरते हैं। तार गहन और मुख्य घुड़च की ऊँचाई को समान रखा जाता है। वीणा में चिकारी के पाँच तार होते हैं, तीन दक्षिण पार्श्व में और दो वाम पार्श्व में

दोनों पार्श्वो पर दाढे लगायी जाती है जिन पर से तार रख कर गुजारे जाते हैं। यह तार खूटियों से दाढ़ के ऊपर से होते हुए घुडच की तरफ जाते हैं। वीणा में दस या ग्यारह मुख्य तार और ग्यारह से पंद्रह तरब के तार लगाये जाते हैं। जिनका विवरण निम्न प्रकार से है :

मध्यम का तार :- मध्यम का तार इसपात का लगाया जाता है जिसकी मोटाई तीन या चार नम्बर होती है। इस तार को मध्य सप्तक के मध्यम स्वर से मिलाया जाता है।

षड़ज का तार :- यह तार भी इसपात का होता है यह छ: या सात नम्बर का होता है इस तार को मध्य सप्तक के षड़ज से मिलाया जाता है।

पंचम का तार :- पंचम का तार भी इसपात का होता है यह आठ या नौ नम्बर का होता है। इस तार को मन्द्र सप्तक के पंचम से मिलाया जाता है।

षड्ज का तार :- षड्ज का यह तार पीतल का होता है। इसकी मोटाई इक्कीस या बाईस नम्बर की होती है। इस तार को मन्द्र सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है।

पंचम का तार :- पंचम का यह तार पीतल निर्मित होता है, इस की मोटाई अठारह या उन्नीस नम्बर की होती है। यह तार को मन्द्र सप्तक के पंचम से मिलाया जाता है।

षडज का तार :- षड्ज का यह तार भी पीतल निर्मित होता है। इस तार को मन्द्र सप्तक के षड्ज में मिलाया जाता है।

इन सभी तारों के इलावा दण्ड के मध्य क्षेत्र के वाम पार्श्व में तीन और दक्षिण पार्श्व में दो या एक चिकारी के तार लगाये जाते हैं। वाम पार्श्व की तीन खूँटियों में, जिस खूँटी पर सबसे बडा तार लगाया जाता है, उस को मध्य सप्तक के षड्ज स्वर में मिलाया जाता है। बीच वाली खूँटी के तार को तार षड्ज में मिलाया जाता है और सबसे छोटे तार को अति तार षड्ज स्वर में मिलाया जाता है। इन तारों की मोटाई क्रमश: चार, दो और एक नम्बर की होती है। दक्षिण पार्श्व में एक या दो तारों को तार षड्ज में मिलाया जाता है। यह तार प्राय:दो नम्बर की मोटाई के होते हैं। इन मुख्य तारों के इलावा दण्ड के बायें भाग में लगी तरब की खूँटियों में दो, एक और शून्य मोटाई के तार लगाये जाते हैं। इन तारों को वादन करने से पहले राग में लगने वाले स्वरों के अनुसार मिला लिया जाता है। वीणा वादन के लिये बायें हाथ में अण्डाकार शीशे का एक गोला इस प्रकार पकड़ा जाता है कि उसका नीचे का हिस्सा तारों को स्पर्श करे और उसे आगे या पीछे आसानी से किया जा सके। दायें हाथ में तर्जनी मध्यमा और कनिष्ठा अँगुलियों में मिज़राब पहना जाता है जिनके द्वारा तारों को बजाया जाता है।

तानपुरा :- तानपूरे के वादन से गायक को आधार स्वर की निरन्तर अनुभूति रहती है। जिससे गायनके प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक ही आधार स्वर रहता है। ''प्राचीन काल में गायक के साथ स्वर देने के लिये एक तन्त्री एवं द्वितन्त्री जैसे वीणाओं की तन्त्रियों को निरन्तर छेड़ा जाता था ताकि गायक का ध्यान आरम्भिक स्वर पर सदा

केन्द्रित रहे। प्रतीत होता है कि इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संवाद-सिद्धान्त के आधार पर चार तन्त्री वाला तम्ब्रा प्रचार में आया है।''[124]

तानपूरे को तुम्बुरु-वीणा भी कहा जाता हैं। यह एक तारा जाति का वाद्य है, जिससे राग उत्पन्न नहीं किया जा सकता बल्कि कुछ स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।[125]

संगीत पारिजात में सर्वप्रथम तानपूरे का उल्लेख मिलता है। इसका सम्बन्ध तुम्बरु ऋषि से जोडा जाता है। तानपूरे का आधुनिक रुप तेरहवीं शताब्धी के बाद का है। संगीत पारिजात ग्रन्थ से पहले तानपूरे का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। भरत के नाट्य शास्त्र से लेकर संगीत रत्नाकर तक कहीं भी तानपूरे का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह दो सकता है कि भारतीय प्राचीन गायन शैली ऐसी थी जिसमें तानपूरे जैसे वाद्य की आवश्यकता नहीं थी। ताल को गायक स्वयं हाथों से दर्शाता था और गायन संगति के लिये वीणा और वेणु का प्रयोग किया जाता था। शततन्त्री, मत्तकोकिला, विपंची आदि गायन के साथ प्रयुक्त वीणाओं में प्रत्येक स्वर के लिये अलग-अलग तार होते थे। इन वीणाओं से तानपूरा पूरी तरह से भिन्न था। शारंगदेव द्वारा निर्मित त्रितन्त्री वीणा से तानपूरे की समानता दृष्टिगोचर होती है। ''यह त्रितन्त्री वीणा ही आधुनिक तानपूरे व सितार की जन्मदात्री है।''[126] आईने अकबरी में अबुल फजल ने 'स्वर वीणा' का उल्लेख किया है जो बीन की तरह है जिसमें पर्दे नहीं लगाते। उन्होंने तानपूरे को ही स्वरवीणा कहा है। तानसेन द्वारा रचित एक ध्रुवपद में भी तानपूरे का

---

124. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, *संगीत बोध,* पृ.157
125. विमल कॉंत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 125
126. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 42

जिक्र आता है: 'ताल, परवावज, आवत बाजत ढोलक और तम्बोरा।' वीणा, रबाब, मुरज, डफ़, मुरली मधुर ध्वनि घोरा।।'' तानपूरे का उल्लेख 'संगीत सार' में भी मिलता है यह तानपूरा दो प्रकार का बताया गया है। निबद्व और अनिबद्ध।[127] तानपूरे को पहले तम्बुरा कहा जाता था जिसका सम्बन्ध तम्बूरु ऋषि और नारद से जोडा जाता है। यह भी हो सकता है कि तम्बूरा नाम तूम्बी या तूम्बी फल से पडा हो। तानपूरे का वर्तमान रुप 16वी शताब्दी से प्रचलित है जिसमें ज्यादा परिवर्तन नहीं हुए है केवल तारों और तारों को स्वर में मिलाने को छोड कर।[128] मध्यकाल के विद्वान तानपूरे के दो रुप मानते थे। निबद्ध तानपूरा और अनिबद्ध तानपूरा-निबद्ध तानपूरे में पर्दे होते है और अनिबद्ध तानपूरा बिना पर्दो का होता है। निबद्ध तानपूरा सितार की भाँति है। बनावट के आधार पर तानपूरा दो प्रकार का बनाया जाता है। एक प्रकार का तानपूरा आकार में बडा होता है और उसमें तारे भी मोटी लगाई जाती हैं। यह तानपूरा पुरुषों के लिये बनाया जाता है। महिलायों के लिये बनाये जाने वाले तानपूरे का आकार अपेक्षा कृत छोटा होता है।

तानपूरे का ढाँचा सितार की भाँति होता हैं। इसकी बनावट को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में खुँटियां, दूसरा मध्य भाग और तीसरा भाग तूम्बे और तबली का होता है। खूंटियों और मध्य भाग को दण्ड कहा जाता है। यह भीतर से

---

127. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 42

128. For Instance the tamboora is inavariably connected with the sages Tamburu and Narada, both mythological character, and even if they were historical figures, nothing of their history is known. Having linked these names with the word tamboora, it is a natural that the evoluation of the instrument is traced to times beyond known history. It is probably that the lute got its name from the words tumbi or tumbi phala refering to a pumpking. The present form of the tamboora, may have emerged in about the sixteenth century and has not changed much except fo5r the addition of strings and the manner of tuning. - B.C. Deva, *Musical Instruments,* Page 105,106.

खोखला होता है। इसकी लम्बाई लगभग 40 से 42 इंच रहती है। दण्ड की पीछे से गोलाई सितार के दण्ड की अपेक्षा अधिक रहती है। इसका व्यास बाहर की और से बारह इंच का होता है। तानपूरे में लगाये जाने वाला तूम्बा सितार की अपेक्षा बडा होता है। इसकी तबली भी सितार की तबली से कुछ मोटी होती है। सितार की भाँति ही तानपूरे में भी तूम्बे के पिछले भाग में गुलू बनाया जाता है। यह तूम्बे के साथ जोडा जाता है बाद में दण्ड का कुछ भाग तूम्बे के भीतर डाल कर गुलू से जोड दिया जाता है। जिस से उपर से तबली जोड दी जाती हैं। तानपूरे में चार तार लगाये जाते हैं। इसलिये चार खूँटियां लगाई जाती हैं। इसलिये चार खूँटियां लगाई जाती है। इनमें से एक खूंटी दक्षिण भाग में एक बायें भाग में और दो ऊपर की ओर होती हैं। तानपूरे से एक तारगहन लगाया जाता है।तथा एक पचीसा लगाया जाता है जो दण्ड के उपर से क्रमशः साढे आठ और साढे नौ इंच की दूरी पर होता हैं। इसके भीतर और उपर से चारों तार घुडच की ओर जाते हैं। घुडच सितार के समान होता है परन्तु इसकी हडड्ी उँट की होती है तथा इसका दल भी मोटा होता है। यह लगभग साढ़े तीन इंच लम्बी तथा पौने दो इच चौडी होती है जो पौन इंच उंचे लकडी के पायों पर जमा दी जाती है। तानपूरे का पहला तार बायें भाग की खूँटी में पीतल का चौबीस नम्बर का मोटा तार लगाया जाता हैं । इसको मन्द्र पंचम से मिलाया जाता है। यदि राग में मन्द्र मध्यम प्रबल हो तो इस तार को मन्द्र मध्यम में मिला लिया जाता है। यह तार पीतल के स्थान पर

इस्पात का भी लगाया जा सकता है। जो जोडी के तारों से एक या दो नम्बर अधिक होता है। अगले दो तारों को उपर की ओर लगने वाली खूँटियों पर बाँधा जाता है। जिन्हें जोडी का तार कहा जाता है। यह दोनों तार मध्य सप्तक के षडज़ में मिलाये जाते हैं। इसलिये इन्हें जोड़ी का तार कहा जाता हैं। यह इस्पात निर्मित होते हैं यह छह सात या आठ नम्बर मोटाई के होते है। चौथा तार दक्षिणी भाग की खुटी का बाँधा जाता है यह पीतल निर्मित बाईस नम्बर का होता है जिसे मन्द्र सप्तक के षडज् से मिलाया जाता है। घुडच के उपर के भाग में हड्डी का ढलाव इस तरह किया जाता है कि उसमें झंकार की मात्रा बढ सके और झंकार की ध्वनि आरम्भ से अन्त तक एक जैसी रहे। तानपूरे में जवारी अन्य वाद्यों से भिन्न होती है। तानपूरे की झंकार जवारी खोलने के बाद उसमें लगे प्रत्येक तार के नीचे एक पतला धागा लगाने से होती है। बिना धागे के झंकार उत्पन्न नहीं होती। अन्य किसी वाद्य में धागे का इस तरह प्रयोग नहीं किया जाता। ''तानपूरे में धागा एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।''[129]

तानपूरे के वादन के लिये इसे गोद में रख कर भी बजाया जाता है और खडा करके भी बजाया जाता है। यह दायें हाथ की पहली दो अँगुलियों से छेडा जाता है। वादन के समय यह अवश्य ध्यान रखना होता है कि वादन में निरन्तरता बनी रहे।

---

129. A very important part of the instrument, though the most inconspicuous, is the thread under the wires on the bridge. This, called the jeevan or javari, when placed in the proper position, gives the tonean extraordinary richness."
- B.C. Deva, *An Introduction to Indian music,* Page 54.

आधुनिक काल में बिजली के तानपूरे भी प्रयोग किये जाते हैं। यह बजाने नहीं पडते इस कारण सुविधाजनक हैं। परन्तु बिजली के उतार चढाव के कारण स्वर और लय में बाधा उत्पन्न होने का डर रहता है।

सितार :- 'सितार' फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है तीर तारें। ''तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो को इसके अविष्कार का श्रेय जाता है। परन्तु कहीं भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं मिलता।''[130]

कई विद्वानों के अनुसार सितार का आविष्कार बारहवीं शताब्दी में दिल्ली के अमीर खुसरों ने किया है। और 'सितार' फारसी के सह और तार से आया हैं जिसका अर्थ है तीन तार।[131] गुप्त काल में महाराजा समुन्द्र गुप्त के काल में प्रचलित त्रितन्त्री या सप्त तन्त्री वीणा के आधार पर ही सितार की उत्पत्ति हुई। उनके अनुसार सितार का आविष्कार अमीर खुसरों ने नही किया था। अपितु सदारंग-अदारंग के सम्बन्धी खुसरो खां ने सितार का आविष्कार किया। खुसरों खां पंजाब (मुलतान) के थे। वह मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में संगीतकार थे। खुसरों खां अदारंग (फिरोज खां) के पिता और सदारंग के भाई थे। फिरोज खां साद उल्ला खां नवाब के दरबार में सगीतज्ञ थे। फिरोज खां द्वारा बनाई गते फिरोजखानी गतों के नाम से प्रसिद्व हुई। खुसरों खां ही भारतीय सितार के आविष्कारक थे।[132]

---

130. वही

131. C.R. Day. *The music and Musical Instruments of Southern India and the Deccan,* Page 117-

132. आचार्य वृहस्पति, *संगीत चितांमणि,* पृ. 241-242.

सितार के एक अन्य प्रकार को चारगाह कहते थे जिसमें चार तार होते थे।[133] कई विद्वानों का मत है कि सितार की उत्पत्ति त्रि तन्त्री वीणा के आधार पर हुई। त्रितन्त्री प्राचीन काल में प्रचलित वीणा थी। मध्य काल में इस वीणा को रुद्र वीणा कहा जाता था हो सकता है कि सितार की उत्पत्ति पर्दों वाली निबद्ध रुद्र वीणा के आधार पर हुई हो।[134]

अनेक विद्वानों के अनुसार अमीर खुसरों से काफी पहले सितार भिन्न आकारों में भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित थी। इसे त्रियन्त्री वीणा (संस्कृति) में जिसका अर्थ तीन तारों वाली है) चित्रा वीणा (सात तारों वाली) और परीवादिनी कहा जाता था। परन्तु यह सच है कि अमीर खुसरों ने इसमें कुछ परिवर्तन किये और इस वाद्य को एक नया नाम दिया सहतार (फारसी भाषा में अर्थ है तीन तार)[135] कई विद्वानों के अनुसार सितार वाद्य ईरान से भारत में आया। परन्तु ईरान में प्रचलित तारों वाले वाद्य सितार से काफी भिन्न है। सितार की बनावट की विशेषताएं भारतीय वाद्यों में मिलती हैं जैसे कि घुडच का चपटा होना जिसमें ऊँट की हड्डी या हाथी दाँत का प्रयोग होता है।है जिससे वाद्य की झंकार ज्यादा उत्पन्न होती है। इस प्रकार की घुडच का प्रयोग उन्हीं वाद्यों में होता है जिन को मिजराब या त्रिकोण से बजाया जाता है। गज से बजाये जाने वाले वाद्यों में भिन्न प्रकार की घुडच लगायी जाती है। भारतीय वाद्यों में पर्दों की व्यवस्था भी विशेष रहती है। जो और किसी देश में नहीं है। तीसरी विशेषता चिकारी के तारों की

---

133. Ibid

134. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ.54

135. Many scholars believe that the sitar was in existence long before Amir Khusru's time, in diverse shapes in different regions of India. It was variously called tritantri veena (Sanskrit meaning "three stringed"), chitra veena (Seven-stringed) or privadini. But it is an undeniable fact that Amir Khusru did make certain alterations and give the instrument a new name, 'Seh tar." (Persian for ('three-stringed")- Ravi Shankar My Music My Life, page 46

है जिनसे हमेशा षड़ज स्वर की उत्पत्ति होती है। बारहवी- तेरहवीं शताब्दी में प्रचलित किन्नरी वीणा में चिकारी का प्रयोग होता था। यह सभी विशेषताएं सितार से पहले ही भारतीय वाद्यों में नही हैं। इसलिये सितार ईरानी वाद्य नहीं हो सकता।[136]कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका में शारंगदेव द्वारा उल्लेखित त्रितन्त्री वीणा, को 'यन्त्र' कहा है। अबुल फ़जल की आई ने अकबरी में भी यन्त्र का उल्लेख मिलता है जो वीणा के समान था और इसमें पाँच तारे और सोलह पर्दे लगे होते थे।[137]

एक अन्य विद्वान के अनुसार ''पंडित सुदर्शन आचार्य शास्त्री जी, जो मियां अमृत सेन के शागिर्द थे, ने बीसवीं सदी के आरम्भ में लिखित पुस्तक में खुसरों खां को ही स्पष्ट रुप में सितार का आविष्कारक स्वीकार किया है।''[138] सन् 1854 ई. में मअदन-उल-मुसीकी के लेखक मुहम्मद करम इमाम ने सितार का आविष्कारक अमीर खुसरों को माना है। परन्तु उनका कथन तथ्यों पर आधारित नहीं लगता। अमीर खुसरों द्वारा लिखित ग्रन्थों में सितार की चर्चा भी नहीं मिलती। उनके समकालीन ग्रन्थकारों ने भी अपने ग्रन्थों में कहीं भी सितार के आविष्कारक के रुप में अमीर खुसरों का जिक्र नहीं किया। यदि सितार का निर्माण अमीर खुसरों ने नहीं किया तो इस वाद्य का आविष्कार कैसे हुआ। इस सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि सितार प्राचीन काल में बजाई जाने वाली किसी वीणा का ही परिवर्तित रुप है।

---

136. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृष्ठ - 55

137. वही पृ. 57

138. रमावल्लभ मिश्र (डा.) *संगीत,*लेख - ''सितार का आविष्कार इतिहास जून 1973.,

पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने महाराष्ट्र में प्रचलित सितार को सतार कहने की प्रथा का आश्रय लेकर इस शब्द की व्युत्पति सप्ततन्त्री से मानी है। उनका कहना है कि

l Ir r U=kh o h.kk d ksgh l Ir r kj] l =kkj v kSj fQ j l r kj ; k fl r kj d gk t ku sy x kA[139]

कुछ विद्वानों के अनुसार तियन्त्री वीणा सितार की जननी है। क्योंकि तियन्त्री वीणा तीन तारों से युक्त थी और सितार में भी पहले पहल तीन ही तारे लगाई जाती थी। 'शारगदेव ने संगीत रत्नाकर में जिस त्रितन्त्री वीणा का वर्णण किया है, कल्लिनाथ ने रत्नाकर को टीका करते हुए उसी की जन्त्र भी कहा है। इससे पूर्ण स्पष्ट है कि कल्लीनाथ के समय त्रितन्त्री वीणा को जन्त्र कहा जाने लगा था।'[140] अकबर दरबार के प्रसिद्व विद्वान, कवि तथा राजनीतिज्ञ अबुल फजल ने अपनी पुस्तक आईने अकबरी में 'जन्त्र' का उल्लेख किया है कि यह वीणा की भाँति है इसमें पाँच तारे और सोलह पर्दे बाँधे जाते थे।

हो सकता है कि त्रितन्त्री वीणा का पहले यन्त्र कहा जाने लगा हो जिसमे तारों की बुद्धि कर दी गई हो। और बाद में जन्त्र को सितार नाम देकर पुन: तीन तारे लगा दी गई हो। विकास का क्रम चाहे जैसा भी रहा हो विद्वानों ने यह बहुमत में स्वीकार कर लिया है कि सितार त्रितन्त्री वीणा का ही परिवर्तित रुप है।

---

139. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 55

140. वही

''त्रितन्त्री वीणा का विकास दो रुपों में हुआ। जिनमें एक रुप तम्ब्रा का था और दूसरा सितार का। भारतीय संगीत के ग्रन्थकार इन दोनों रुपों का निबद्ध तथा अनिबद्ध तम्बूरा भी कहते थे।''[141]

प. रविशंकर के अनुसार त्रितन्त्री वीणा में अनेक परिवर्तन करके उसे नया नाम सहतार देने का श्रेय अमीर खुसरों को प्राप्त है। एक परिवर्तन उन्हों ने यह किया कि सितार में तारों को उल्टे क्रम से लगा दिया। इस वाद्य में एक और सुधार अमीर खुसरों ने पर्दों को ''चल'' बना कर किया जिससे उन्हें आवश्यकता अनुसार आगे या पीछे किया जा सके। पुराने वाद्यों में जैसे वीणा में पर्दों को हिलाया नहीं जा सकता था। पर अमीर खुसरों ने रेशम की तारों को पर्दे बाँधने के लिये प्रयुक्त किया जिन्हें सितार के पीछे बाँधा गया ताकि वादक पर्दों को ऊपर नीचे कर सके।[142]

सितार में उक्त परिवर्तन मध्यकाल में ही प्रारम्भ हो गये थे, जिनका क्रम बीसवी शताब्दी तक जारी रहा। अब प्रश्न यह उठता है कि त्रितन्त्री वाणी में यह सब परिवर्तन क्यों किये गये। इसका कारण शायद यह है कि मध्यकाल में जब गायन की ख्याल शैली का प्रचार जोरों पर था तब सितार में भी अनेक परिवर्तनों का क्रम शुरु हुआ। इन परिवर्तनों का उद्देश्य सितार को गायन के अनुगामी वाद्य बनाने का होगा। जिस प्रकार भारतीय शास्त्रीय गायन को मुस्लिम सभ्यता ने प्रभावित किया उसी प्रकार वाद्यों पर भी

---

141. वही

142. "One of the innovations that he brought to the "Seh tar" was to reverse the order of strings, giving the instrument the present day universal arrangement of the strings. Another improvement that Amir Khusru brought to the sitar was to make the frets moveable. On the older instruments, such as the veena, the frets were fixed and could not tied them at the back of the sitar's neck. so thast the player could slide them up or down.

उनकी सभ्यता का असर हुआ। प्रारम्भ में गायन शैलियों के अनुरुप ही सितार पर वादन किया जाता होगा जिस कारण उसमें विभिन्न परिवर्तन करने अनिवार्य हो गये होगें। परन्तु बाद में जब यह वाद्य विकसित होता गया तब एकल वादन के लिये उसमें विभिन्न प्रयोग और परिवर्तन किये गये होंगे। त्रितन्त्री वीणा का रुप सितार अपने विकास काल के प्रारम्भ में गायन के लिये ही प्रयुक्त होता था। अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से तानसेन के वंशजो ने कुछ नवीन वाद्यों को अपनाना आरम्भ किया। इस प्रक्रिया में सितार और सुरबहार वाद्यों को बढावा मिला। वीणा का आलाप - अंग सुरबहार तथा गीत अंग सितार पर बजाया जाने लगा। इस काल में ख्याल शैली प्रचारित हो रही था। वीणा की वादन विधि सितार के लिये उपर्युक्त सिद्ध नहीं हो रही थी इसलिये सितार के लिए एक नई वादन शैली 'गत' का विकास हुआ। गत की शैली गायन से ही प्रभावित थी परन्तु मिजराब के बोलों के विशेष प्रयोग के द्वारा गत की रचना गायन से भिन्न होने लगी। सितार की वादन शैली को गायन से भिन्न करने और उसे केवल तन्त्र रुप में प्रयोग की विधि सैनी घराने की देन है। सितार की गतों के निर्माण में निहाल सेन के पुत्र अमीर खां ने जो गत बनाई वो अमीर खानी गत कहलाई। मसीत खां द्वारा बनाई गई गत को मसीतखानी गत कहा गया। उनके शिष्य बरकतुल्ला खां, सेनी घराने के बहादुर खां ने भी गत निर्माण में योगदान दिया। सेनी घराने के शिष्य गुलाम रजा खां ने जिस गत का निर्माण किया वो रजाखानी गत कहलाई।

इस प्रकार सितार की वादन शैली को उत्कृष्ट बनाने के लिये अलग-अलग प्रयोगों के द्वारा गत निर्माण होता रहा। दूसरी ओर सितार की आकृति और उसकी तारों में भी भिन्न प्रयोग और परिवर्तन किये जाते रहे। सौरेन्द्र मोहन ठाकुर द्वारा सन् 1882 लिखी गई पुस्तक 'यन्त्र-क्षेत्र-दीपिका में उल्लेखित है कि त्रितन्त्री वीणा को अमीर खुसरों ने सेहतार कहना शुरु कर दिया। उन्होने लिखा है कि सितार में पाँच तार होते हैं जिनमें से तीन पीतल के और दो पक्के लोहे के होते हैं। और कही-कहीं पर तीन-चार क्षुद्र तार और बाँधे जाते है जिन्हें चिकारी अथवा पार्श्व-तन्त्री कहते हैं। उन्होंने तारों को मिलाने की निम्न प्रकार से विधि बताई है।

बाज का तार- मन्द्र मध्यम में, जोड़ी के दो तार - मन्द्र षड्ज में,पंजम के दो तार- जिन्हें राग की आवश्यकतानुसार मध्यम या गान्धार में भी मिलाते हैं, क्षुद्र तार अथवा चिकारी या पार्श्व तन्त्रियाँ।

वादक मनचाहे स्वर में मिला लेते हैं। सितार में सतारह पर्दे लगाये जाते हैं। सोलह पर्दे तो परम्परागत हैं सत्रहवाँ पर्दा तार सप्तक का मध्यम है।

उपरोक्त उल्लेख से एक नई बात प्रत्यक्ष होती है और वह है पार्श्व तन्त्री के प्रयोग की। 'कानून ए सितार (लेखक मुंशी उजागरमल) द्वारा वर्णित सितार में जो छह तार लगते हैं उनमें एक पपीहा(चिकारी) का तार भी है, किन्तु इन के सितार में पाँच

---

1. आचार्य बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत पृ0 70,71

तन्त्रियों के अलावा चिकारी के तारों को कहीं-कहीं पाया जाना दिखाई पड़ता है। इसलिय यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि सन् 1900 के आते-आते सितार में पाँच बड़ी तथा दो क्षुद्र तन्त्रियों का प्रचलन आम हो गया था।[143]

सितार के विकास में तानसेन के वशंज मसीतखां, रहीम सेन और अमृतसेन का विशेष योगदान हैं । इमदाद खां ने सितार में तरब की तारों को लगा कर इस वाद्य की ध्वनि को और अधिक अच्छा बना दिया। शहबदाद खां और उनके सपुत्र इमदाद खां ने सजावट के लिये उदार प्रयोग किये और सितार के वादन को एक नयी दिशा प्रदान की। इनायत खां उनके पुत्र और शिष्यों ने सितार में अनेक नये परिवर्तन किये। उनके पुत्र विलायत खां ने नये अयाम बनाये और सितार, में पीतल और ताँबे के स्थान पर लोहे के तार लगाये।[144]

निस्संदेह मसीत खां और इमदाद खां के वंशजो का सितार के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अठाहरवीं शताब्दी के मध्यमें मसीत खां से पहले किसी भी सितार वादक के बारे में पता नहीं चलता। मसीत खां ने ही सितार की वादन शैली बनाई जिसे मसीतखानी बाज कहा जाता है।[145]

---

143. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 59

144- "At a time one when Khayal was gaining ascendency, new trends developed in playing sitar. Masit Khan, a direct descendant of Tansen, adopted the sitar to the Dhrupad tradition. Later, Rahimsen and amritsen further developed this technique. But it was Imdad Khan who added some sympathatic strings (tarab) and made sitar an instrument richer in tone and fuller in sound. Meanwhile, Khayal made its impact on the playing of sitar. shahaddab Khan and his son. Imdad Khan made liberal use of embellishments and gave a new direction in playing sitar. Enayet Khan, his son and disciple. Made further innovations in the construction of sitar. His son vilayat Khan added a new dimension to the sitar by replacing the brass and coper strings by a single steel adopted by man young sitar players at today. "Sharmistha Ghosh. *String instruments of North India,* Page, 87.

145- "We do not hear of specialists on the sitar untill the mid-eighteenth century when Masit Khan established the style of playing on the instrument known today as the Masit Khani Baj."

- Robert L. Hardgrave J.r. Stephen M Slawer, Musical Instruments of North india, Page 47.

बीसवी शताब्दी में भी सितार का विकास चलता रहा है। 1950 तक सितार के कच्छपी रुप का भी प्रचलन रहा जिसमें त्म्बा चपटा व कछुए की पीठ के समान होता था। 'कच्छपी' के बाद सितार में गोल तूम्बे का प्रयोग होता रहा। इसी शताब्दी में सुरबहार वाद्य जिसमें आलाप जोड आदि का काम होता था, कि विशेषताओं को भी सितार में प्रयुक्त किया गया। जिसमे सितार के आकार को पहले बडा किया गया जिससे उसमें नाद की तारता, तीव्रता व गुणों का विकास हुआ। सितार की तारों को स्वर करने की व्यवस्था में भी परिवर्तन किया गया। जिससे आलाप जोड व गत का काम सितार पर ही होने लगा और सुरबहार का प्रयोग कम हो गया।[146] अपनी आकृति और वादन सम्बन्धी विकास प्रक्रिया से गुजरने के बाद यह वाद्य आधुनिक काल में समस्त भारत में लोकप्रिय वाद्य है। इस वाद्य के अनेक उत्कृष्ट कलाकार है जो सितार के एकल वादन को शिखरता पर ले जा रहे हैं। सितार के वादन में विभिन्न परिवर्तन करके इस वाद्य को गायन के साथ बजाने के लिये भी उपयुक्त वाद्य बना लिया गया है। परन्तु सितार वीणा के समान मधुर वाद्य नहीं है। अपने समस्त गुणों के साथ ही सितार में एक अवगुण यह है कि वादक के समीप बैठने पर सितार की तारों पर जोर से प्रहार करने पर कर्कश ध्वनियाँ सुनाई पडती है।''सितार की मधुर ध्वनि सुनाने के लिये सितार को श्रोता से थोडी दूरी पर बजाया जाना चाहिये। तब इसकी तारों से उत्पन्न कर्कश ध्वनियाँ अधिक सुनाई नहीं देंगी और मेलोडी साफ सुनाई देगी।''[147]

---

146. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 59

147- The Sitar is fairly easy to learn, and much can be made of it by experienced performers; but there is a perculiarity in its tone when played at all loud which greatly mars the effect, the tender charm and colouring of that of Vina being completely absent. To be heard with advantage a sitar should be at a little distance fromthe listener, the unpleasant jangle of its strings will not then be so apparent, and the melody will be more clear." C.R. Day. The Music and musical instruments of Southern India and the deccan, P. 118

सरोद – सरोद एक तत् वाद्य है। रबाब में कुछ परिवर्तन करके सरोद का आविष्कार हुआ है। सर्वप्रथम चित्रा – वीणा को रबाब कहा जाने लगा था। रबाब में कुछ परिवर्तन करके जफ़र खां ने सुर सिंगार की रचना की। जिनमें रबाब की खाल की तबली के स्थान पर लकड़ी की तबली लगाई गई। और सुरसिगारं के दण्ड पर लोहे की चमकीली चादर चढाई गई तथा रबाब में रेशम के तारों और चमड़े के ताँतों के स्थान पर लोहे और पीतल के तार लगाये गये। लोहे की चादर व धातु के तार लगा देने से सुरसिंगार की ध्वनि में वृद्वि हुई। परन्तु लकडी की तबली लगा देने से सुरसिगारं का पेट रबाब से अपेक्षाकृत बढ़ा हो गया। उसे गोद में रखना वादकों के लिये सम्भव नहीं था। इसलिये लकडी की तबली को बदल कर फिर से चमड़े की तबली को लगाया गया सुरसिगारं के इसी नये रुप को सरोद कहा जाने लगा।[148]

सरोद का नाम सारदा वीणा से भी रखा गया हो सकता है परन्तु यह काल्पनीक ही लगता है, क्योंकि इस प्रकार की वीणा का उल्लेख भारतीय शास्त्रीय संगीत के ग्रन्थों में नही हुआ है। 913 में समरकन्द इलाके के इन्बन अल – अवास ने एक वाद्य बनाया। जिसका नाम था। शारोद। इन्डो – पर्शियन ग्रन्थों में भी सरोद का उल्लेख हुआ है।[149] इस प्रकार के तंत्री वाद्य भारतीय इतिहास में काफी पहले से मौजूद थे। इन वाद्यों को अजन्ता (दूसरी से आठवीं शताब्दी) बोद्धों के शहर नागार्जुनाकोण्डा (दूसरी शताब्दी) में देखा जा सकता है।[150] सरोद का अविष्कार होते ही ध्वनि विशेषताओं के कारण

148. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 117

149. B.C. Deva, Musical Instruments, Page 130

150- "Lutes of the kind appear quite early in the history of Indian instruments as can be seen in the frescoes of Ajanta (2nd-8th cent A.D.) and the remains of the Buddhist city, Nagarjunakonda (2nd cent. A.D.), Amaravati 1st B.C. 2nd Cent. A.D.) and many others." B.C. Deva, An Introduction to Indian music, Page 56.

उसका प्रचार काफी बढ गया। जिस कारण रबाब और सुरसिंगार का प्रचार कम हो गया। रबाब, सरोद व सुरसिंगार एक ही जाति के वाद्य हैं जिनका प्रार्दुर्भाव प्राचीन भारतीय चित्रा- वीणा है।[151] सरोद का आधुनिक काल में एकल वादन का प्रचलन है।इस पर लोक संगीत व शास्त्रीय संगीत दोनो ही आलापकारी सरगम से बजाये जाते हैं।[152] लोहे के तार लगा देने से स्वरों का कम्पन बढ़ गया है। इसलिये इस पर विलम्बित आलाप भी बजाया जा सकता है रबाब की वादन-पद्वति को सरोद पर बजाया जा सकता है। रबाब पर गत नहीं बजायी जाती। उसे केवल आलाप का वाद्य ही माना जाता है। परन्तु सरोद पर गत व तोडे बजाये जाते हैं और आलाप भी इसमें मधुर प्रतीत होता है। सरोद पर आजकल रबाब के तारपरण का काम भी किया जाता है। रबाब की भाँति सरोद पर भी चर्माच्छादन के उपर चाँटी से तारपरण के कुछ बोल बजाये जाते हैं।[153]

सरोद में पर्दे नहीं लगाये जाते और यह रबाब से मिलता जुलता वाद्य है।[154] सरोद में छः तारे होती है जिन्हे म, स, प, स, प, स (मन्द्र सप्तक) में मिलाया जाता है तारों को छोड़ने के लिये एक लकडी का त्रिकोण दायें हाथ में पकडा जाता है जबकि दूसरे हाथ से तारों को दबाया जाता है। सितार की भान्ति दो चिकारी के तार और तरब का तार लगाया जाता है।

---

151. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 117
152. राम अवतार वीर, *भारतीय संगीत,* पृ. 90
153. विमल काँत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 135
154- "Sarod is another instrument without frets and is very much like rabab of midwestern and central Asia it has a small and deep body of wood which projects into a short neck and finger-board. The body is covered with parchment and the board with a steel plate. A small bowl of metal is screwed to the farther end of the finger-board into its lower side. Unlike sitar, been and veena, sarod has a narrow bridge, like in a violin. "B.C. Deva, *An Introduction to Indian Music,* Page 56

सरोद का स्वरुप – सरोद का आकर लगभग रबाब के समान ही है। सरोद का सारा शरीर लकडी के एक ही कुन्दे से बनाया जाता है केवल खूँटियाँ लगाने वाले स्थान को छोड दिया जाता है। सरोद की डाँड वाले भाग को लोहे की चादर से मढ़ लिया जाता है। प्राचीन काल में सरोद में ताँत लगाया जाता था और इसकी डाँड को लोहे की चादर से नहीं मढ़ा जाता था।[155]

सरोद का उपरी भाग एक फुट से अधिक लम्बा और लगभग सात इंच व्यास का होता है। इस भाग के पीछे की ओर कुछ सरोद वाद्यों में एक छोटा तुम्बा लगा दिया जाता है। जो लोहे, पीतल या फिर अल्मुनियम आदि का होता है। डॉड के इस भाग के दोनों ओर मुख्य तारों की तीन-तीन खुँटियां लगाई जाती है। इन खूँटियों की लम्बाई पाँच इंच होती है। सरोद के मध्य भाग की लम्बाई प्राय: पन्द्रह से सौलह इंच होती है। इस पर लोहे का चादर लगाया जाता है। इस भाग में मेरू के पास इसकी चौडाई ढाई इंच से पौने तीन इंच तक की होती है जो घोड़ी की ओर बढ़ती जाती है और आगे जा कर इसकी चौडाई साढ़े पाँच इंच तक हो जाती हैं सरोद के खोल की गहराई रबाब से अधिक होती है।[156] इसकी गहराई मेरु से सात इंच की दूरी तक तीन इंच की हो जाती है। और उसके बाद पूरा ढाँचा सात से साढ़े सात तक गहरा हो जाता है। मध्य भाग में मेरू से लगभग साढे चार तथा साढ़े सात इंच की दूरी पर दो खूँटिया चिकारी के तार की लगाई जाती है। दोनो खूँटियों से एक इंच की दूरी पर घुडच की तरफ एक दाढ़

---

155. विमल काँत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 136.

156. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 130.

लगाई जाती है जिस पर चिकारी के तार रखे जाते है। तरब के तारों की खुँटियों की व्यवस्था दाढ़ लगाई जाती है जिस पर चिकारी के तार रखे जाते हैं। दाढ़ के स्थान से एकइंच की दूरी पर होती है। इन खूँटियों को लगभग आठ इंच के क्षेत्र में ऊपर-नीचे की दो पंक्तियों में लगाया जाता है। तरब के तारों की संख्या ग्यारह होती है।

वह तार लोहे की चादर मे बने छिद्रों मे से निकलकर घुड़च की ओर जाते है। सरोद की निचला भाग नौं इंच परिधि का होता है, उस पर चमड़ा मढ़ा जाता है। तार चमड़े की ऊपर से होकर गुजरते है। तरब के तार उसके नीचे से अलग-अलग छिद्रो मे से निकालते हैं। मुख्य तारों के लिए एक तार गहन लगा होता है जो मेरु का काम करता है। सरोद में मुख्य छः तार होते हैं। पहला तार बाज का तार होता है जो इस्पात के दो शून्य की मोटाई का तार होता है। इस तार को मध्य सप्तक के मध्यम में मिलाते है। दूसरा तार षडज का कहलाता है। यह इस्पात के एक शून्य अथवा एक नम्बर मोटाई का होता है इसे मध्य सप्तक के षडज से मिलाया जाता है। पंचम का तार पीतल का होता है व छब्बीस नम्बर की मोटाई का होता है। इस तार को मन्द्र सप्तक के पन्चम में मिलाते है। चौथा तार षडज का तार होता है। यह पीतल का चौबीस नम्बर की मोटाई का लगाया जाता है। इसे मन्द्र षडज् में मिलाया जाता है। पाँचवां तार अति मन्द्र पंचम का तार होता है। यह पीतल का बाईस नम्बर की मोटाई का तार होता है। इसे अति मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाया जाता है। छठा तार षडज् का होता है। यह

इस्पात का एक नम्बर की मोटाई का होता है।[157] इस तार को मध्य सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है। यह तार छेड़ने के काम आता है। इस पर वादन क्रिया नहीं की जाती। रबाब के समान सरोद में भी पर्दे नहीं लगाये जाते। सरोद को जवा से बजाया जाता है। पहले जवा को तार से त्रिकोण के प्रकार का बनाया जाता था। परन्तु बाद में नारियल के टुकडे से जवा के आकार का त्रिकोण भी प्रचार में आया है, जिससे तारों पर प्रहार करते समय ध्वनि की कर्कशता कम हो जाती है द्रुत गति में बजाने से तार भी नहीं टूटते। सरोद में छः की बजाये आठ तार लगाने का भी प्रचलन है। इन आठ तारों वाले सरोद में पहले चार तार तो छः तारों वाले सरोद की भाँति लगाये जाते है। बाकी के चार तार इस्पात के एक नम्बर की मोटाई के लगाये जाते हैं इन तारों को राग में लगने वाले स्वरों में मिला दिया जाता हैं। जिससे राग की पृष्ठभूमि सुनाई देती रहती है। जैसे राग जै जैवन्ती बजाने के लिए बाद के चार तारों को स ध नी रे में मिला लिया जाता है।

राग मालकोश के लिय स ध़ नी़ स, राग बागेश्वरी के लिय स ध़ नी़ स तथा राग तोडी के लिये स नी़ ध़ स स्वरों में तारों को मिला लिया जाता है।

इसके इलावा वादक राग में लगने वाले अपनी पसंद के स्वर समूहों में भी इन तारों को मिला लेते हैं। इन छेडने वाले तारों के लिये तार गहन से मिला कर एक छोटी

---

157. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 131

सी घुडच रखी जाती है। जो लगभग एक इंच लम्बी और पौन इंच चौडी होती है। तारों के नीचे तानपूरे की तरह एक महीन धागा जवारी खोलने के लिये लगाया जाता है। दोनों प्रकार के सरोद में चिकारी और तरब के तारों को समान ढंग से लगाया जाता है।

सारंगी – सारंगी एक अन्य तत वाद्य है जो हिन्दोस्ताने संगीत में काफी प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति के विषय में संगीत विद्वानों के अनेक मत है। सारंगी को 'पिनाकी वीणा' का ही एक रुप माना जाता है क्योंकि सारंगी के समान पिनाकी वीणा को भी गज के साथ बजाया जाता था। परन्तु केवल दोनो वाद्यों को गज द्वारा बजाये जाने वाली समानता के कारण सारंगी को पिनाकी वीणा का रुप नहीं माना जा सकता।[158] कुछ विद्वानों के अनुसार सारंगी की उत्पत्ति 'रावणास्त्र' या 'रावणहस्त वीणा' नामक वाद्य से हुई है।[159]रावणहस्त वीणा का आविष्कार रावण के द्वारा हुआ है ऐसा माना जाता है। संगीत मकरन्द, संगीत पारिजात और संगीतसार ग्रन्थों में इस वीणा का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान सारंगी को 'सारंगवीण' भी मानते हैं।[160]सारंगी वाद्य चाहे किसी भी नाम से जाना जाता है परन्तु यह स्पष्ट है कि यह भारत के प्राचीन वाद्यों मे से एक है और विशुद्ध भारतीय वाद्य है क्यों इसके आकार प्रकार का वाद्य अन्य किसी देश में दिखाई नहीं पडता।

पं. शारेगदेव ने 13 वी शताब्दी मे रचित संगीत रत्नाकर में सारंगी नामक वीणा का उल्लेख किया हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार पंडित शारंगदेव के द्वारा आविष्कृत

---

158. विमल काँत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 136

159. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 53

160. विमल काँति राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 136

'शारंग देवी वीणा' ने ही सारंगी का रुप ले लिया। हो सकता है कि जिस प्रकार सितार ने त्रितन्त्री वीणा से मध्यकाल में नवीन रुप प्राप्त किया था उसी प्रकार सारंगी को भी किसी पुरातन वीणा से परिवर्तित करके नया रुप प्रदान किया गया हो। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सारंगी को भी मुस्लिम काल में प्रचलित हुई गायन शैलियों के साथ बजाने के लिये नया रुप दिया गया हो। मुहम्मद शाह रंगीले (1719 - 1748 A.D.) के काल में संगीत को काफी आश्रय मिला। यह कहा जाता है कि सारंगी को ख्याल शैली के साथ बजाने के लिये इसी काल में आविष्कृत किया गया।[161]

सारंगी उत्तरी भारत में प्रचलित वाद्य है। पंजाब में सारंगी वाद्य का काफी प्रचार रहा है। पुराने कलाकार सारंगी की असाधारण मधुरता के कारण इस को सौंरगी भी कहते थे। उनका कथन था कि सारंगी में सौ रंगों के द्वारा आनन्द प्रदान करने के गुण हैं।

सारंगी की बनावट उत्तरी भारत में एक जैसी ही है परन्तु कहीं कही छोटी सारंगी भी बजाई जाती है, जिसमें दस तरब की तारें लगी होती है। पंजाब में प्राय: वादकों के पास तरब विहीन सारंगी भी देखने में आती है, जो लोक संगीत के गायन के साथ बजाई जाती है और इस को 'सारंगा' कहा जाता है।

उत्तरी भारत विशेषतया में सारंगी का वादन अर्द्ध शास्त्रीय, लोक संगीत के साथ ज्यादा होता रहा है। पंजाब प्रदेश में पहले इस वाद्य को मिरासी जाति के लोग बजाते

161- "During the reign of Mahammad Shah Rangile (1719-1748 A.D.) music received extensive patronage. It is said that Sarangi was invented at this time to accompany the singing of Khayal."Sharmishta Ghosh *String instruments of north India,* Page 87

थे। मुस्लिम काल से ही सारंगी का प्रयोग वेश्याओं के शास्त्रीय और अर्द्धशास्त्रीय गायन के साथ होता रहा था। उन्होंने सारंगी वादकों को वेतन पर रखा हुआ था। ऐसे सारंगी ऐसे सारंगी वादकों को गायकी की संगति करते-करते रागों में बँधी हुई बन्दिशों के स्थाई अन्तरे, आलाप तान और महत्त्वपूर्ण स्वर समूहों का ज्ञान हो जाता था। और कई सारंगी वादक तालीम देने वाले उस्ताद भी बन जाते थे। वेश्याओं के साथ सम्बन्धित होने के कारण सारंगी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची। जिस कारण उच्च सारंगी वादकों ने सारंगी का वादन करना छोड़ दिया। पटियाला घराने के उस्ताद अली बख्श और फतह अली के पिता मियां कालु मूलतया सारंगी वादक थे परन्तु उन्होंने अपने पुत्रों को गायन की तालीम दी थी। दिल्ली घराने के उस्ताद मम्मन खां जो पहले पटियाला दरबार में थे के वंशजों ने सारंगी से सम्बन्ध तोड कर गायन को अपनाया। इसी प्रकार पटियाला घराने के प्रसिद्व गायक उस्ताद बडे गुलाम अली खां साहिब भी पहले सारंगी बजाते थे परन्तु बाद में सारंगी बजाना छोड कर गायन को अपनाया और ख्याति अर्जित की। सारंगी का बहिष्कार केवल पंजाब में ही नहीं अपितु अन्य स्थानों पर भी हुआ उस्ताद अमीर खां के पिता उस्ताद सुमीर खां भी सारंगी वादक थे। परन्तु उस्ताद अमीर खां ने गायन विधा को अपनाया। प्रसिद्व गायक राजन और साजन मिश्रा का सम्बन्ध भी प्रसिद्व सारंगी वादक गोपाल मिश्र के परिवार से है। सारंगी वादन में पंजाब प्रदेश की प्रतिष्ठा बढाने वाले उस्ताद बंदू खां थे जो अपने समय में अनुपम सारंगी वादक थे। कुम्भकर्ण

'संगीतराज' में सारंगी का वर्णन इस प्रकार किया गया है। यह लगभग दो फुट लम्बी होती है। इसमें तूम्बे के स्थान पर लकडी का बना हुआ पेट होता है, जो नीचे से चपटा और ऊपर से डमरु के आकार का होता है। इसे लकडी को खोखला करके बनाया जाता है तथा चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इस पेट के मध्य में घडुच लगायी जाती है। पेट के नीचे से आकर चार ताँत घुडच पर होते हुए खूँटियों पर ऊपर चली जाती हैं। इसको कमान की सहायता से बजाया जाता है। इसको कमान की सहायता से बजाया जाता है। बायें हाथ की उँगलियों के नखों से ताँत को पार्श्व से स्पर्श कर इच्छानुसार स्वर उत्पन्न करते हैं। इसमें पर्दे नहीं होते, केवल अभ्यास से ही स्वर उत्पन्न किये जाते हैं। सारंगी में तरब की ग्यारह खूटियाँ सामने मस्तक पर रहती हैं तथा दक्षिण पार्श्व में तरब की चौबीस खूँटियाँ होती हैं। इनमें से कुछ में पीतल के तथा कुछ में लोहे के तार चढे रहते हैं। मस्तक पर तरब के तारों की जो खूँटियाँ होती है उनके लिये मेरु के पास ही छोटी-छोटी घुडच रहती हैं जिन पर होकर उक्त ग्यारह तार नीचे आते हैं।[162]

'संगीत नायारण' में भी सारंगी का विवरण दिया गया है। यह विवरण प्राय: आधुनिक सारंगी के समान है। संगीत नारायण में उपलब्ध विवरण इस प्रकार है: सारंगी का बदन साल, पनस या घनता से युक्त अन्य लकडी से बनाया जाता है। उसकी लम्बाई तीन बित्ते की है। सर्प फलाके सिर का विस्तार पन्द्रह अँगुल है। सिर के मध्य भाग में एक शिखर है। गला पतला है। दण्ड गले के नीचे है। उसकी लम्बाई सतारह

---

162. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ.54

अँगुल है। ऊपर स्थूल होता जाता है और नीचे क्रमशः कृश है। दण्ड और सिर इन दोनों का गर्भ खुदा हुआ है। दण्ड के पिछले भाग व सिर के गर्भ भाग में सारणा करने का स्थान चतुरस्त्र रुप है। उसकी लम्बाई छह अँगुल और चौडाई चार अंगुल है। उसके सिर का प्रदेश चमड़े से मढ़ा जाता है। उसकी तीन तन्त्रियाँ रेशमी धागे की हैं। धनुष (गज़) से इसका वादन होता हैं। धनुष घोड़े की पूँछ के बालों का रहता है। इसमें राल रगड़ कर वादन करते हैं। धनुष की लम्बाई 30 अँगुल है।[163] सारंगी के आविष्कार के समय का रुप उसके वर्तमान रुप से निश्चय ही भिन्न रहा होगा। समय परिवर्तन के साथ सही ढंग से बजाने के लिये सारंगी में अवश्य ही सुधार किये जाते रहे होंगे। सारंगी के भिन्न-भिन्न रुप वर्तमान काल में भी मिलते हैं जिनमें से एक बिना तरब वाली सारंगी है और दूसरी तरब युक्त सारंगी है। तरब वाली सारंगी को शास्त्रीय संगीत, अर्द्धशास्त्रीय संगीत में बजाया जाता है। बिना तरब वाली सारंगी लोक संगीत में और अधिकतर योगियों द्वारा बजाई जाती है। लोक संगीत में अन्य कई प्रकार की सारंगियाँ भी बजाई जाती हैं।

उत्तरी भारत में सारंगी का जो रुप मिलता है वह दक्षिणी भारत में थोडा अलग है।[164]

सारंगी का स्वरुप – सारंगी का अंग काष्ठ निर्मित और खोल चमडे से मढ़ा हुआ होता है। इसकी लम्बाई लगभग दो फुट होती है। सारंगी में तुम्बा नहीं लगाया

---

163. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ.54

164- "The Sarangi found in upper India differs slightly from that of the south and the deccan. The head is generally carved to represent the neck of a swan, and the body is rounded instead of being square, the number of sympathetic strings, too, is often less. The instrument is ornamented with ivory and inlaid with numbers of small turquoises C.R. Day, *The music and musical* instrument of Southern India and theDeccan Page. 92

जाता बल्कि इसके स्थान पर लकडी का ही पेट बना होता है। जो नीचे से चपटा और उपर से डमरु के आकार का बना होता है। जिसे लकडी को खोद कर बनाया जाता है और उपर चमडा मढ़ दिया जाता हैं जिसके मध्य में घुडच लगाई जाती है। सारंगी को कमान से बजाया जाता है।

सारंगी में तरब की ग्यारह खूँटियां सामने मस्तक पर रहती हैं व दक्षिण भाग में तरब की चौबीस खूँटिया रहती हैं। जो पीतल या लोहे से निर्मित होती हैं।

सारंगी में समय - समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। यह पहले ग्राम्य वाद्य ही था। लगभग पांच सौ वर्षो से इसे गायन के साथ अनुगामी वाद्य के रुप में प्रयुक्त किया जाने लगा अब इसे एकाकी वाद्य के रूप में भी बजाया जाता है। सारंगी वादकों ने इसमें कुछ परिवर्तन करके छप्पन तारों से युक्त सारंगी का निर्माण कराया जिससे सुरबहार के आलाप की वादन पद्वति को सारंगी पर बजाया जा सका।[165]

उत्तरी भारत में भी पहले सारंगी को गायन के अनुगामी वाद्य के रुप में जाना जाता था। परन्तु आजकल शास्त्रीय संगीत के सम्मेलनों मे भी सारंगी को एकाकी वाद्य के रुप में विशेष प्रतिष्ठा मिली है। लोक संगीत में भी सारंगी के विभन्न रुप विद्यामान हैं। जिनमें गुजरातन सारंगी, जोगी सारंगी, सिन्धी सारंगी और धानी सारंगी आते है।[166]

---

165. लालमणि मिश्र, (डा.) *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ.54

166. विमल कांत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 136

गुजरातन सारंगी राजस्थान के लंगाऊ की गाने वाली जाति में प्रचलित है। इसमें चार मुख्य तार और आठ सहायक तार होते हैं जिन को जील कहते हैं। इसके लिये रोहिदा लकडी प्रयुक्त की जाती है।

जोगी सारंगी जोगी समुदाय द्वारा बजाई जाती है। यह तुन की लकडी से बनी हुई छोटी सारंगी होती है। इसके तूम्बे पर चमडा मढा रहता है। जिस पर घोडी रखी जाती है। इसमें तांत के केवल तीन चार लगाये जाते हैं। यह कमान से बजाई जाती है, जिसे गायन के साथ प्रयुक्त किया जाता है।सिन्धी सारंगी को लंगा जाति के द्वारा बजाया जाता है। यह पूर्ण विकसित तन्त्री वाद्य है। इसमें दो लोहे के और दो तांत के, चार मुख्य तार, सात झारा और सतरह तरफ या तरब के तार होते हैं। इसके मुख्य तारों को स, स, प, प में मिलाया जाता है। झारा और तरब के तार राग में लगने वाले स्वरों के अनुसार तीन विभिन्न प्रकार के स्वर समूहो में मिला लिया जाता है। इस वाद्य पर कमान अद्‌भुत ढंग से घुमाई जाती है। जिसमें ताल के रुप भी सम्मिलित होते है। धानी सारंगी निहालदे के जोगियों के द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इसमें मुख्य दो लाहे के और दो ताँत के तार होते है। इसका तूम्बा सीधी तरफ से सपाट होता है। जील के तार छः या आठ होते हैं। जिन के लिये चपटी या लम्बी खूंटियां लगी रहती हैं। मुख्य तार षडज पंचम में मिलाये जाते है। इसमें घोडी और मेरु का प्रयोग होता है और इसे कमान से बजाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य सारंगी अलाबु सारंगी भी प्रचार में है।

अलाबु सारंगी लोक सारंगी का बहुत विकसित रुप है। यह भारतीय शास्त्रीय संगीत की सारंगी से मिलती जुलती हैं। इसे जैसलमेर की मंजीनिया जाति के द्वारा बजाया जाता है। इसे गायन के साथ बजाया जाता है।

सुरबहार : – सुरबहार का रचनाकाल सितार के पश्चात् का माना जाता हैं सेनी घराने के उस्तादों ने सितार कसे आकार का बढ़ा कर उसमें मोटे तार लगा कर उसे सुरबहार का नाम दिया। जिससे इस वाद्य की ध्वनि गम्भीर हो गई और वीणा के समान ही मींड का काम होने लगा। सुरबहार के कई प्रसिद्ध वादक हुए है परन्तु आजकल यह वाद्य प्रचार में नहीं है जिसका कारण है कि सितार ने वर्तमान काल में ध्वनि की दृष्टि से अत्यन्त उन्नति की है जिससे सुरबहार की आवश्यकता समाप्त हो गई है। सुरबहार का आकार सितार से बडा होता है। सितार से लगभग दोगुना बडा होता है। आकार बढने से इसके तारों की मोटाई भी बढ जाती हैं इसका प्रयोग आलाप, जोड़, झाला के लिये किया जाता है।[167] सुरबहार की आवाज गहराई लिये होती है और बजाने का ढंग लगभग सितार के समान ही है।[168] लखनऊ के दरबार में बीनकार गुलाम मुहम्मद खां को सुरबहार का आविष्कारक माना जाता है। परन्तु काफी विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं।[169]

---

167. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 118, 140

168- "Surbahar is a large sitar whose strings are thick and whose frets are heavy. Its tone is deep and its technique is identical to that used for the sitar for alap, jor and jhala, this instrument has a special dignity of tone and texture that is curiously attractive."
- Raghava R. Menon, *The Penguin dictionary of Indian classical Music,* Page 153.

169- "Surbahar, another type of plucked string instrument, is a comparatively modern instrument. Ghulam Mohammad Khan, a beenkara at the court of the Nawab of Lucknow, is credited with the invention of this instrument though it is not accepted by many scholars."
- Sharmistha Ghosh, *String instruments of North India,* Page 88

सुरसिंगार :– सुरसिंगार वाद्य को रबाब के आधार पर बनाया गया। रबाब में घुडच के नीचे के स्थान पर चमड़ा मढ़ा होता है। इस चमड़े के स्थान पर लकड़ी की तबली लगा कर उसे सुरसिंगार का नाम दिया गया है। सुरसिंगार को नया रुप और नाम देने वाले सेनी घराने के उस्ताद जफ़र खां थे। यह अपने समय में सबसे बडे तन्त्रकारी थे। वह रबाब बजाया करते थें। परन्तु एक प्रतियोगिता में निर्मल शाह जो कि वीणा वादक थे से हार जाने के पश्चात् उन्होंने रबाब बजाना छोड दिया। क्योंकि प्रतियोगिता बरसात के दिनों में थी। और बरसात में नमी के कारण रबाब की तबली जो चमड़े की थी और तारे बँटे हुए रेशम और तॉत चमड़े के थे, उनकी ध्वनि गूंजरहित हो गई।ध्वनि के गूँज रहित होने से वह प्रभावहीन हो गई। तब जफ़र खां ने काशी के नरेश से एक महीने का समय लिया। और बनारस के यन्त्र निर्माता से रबाब के चमडे की तबली के स्थान पर लकड़ी की तबली लगवाई और लोहे और पीतल के तार चढाये। बजाने के स्थान पर दण्ड में लोहे की चमकीली चादर चिपका दी। इस तरह उसका उपर का हिस्सा रबाब के समान ही रहा परन्तु ध्वनि की गूँज और गुणों में बढौत्तरी हो गई इस वाद्य को उन्होनें सुरसिंगार का नाम दिया। मादनुल मौसीकी (1856) मोहम्मद करम इमाम द्वारा लिखी पुस्तक में जफर खां को ही सुरसिगारं का निर्माण कर्ता माना है।[170]

सुरसिंगार का स्वरुप – सुरसिंगार रबाब के आकार प्रकार का ही वाद्य है परन्तु इसका पेट लकडी का होता है और इसे लोहे के त्रिकोण से बजाया जाता है इसमें

---

170. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 118

दो पर्दे लगाये जाते हैं और पर्दों के नीचे का हिस्सा धातु निर्मित होता हैं ताकि अँगुलियाँ आसानी से इस पर घूम सके। इस वाद्य की लम्बाई लगभग चार फुट होती है। इसकी ध्वनि मधुर होती है।[171]

इसराज – इसराज के नीचे के आकार को मयूर की भाँति बना दिया जाये तो उसे मयूरी- वीणा या ताऊस कहा जाता है। यद्यपि इसराज और मयूरी वीणा में कोई अन्तर नही होता परन्तु मयूर की आकृति और नक्काशी से इसराज सुन्दर अवश्य लगता हैं।

रबाब, सुरसिगार आदि वाद्यों की भाँति इसराज का प्रचलन आधुनिक काल में काफी कम हो गया हैं। अंग्रेजी शासन के पश्चात् वायलन अधिक लोकप्रिय हो गया। हलाँकि वायलन की वादन शैली कठिन है परन्तु आकार में छोटा सुन्दर और अंग्रेजी वाद्य होने के कारण इसराज की अपेक्षा अधिक प्रचार पा गया है। इसराज के यद्यपि दो संख्या भी काफी कम रह गई है। यद्यपि दो सौ वर्षों से इसराज के काफी कुशल वादक हुए है। परन्तु घरानों के संगीतज्ञों द्वारा इसराज वाद्य को नहीं अपनाया गया है। अन्य मध्यकालीन वाद्यों की भाँति इसराज के भी लुप्त हो जाने का डर है। पहले इसराज को गायन के साथ प्रयुक्त किया जाता था परन्तु अब इसका व्यवहार एकाकी वाद्य के रुप में होता है। शास्त्रीय संगीत में तानपूरा व अन्य सुगम संगीत की गायन शैलियों में सारंगी आदि वाद्यों के कारण भी इसका प्रचार कम हुआ है।

---

171. "The Sur- Sringarais somewhat like the rabab in shape, but with a wooden belly and played with an iron plectrum. There are, as a rule, two frets only the finger-board below the frets being generally of metal. so that the fingers may slide easily over it. The length of the instrument is about 4 feet, and its tone is rich and mellow."

- C.R. Day, *The Music and Musical instrument of Southern India and the Deccan,* Page 121.

इसराज में तूम्बे के स्थान पर लकडी को ही खोखला करके उसे चमडे के उपर से तार बाँधे जाते हैं। इसराज का पेट सारंगी की भाँति और घड़ सितार की भाँति होता है। सितार के डाँड पर सारिन्दा की भाँति चमडे का खोल मढ़कर इस वाद्य को बनाया गया है। इसराज को गज से बजाया जाता हैं इसराज में पर्दो को सितार की भाँति बाँधा जाता है।

इसराज का उद्‌भव दो सौ वर्ष पूर्व हुआ। उस समय मिजराब से बजने वाले वाद्यों में सितार और सुरबहार प्रमुख थे। गज से बजने वाले वाद्यों में केवल सारंगी का ही प्रचलन था। परन्तु उसे भी पेशावर कलाकार ही बजाते थे। इसलिये सभ्य समाज के लोगो ने स्वयं बजाने हेतू गज द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य बनाया, जिसे इसराज कहा जाने लगा। सितार ओर सारंगी उस समय काफी लोकप्रिय वाद्य थे। इसलिये दोनों की विशेषतांए इसराज की बनावट में प्रयुक्त की गई। इसलिये इसराज का दण्ड और पर्दो की व्यवस्था सितार के समान ही है परन्तु तबली के स्थान पर खाल मढ़ा जाता है। गज से वादन होने के कारण के पेट की बनावट और घोड़ी रखने की व्यवस्था सारंगी की भाँति है।[172]

इसराज में सितार की मीड़ को छोडकर बायें हाथ के सभी काम हो सकते हैं।[173]

---

172. लालमणि मिश्र, (डा.) *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 115
173. विमल काँत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ. 120

विषय सुची

प्रथम अध्याय **1-109**

हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य व उनकी उपयोगिता

1.1 हिन्दोस्तानी संगीत : गायन, वादन, नृत्य (एतिहासिक दृष्टि से)

1.2 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा : परिचयात्मक एवं एतिहासिक अवलोकन।

1.3 हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित वाद्य ।

1.4 हिन्दोस्तानी संगीत का वाद्य वर्गीकरण ।

1.5 हिन्दोस्तानी संगीत में वाद्य : व्यवहारिक उपयोगिता ।

1.6 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा एवं वाद्य : आन्तरिक सम्बन्ध ।

1.7 हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा के सौदर्यात्मिक आधार ।

2. द्वितीय अध्याय **111-139**

गुरमति संगीत की उत्पत्ति एवं विकास

2.1 गुरमति संगीत : संक्षिप्त परिचय ।

2.2 गुरमति संगीत की उत्पत्ति।

2.3 विभिन्न गुरूओं के काल में गुरमति संगीत का एतिहासिक विकास ।

3. तृतीय अध्यय 141-213

गुरमति संगीत प्रबन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन

3.1 गुरमति संगीत प्रबन्ध : एक सिद्धान्तिक परिचय ।

3.2 श्री गुरू ग्रन्थ साहिब : गुरमति संगीत के मूल स्रोत ।

3.3 वाणी व संगीत : आन्तरिक ।

3.4 गुरमति संगीत की गायन शेलीयां ।

3.5 गुरमति संगीत में राग ।

3.6 गुरमति संगीत में शब्द कीर्तन ।

3.7 कीर्तन चौकी परम्परा ।

3.8 गुरमति संगीत प्रबन्ध के प्रमुख लक्ष्ण ।

4. चतुर्थ अध्याय 215-289

गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्य

4.1 गुरमति संगीत : वाद्य वर्गीकरण

तत वाद्य

वितत वाद्य

धन वाद्य

मुखर वाद्य

सुखर वाद्य

रबाब : – रबाब एक तत्त वाद्य है। यह सरोद से मिलता जुलता वाद्य है। भारत के पश्चिमी क्षेत्रों पंजाब और कश्मीर में इसे बजाया जाता था। 15वी शताब्दी में रबाब का भारतीय संगीत में काफी उपयोग किया जाता था। मध्यकाल में रचित अहोबलकृत संगीत पारिजात में रबाब का उल्लेख आया है। उस से पूर्व किसी भी ग्रन्थ में रबाब का उल्लेख नहीं आया है।[174] सोरीन्द्रमोहन ठाकुर के 'वाद्य - कोष' के अनुसार अरब देश के ग्रामवासी अब्दुल्ला ने 'रुबेब' वाद्य का आविष्कार किया। उसी का प्रचलन बाद में 'रबाब' नाम से हुआ। रुद्रवीणा को भी रबाब का ही एक रुप माना जाता है। यह भी हो सकता है कि रबाब को ही रुद्रवीणा कहा जाने लगा हो।[175] कुछ विद्वान तानसेन को ही रबाब के रचियता मानते हैं। परन्तु यह अवधारणा पूर्णतया गलत प्रतीत होती है क्योंकि रबाब का उल्लेख तानसेन से पूर्व कबीर ने अपनी साखियों में किया है। हाँलाकि उनमें रबाब का रुप स्पष्ट नहीं होता।[176]

आईने अकबरी में भी रबाब का जिक्र मिलता है जिसमें छह तारें, कुछ में बारह तारे और कुछ में अठारह तारें तक होती थी।[177] सतारहवी शताब्दी ने अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' में 'रबाब' शब्द को सांस्कृति के 'रवा' से उत्पन्न हुआ माना है जिसका अर्थ है ध्वनि।[178] संगीत पारिजात के वाद्यप्रकरण में रबाब का उल्लेख इस प्रकार आता है - रव वह ति यद्यस्मात्ततों खावहः स्मृत।।124।।

---

174. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृष्ठ 49 - 50.
175. विमल काँत राय चौधरी, *संगीत कोष*, पृ. 134.
176. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ0 49
177. B.C. Deva, *Musical Instrument]* Page 128
178. वही

'संगीतसार' में रबाब की बनावट का वर्णन किया गया है। एक हाथ लम्बे कटहल के काठ को आधा तूम्बा लगा कर चमड़े से मढो। तम्बे के एक छोर पर सात छिद्र कर के सात तारों को डण्डे के अगले भाग पर खूटियों के द्वारा बाधों। उन सातों तारों को षडज आदि क्रम में रखो। हाथी दाँत के टूक के तारों को बजायो। पहले के चार तारों को मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद से और पिछले तीन तारों को षडज्, रिषभ और गन्धार से मिलाना चाहिये।[179] दसवीं शताब्दी में मध्य एशिया में जिस रबाब का उल्लेख प्राप्त होता है वह गज से बजाया जाता था। रबाब, सरोद और सारंगी के मध्य का वाद्य है।[180] जिस रबाब को गज से बजाया जाता था वह सारंगी की तरह था और जिस रबाब को जवा से बजाया जाता था वह सरोद की भाँति था। अरब में रबाब को गज से बजाया जाता था। भारत में रबाब को जवा से बजाया जाता था। प्राचीन मूर्तियों में रबाब की भाँति दिखने वाला वाद्य चित्र-वीणा है, जिसका प्रचार भरत काल से पूर्व था। चित्र वीणा को ही अरब वासियों ने रबाब कहना शुरु किया।[181]

सारिन्दा :- ''सारिन्दा'' वाद्य उत्तरी भारत और बिहार के कुछ भागों में प्रयुक्त होता है। यह अपने आकार के कारण एक विशेष वाद्य है जिसे कमान से बजाया जाता है। सारिन्दा का आकार प्रकार इस तरह का होता है कि यह दो भागों में बँटा हुआ लगता है। नीचे का भाग छोटा होता है और उपर का भाग अपेक्षाकृत कुछ बडा और पंख का आकार लिये होता है।[182]

---

179. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 49-50
180. वही
181. वही
182. B.C. Deva, *Musical Instruments,* Page 142

सारिन्दा सारंगी का ही एक अन्य प्रकार है। सारंगी से इस वाद्य के आकार में इतना अन्तर है कि सारंगी का अधोभाग चौरख्टा होता है और सारिदे का नीचे का हिस्सा अंडे के समान गोलाई लिये होता है। नीचे के भाग का बहुत थोडा अंश झिल्ली से ढका होता है। सारिन्दे के लम्बाई दो फुट होती है, इसमें ताँत की तीन तारे लगी होती है, सारंगी की तरह चार तारें नहीं होती।[183]

सारिन्दा के आविष्कारक के बारे में निशचित रुप से कुछ नहीं कहा जा सकता! काहन सिंह नाभा के अनुसार सारिन्दा का आविष्कार गुरु अर्जुन देव ने किया है।[184] जबकि शाहिन्दा बेगम के अनुसार सारिन्दा का आविष्कार गुरु अमरदास ने किया है।[185] सारिन्दा दक्षिणी और उत्तरी भारत में समान रुप में पाया जाता हैं सारिन्दा उच्च वर्ग में नहीं बजाया जाता जबकि निम्न वर्ग में यह काफी प्रयुक्त किया जाता है।

ताऊस : – ताउस मयूर की आकृति का वाद्य है। इसराज के खोल को मयूर के आकार का बना कर ताऊस के नाम से प्रचारित किया गया। राजा सौरन्द्रमोहन ठाकुर के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इसका स्वरुप बना।[186] ताउस अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है मोर। म्यूर की आकृति का तूम्बा होने के कारण इसे म्यूरी इसराज भी कहा जाता है।[187]

---

183. गीता पेंतल, *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ. 290.

184. काहन सिंह नाभा, *गुरू शब्द रत्नाकर महान कोष,* पृ. 128.

185. **Sazinda :-** This is quaint looking instrument invented by Guru Amar Dass Ji of Amritsar, whose temple in that city is so well known. It is made entirely of wood and has an oval hollow from beneath and a strip of wood across on which wires are strong. It is placed in the same position as the Sarang and played with a bow. The fingers are pressed on the wires to form notes.

F.R. Begum (Shahinda) *Indian Music,* Page 77.

186. विमल काँत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ. 126.

187. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 17

यह वाद्य भारत में निर्मित हुआ या फिर विदेशों से भारत में आया इस बारे में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु अरबी भाषा का शब्द होने से मुस्लिम सभ्यता से इसे जोडा जा सकता है। ताऊस को छड़ी के द्वारा बजाया जाता है। इसमें मयूर की भाँति दो पाँव इस प्रकार लगे होते है जिससे यह लम्बे रुप से खडा रह सके और इसी अवस्था में बजाया जा सके।[188]

ताऊस की बनावट दिलरुबा की भाँति होती हैं। केवल इसका पेट की म्यूर की भाँति होता है। ताउस और म्यूरी वीणा के नाम 'सरमाये अशरात' मादनुल मौसिकी और म्यूजिक ऑफ इंडिया (आतिय बेगम) आदि में प्राप्त होते हैं।

ताऊस वाद्य अब लुप्त हो चुका है। इसमें मुख्य चार तारें और अठारह तरबें होती थीं जो राग में लगने वाले स्वरों में मिलाई जाती थी। ताऊस के डाँड पर पदे बँधे रहते थे जिनकी व्यवस्था आधुनिक दिलरुबा अथवा इसराज की भाँति होती थी।इसे बायें हाथ की उँगली से तार दबा कर दाहिने हाथ से गज चला कर बजाया जाता था।

दिलरुबा : दिलरुबा इसराज की भाँति ही एक वाद्य है जिसका आकार इसराज से बडा होता है। आकार में यह इसराज से इसलिये भिन्न है क्योंकि इसका खोल सारंगी के खोल के आकार का है, सारिन्दा के खोल की तरह गोल नहीं होता।[189]

---

188. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ. 126.
189. विमल काँत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ. 127.

दिलरुबा का नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। ऐसा माना जाता है कि दिलरुबा का निर्माण इसराज के कुछ समय पश्चात् ही हुआ। दिलरुबा के रुप, आकार, वादन विधि का इसराज से बहुत कम अन्तर है। दोनों की वादन विधि एक जैसी होने से किसी एक का अभ्यास कर लेने से दूसरे की वादन विधि स्वंय ही आ जाती है। परन्तु दिलरुबा का दण्ड इसराज से थोडा छोटा होता है और तरब की तारे इसराज से अधिक होती है।[190]

---

190. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ. 116

हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा एंव वाद्यः आंतरिक सम्बन्ध

हिन्दोस्तानी संगीत की वादन परम्परा निश्चित रूप से वाद्यों के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो गई होगी। आरम्भिक चरणों में मनुष्य ने ध्वनि उत्पन्न करने के विभिन्न ढंग अपनाये होंगे। कभी चोट के द्वारा, थपथपा कर, हिला कर, खरोच कर, रगड़कर या पफूँक के द्वारा विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की होंगी। यह क्रियाएं धीरे-धीरे विकसित होती रही होंगी। यद्यपि आरम्भ में मानव ने वाद्यों का प्रयोग संगीत के लिये नहीं बल्कि अलग-गलग ध्वनियाँ निकालने के लिये किया होगा। परन्तु धीरे-धीरे वह ध्वनियाँ विकसित होती रहीं और उन्हें उत्पन्न करने की विधियाँ भी विकासशील रहीं। ''अब तक की खोज के अनुसार यह कहा जा सकता है कि विश्व के सारे भागों में सारी दिशाओं में वाद्यों का प्रथम प्रयोग हुआ होगा, किन्तु यह प्रयोग संगीत नही वरन् जादुई प्रभाव उत्पन्न करने के लिये होता था। प्रारम्भ में लोगों ने वाद्यों को बनाना व दक्षतापूर्वक बजाना सीखा परन्तु सौन्दर्य की उपेक्षा की।वाद्य अपने गुणों सहित अर्थपूर्ण थे किन्तु आर्कषक या सुन्दर नहीं थे। उनकी महत्तवपूर्ण ध्वनियाँ कोमल, जोरदार और तीखी थीं, उनके ब्रहन रूप गोलाकार या नुकीले थे, उनका रंग श्वेत या रत्तिफम लाल था, उनकी वादन क्रिया चोट कर, खरोंच कर या घिस कर होती थी।[191]

---

191. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 7.

सिन्धु घाटी की सभ्यता में संगीतिक वाद्यों की वादन परम्परा सन् 1924 में सिन्ध परदेस के लड़काना ज़िले में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से विभिन्न भूतियां प्राप्त हुईं थीं, जिनमें शिवजी के ताण्डव नृत्य जैसी मुद्रा में एक मूर्ति, एक पुरूष की ढोल बजाते हुये मुद्रा में मूर्ति व एक नारी की मूर्ति नृत्य की मुद्रा में प्राप्त हुई है। [192] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में नृत्य और वादन कला अत्यन्त उन्नत रहीं होगी। निश्चय ही इस काल तक वाद्यों को बजाने की विभिन्न क्रियाएं, वादन के सौंदर्य को बढ़ाने हेतु विकसित हो चुकी होंगी। सिन्धु घाटी के लोगों ने संगीत में अध्यात्मिकता और नैतिकता को उभारा और श्रृगारिंक भावना को खत्म कर दिया ।[193] जिसका प्रभाव विभिन्न वाद्यों की वादन क्रियाओं पर भी पड़ा। जिससे इन क्रियाओं में पहले से अधिक माधुर्य और गाम्भीर्य उत्पन्न हो गया।

वैदिक काल में सगीतिक वाद्यों की वादन परम्परा : वैदिक काल में तन्त्री वाद्यों के अर्न्तगत ताल्लुक वीणा, काण्ड वीणा, विच्छोरा अलाबु वीणा, कपिशीषे वीणा आदि प्रमुख थे। जिनकी वादन क्रिया उनकी बनावट और स्वरूप पर आधारित थी। वैदिक शास्त्रों में एक अन्य वीणा जिसे गात्र वीणा कहा गया है, का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इस काल में वीणा को सामगायक गायन के साथ स्वंय ही बजाता था। ''वास्तविक वीणा-वादक के अभाव में हाथ की उंगलियों के पोरों में वीणा के स्वरों की कल्पना करते हुए सामगायक अपने गान का अभ्यास किया करता था। कालान्तर में यह प्रयोग

---

192. वसंत, *'संगीत विशारद'*, पृ0 14

193. योगेन्द्रपाल शर्मा, बच्चितर सिंह, *भारती संगीत दा इतिहास*, पृ0 5

रूढ़ हो गया तथा वैदिक गान में आवश्यक समझा जाने लगा।''[194] अलाबु और शील वीणा को भी सामगान में बजाया जाता था। वीणा वादन के लिये 'नखी' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। जिसे अब मिजराब कहा जाता है।[195] इस प्रकार वैदिक काल के तन्त्री वाद्यों की वादन परम्परा भी सिन्धु घाटी के समान आध्यात्मिकता पर आधारित थीं। सामगायन के विकास के साथ-साथ तन्त्री वाद्यों की वादन क्रिया का भी विकास होता रहा। जिससे भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्यों के वादन की विकास प्रक्रिया, आध्यात्मिक, नैतिक और सौंदर्यात्मक मूल्यों के साथ विकसित होती रही।

वैदिक काल में तंत्री वाद्यों की वादन क्रिया : नाट्य शास्त्र में भरत ने तंत्री वाद्यों की वादन क्रिया को 'धातु' कहा है। दायें हाथ से आधुनिक सितारवादन में जिस प्रकार दाये हाथ से दा दिर, दा रा, इत्यादि बोल आते हैं उसी को भरत ने 'धातु' रूप बताया है। इसी प्रकार बायें हाथ में जिस प्रकार सितार में मींड, मुर्की आदि क्रियाएं की जाती हैं उन्हें भरत ने बायें हाथ के धातु व्यापार माना है। इस प्रकार के धातु भरत के अनुसार चार हैं - विस्तार धातु, करण धातु, आविद्ध धातु एवं व्यंजन धातु।[196] इनमे से विस्तार धातु का वर्णन निम्न प्रकार से है :-

विस्तार धातु :- विस्तार धातु चार प्रकार का होता है :

---

194. डा0 लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ0 21
195. वही
196. वही, पृ. 25

विस्तारज धातु :- यह धातु एक आघात का है। इसमें एक आघात से एक स्वर बजाया जाता है

स	स	स	स
दा	दा	दा	दा

संघातज :- यह धातु दो धातुओं का है।

स	रे	ग	म
दाड़ा	दाड़ा	दाड़ा	दाड़ा

समवायज :- इसमें तीन आघात होते हैं ।

स	रे	ग	म
दड़द	दड़द	दड़द	दड़द

अनुबन्ध :- ऊपर के तीनों प्रकारों के मिश्रण को अनुबन्ध धातु कहते हैं। यह मिश्रण उपरोक्त किन्हीं दो अथवा तीनों प्रकारों को मिला कर बनाया जाता सकता है।

उपरोक्त धातुओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि ये तन्त्री वादन में बोल-रचना के प्रकार हैं जिनके आधार पर मिज़राब, जवा अथवा प्रहार के अन्य प्रकारों के भिन्न-भिन्न बोलों का गठन किया जा सकता है। आधुनिक युग में सितार अथवा सरोद आदि में जिन बोलों का प्रयोग होता है उन सब की उत्पत्ति विस्तार धातु के इन्हीं चारों भेदों से हुई है।[197] महर्षि भरत के काल में दो प्रकार की वीणाओं का ही प्रयोग किया जाता था। पहले प्रकार में प्रत्येक स्वर के लिये एक तार होता था। और दूसरे प्रकार में उँगलियों द्वारा तार पर नियत अवधात उत्पन्न करके विभिन्न स्वरों को उत्पन्न किया जाता था।

---

197. डा0 लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ0 25

इस समय किसी भी वीणा पर 'सारिका' का प्रयोग आरम्भ नहीं हुआ था। वीणा पर 'सारिका' लगाये का प्रयोग सातवीं शताब्दी में हुआ।

भारतीय वाद्यों के वादन की विकास प्रक्रिया में ईसा की दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक का काल सन्धि काल माना जा सकता है। प्राचीन काल में प्रचलित वीणाओं की वादन विधि अभिनव गुप्त के काल तक ज्यों की त्यों ही रही। परन्तु ग्यारवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के संगीत ग्रन्थों में वाद्यों के रूप और वादन विधि में अन्तर दिखाई देता है। इसका कारण यह भी था कि तेरहवीं शताब्दी तक प्राचीन संगीत के इतिहास से यह पता चलता है कि वादन का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता था बल्कि गायन और नृत्य में उसका प्रयोग किया जाता था।

'अमीर खुसरो (13वी सदी) के समय तक स्वतन्त्र रूप में भारतीय वादन संगीत की कोई परम्परा उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह नहीं कि इस समय तक भारतीय संगीत में वादन का विकास नहीं हुआ था बल्कि गायन का अनुकरण करते हुए वादन का प्रयोग कापफी उच्चतम रहा है। परन्तु जहाँ तक वादन संगीत की शैली का सम्बन्ध है वह तेरहवीं शताब्दी तक अस्तित्व में नहीं आई थी। तेरहवीं सदी में हुए अमीर खुसरो के सपुत्र पिफरोज़ खां का वादन कई इतिहासिक तथ्यों से प्राप्त होता है। पिफरोज खां के जीवन काल में विषय में इतिहासकारों ने इसका समय लगभग 1250 ई0 माना है। इस हिसाब से तेरहवीं सदी के आखिर और चौदहवीं सदी के आरम्भ में वादन संगीत का

स्वतन्त्र रूप आरम्भ हुआ। पिफरोज खां ने पिफरोज खानी गतों के द्वारा वादन शुरू किया। कई विद्वान मानते हैं कि पिफरोज खां अमीर खुसरो का पुत्र था और तानसेन का निकट सम्बन्धी था।[198]

मुगल काल में तंत्री वाद्यों को वादन परम्परा : मुगल काल तक प्राचीन वीणाओं के कुछ रूप किन्नरी वीणा, एकतन्त्री, अलापिनी की वीणा का सर्वथा लोप हो चुका था। और इनका स्थान नये वाद्यों ने ले लिया था। जिनमें रबाब, कानून, यन्त्र आदि प्रमुख थे। बाबर के दरबार में इन वाद्यों को बजाने वाले वादक नियुक्त थे। क्योंकि यह वाद्य मध्यकाल में ही प्रचलित हुए थे इसलिये इनकी वादन विधि में भी नये रूपों का प्रादुर्भाव हुआ।

इस काल में प्रचलित रूद्र वीणा को प्राचीन किन्नरी वीणा की वादन विधि से ही बजाया जाता था परन्तु रबाब, सुरसिंगार, सरोद सितार आदि में वादन विधि के नये रूप विकसित हुए। इस काल में स्वतन्त्र वादन का प्रचार हो चुका था जिस कारण स्वतन्त्र वादन के लिये गत के आविष्कार से नयी वादन विधि-विधानों से युक्त वीणाओं के अप्रचलन के साथ पुरानी वादन विधियों में परिवर्तन होने लग गये। तानसेन के वशंजों का सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक संगीत कला पर पूर्ण अधिकार रहा। उन्होने दो वाद्यों के लिये उन्होने नयीं वादन विधियाँ बनायीं। तानसेन के वंश में वादन

---

198. योगेन्द्र पाल शर्मा, बच्चितर सिंह, *भारतीय संगत दा इतिहास,* पृ0 372

के इस घराने को सेनी (सेनवंशी) कहा जाता है। तानसेन की वंश परम्परा में सुखसेन के पुत्र नायक रहीम सेन ने सितार वादन में उन्नति लाने की कोशिश की।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक कई वादन शैलियाँ अस्तित्व में आई। जिनमें से कई विलुप्त हो गई या पिफर नये रूप और वादन विधान के साथ प्रचारित रहीं।

आधुनिक काल में वादन के अर्न्तगत वादन विधि को गत कहा जाता है।

गत : जिस प्रकार गायन शैलियों में ख्याल प्रचलित है उस प्रकार वादन शैलियों में गत का प्रमुख स्थान है। ''राग के वादी सम्वादी एवं राग प्रदर्शक मुख्य स्वरों के आधार पर सितार के बोलों की ताल बद्ध रचना गत कहलाती है।''[199] गत के दो भाग होते हैं :- स्थाई, अन्तरा । आधुनिक काल के सितार वादकों द्वारा इन दोनों भागों का वादन किया जाता है। ''किन्तु अधिकांश खानदानी सितारियों की गतों में केवल स्थाई ही होती है। उसकी रचना इस प्रकार से की गई होती है कि राग के सम्पूर्ण लक्ष्य केवल स्थाई से ही स्पष्ट हो जाते हैं। कुछ ऐसी भी गतें मिलती हैं जिनके स्थाई और अन्तरा के मध्य में एक आवर्तन की पंक्ति होती है जो स्थाई और अन्तरे को सम्बन्धित करती है। उसे 'मंझा' कहते हैं। वास्तव में 'मंझा' स्थाई के अर्न्तगत ही होता है।''[200]

---

199. जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ. 27

200. पं0 जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ0 27

विभिन्न वादन शैलियों पर आधारित सेनी बाज, ख्याल शैली पर आधारित मसीतखानी गत और तराना पर आधारित रजाखानी गत प्रचलित हुई है। गत के प्रकार निम्न प्रकार से हैं :-

मसीतखानी गत : उस्ताद मसीत खां ने मूल त्रितंत्री (सेहतार) में चार तार ओर जोड़ कर उसे सप्त तन्त्री वाद्य का रूप देकर पर्दों की संख्या 23 तक बढ़ा कर सितार के अचल ठाठ का वाद्य बना दिया और ध्रुपद धमार के आधार पर विलम्बिंत गत का एक नया स्वरूप बनाया जिसे वर्तमान काल में 'मसीतखानी गत' कहा जाता है।[201] मसीत खां तानसेन के वंश में राजरस खां के पुत्र थे। उन्होने ख्याल गायकी के आधार पर मसीत खानी गत का प्रचार किया और चारताल के स्थान पर तीन ताल में विलम्बित लय की गतों का निर्माण करके मसीत खानी गत शैली की नींव रखी। यह गतें सेनी घराने की गतों से जो ध्रुपद शैली पर आधारित थी।[202]

इस गत को विलम्बित लय में बजाया जाता है। इसे ठाह, दुगुण, तिगुण, चौगुण, आड, कुआड, अठ गुण, सोलह गुण आदि लयकारियों में बजाया जाता है।

जिस प्रकार गायन में बड़े ख्याल विलम्बित लय में होते हैं वैसे ही मसीत खानी गतें विलम्बित लय में बजाई जाती हैं। इस गत के बोल दिर दा, दिर दा, रा, दा दा रा हैं।

---

201. वसंत, *संगीत विशारद,* पृ. 513

202. योगेन्द्र पाल शर्मा, बच्चितर सिंह, *भारती संगीत दा इतिहास,* पृ. 374

इन्हीं बोलों से तीन ताल, एक ताल, झपताल की गतें बनाई जाती हैं। परन्तु आजकल तीन ताल की विलम्बित गतों को बजाने का प्रचलन है।

मसीत खानी गत में मींड, गमक, कृन्त व जमजमा, मुर्की आदि से गत के निश्चित बोलों को अलंकृत करके राग का स्वर विस्तार किया जाता है।[203]

मसीत खानी गत का आविष्कार दिल्ली के मसीत खां ने किया इसलिये इसको दिल्ली का बाज कहा जाता है।

रजाखानी गत : उन्नीसवीं सदी में लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के दरबारी गायक श्री रजा खां ने द्रुत ख्याल गीतों के आधार पर द्रुत तीन साल की गत का निर्माण किया जिसे रजाखानी गत कहा जाता है। जिस प्रकार छोटा ख्याल द्रुत लय में गाया जाता है उसी प्रकार रजाखानी गत भी द्रुत लय में बजाया जाता है। इसीलिये इसे द्रुत गत भी कहा जाता है। ''इसमें सितार के दारदार दिरदार, दा दिर दाड आदि बोलों से गत की रचना की जाती है। इसकी चाल द्रुत एवं चंचल होती है। इसमें विभिन्न प्रकार की लयकारियों के बोल बना कर अनेकों प्रकार के स्वर वैचित्र्य प्रदर्शित किया जाता है। इसकी चलन तराना के समान होती है। द्रुत लय के तोड़े, तान अनेक प्रकार की मिजराबों से निर्मित झाले इस गत को बड़ा ही आकर्षक बना देते हैं।[204] इस शैली को लखनऊ या 'पूर्वी बाज' भी कहा जाता है।

---

203. जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ. 27

204. पं0 जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ0 27

अमीरखानी गत : अमरीखानी गत का एक अन्य प्रकार है जो आधुनिक काल में प्रचलित नहीं है। 1700 ई0 से लेकर 1850 ई0 तक का समय ऐसा था जब स्वतन्त्र रूप से वादन संगीत का प्रयोग नवीन संगीत प्रदर्शन बनके प्रचलित हुआ। सेनी घराने के रहीम सेन के पुत्र अमृतसेन ने सितार वादन में विशेष लोकप्रियता हासिल की। अमृतसेन की शिष्य परम्परा में हरीस सेन और अमीर खां प्रमुख थे। अमीर खां ने एक स्वतन्त्र वादन शैली प्रचलित की जो अमीर खानी बाज के नाम से प्रचलित हुई। कापफी समय तक इस गत का प्रचार रहा यह गत ध्रुपद शैली पर आधारित थी।

पिफरोजखानी गत: पिफरोजखानी गत का आवष्किार पिफरोज खां ने किया। पिफरोजखां ने वादन की शैली का स्वतन्त्र आरम्भ नहीं किया परन्तु किसी वाद्य का वादन होने के कारण आनन्द जरूर देते थे। 14वीं और 16वीं सदी तक पिफरोजखानी गत कापफी लोकप्रिय सिद्ध हुई।[205]

सेनवंशी गत : सेनवंशी गत का आरम्भ सेनवंशी अमृतसेन ने शुरू किया। इसकी सेनवंशी गतों में मिजराब के बोल कठिन लय पर गत का संगठित रूप प्रचलिन हुआ। अमृतसेन का समय 1813 से लेकर 1823 तक का माना जाता है।

इमदाद खानी गत : इस गत का निर्माण इमदाद खां ने किया जो सहबदाद खां के पुत्र थे। इनका जीवन काल 1848 - 1920 ई0 तक है। इस गत का आधार ख्याल गायन ही है। ख्याल गायन की कण्ठ की क्रियाओं को वादन में प्रदर्शित करने का कार्य

---

205. योगेन्द्र पाल शर्मा, बच्चितर सिंह, *भारती संगीत दा इतिहास,* पृ0 375

इमदाद खानी गत का मुख्य विशेषता है। उनके पुत्र इनायत खा ने इमदादी खानी गतों को विभिन्न-विभिन्न तालों में निबंद्ध किया। उन्होने गायन के अनुगामी वादन को अधिक रसीला, सुरीला और सहज बनाया । इनायत खां के पुत्र विलायत खां भी इसी गत शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी वादन विधि ख्याल गायन शैली पर आधारित है।

बाज : सितार पर बजने वाली विभिन्न वादन शैलियों को बाज कहा जाता है। ''बाज का अर्थ है, बजाने का ढंग, वादन शैली बजाने की रीति।''[206] सितार की मुख्य दो वादन शैलियाँ प्रचलित हैं। विलम्बित या दिल्ली बाज, द्रुत पूर्व या लखनऊ बाज मुख्य रूप में विलम्बित और द्रुत गतें दो अंग से बजाई जाती हैं :

गतकारी अंग : इसमें गत के बोलों के अनेक प्रकार की लयकारियों में मिजराबों के विभिन्न प्रयोग से राग का विस्तार किया जाता है। इसके तोड़े कृन्तन तिरिप से युक्त विभिन्न चाल के होते हैं साथ ही उनकी बन्दिशें कठिन होती हैं।

ख्याल अंग : इस अंग में गत के बोल सरल होते हैं। इसमें राग के स्वर समूहों को ताल बद्ध करके ख्याल जैसी तानों का राग-विस्तार किया जाता है। गत के बोल गीत के ढंग से निर्मित होते हैं।[207]

---

206. जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ.28

207. पं0 जगदीश नारायण पाठक, *सितार सिद्धान्त,* पृ0 28

आलाप : गत बजाने से पहले विलम्बित लय में राग का विस्तार 'मींड' के द्वारा किया जाता है उसे आलाप कहते हैं। आलाप के चार विभाग होते हैं। स्थाई, अन्तरा, सन्यासी, आभोग ।

स्थाई में राग का विस्तार विलम्बित लय में किया जाता है जिसमें मीड़, जमजमा कृन्तन का प्रयोग होता है। मींड की उत्पति के समय चिकारी या जोड़ी के प्रथम तार पर भी मिजराब का अल्प प्रयोग किया जाता है। जिससे स्वरों का क्रम बना रहता है। इसमें पहले मन्द्र और मध्य सप्तक का विस्तार करने के पश्चात् मन्द्र सप्तक का स्वर विस्तर किया जाता है। इसके बाद तार सप्तक के षड़ज तक पहुँच कर मध्य सप्तक के षडज पर सम दिखाया जाता है।

अन्तरे में मध्य सप्तक के विभिन्न स्वर सम्दायों के साथ तार षडज पर विस्तार करते हैं। उसके बाद तार पंचम तक स्वर लगाये जाते हैं। अन्तरे के आलाप की गति स्थाई के आलाप से दुगनी हो जाती है। और चिकारी के तार का प्रयोग अधिक होने लगता है। विभिन्न स्वर समुदायों से राग के न्यास स्वरों पर विस्तार किया जाता है। आलाप के इस भाग की क्रिया को जिसमें एक-एक स्वर का अनेकों स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है - जोड कहते हैं। इसमें गमक का भी प्रयोग आरम्भ होता है। इस प्रकार तीनों सप्तकों का स्वर विस्तार करके अन्तरे का आलाप समाप्त किया जाता है। आलाप का तीसरा भाग सन्चारी कहलाता है। इसमें लय और बढ़ जाती है। चिकारी के

तार पर मिजराब का अधिक प्रयोग होने लगता है। चतुर्थ भाग आभोग में गति द्रुत हो जाती है। इसमें स्वर विस्तार के साथ झाले का चमत्कार दिखाया जाता है। उसके पश्चात् अति द्रुत गति से झाले का प्रदर्शन कर तानों के द्वारा आलाप समाप्त किया जाता है।

आधुनिक तत वाद्यों की वादन विधि में प्राचीन वादन विधि का भी मिश्रण दिखाई पड़ता है। जिसके साथ ही नये हस्त व्यापार भी प्रचलित हो गये हैं। आधुनिक काल में दायें हाथ के हस्त व्यापार प्राचीन काल की अपेक्षा कम हैं और बायें हाथ के हस्त व्यापार अधिक हैं। प्राचीन काल में प्रचलित कई वीणाओं का वादन दायें हाथ की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा अँगुलियों से किया जाता था। कभी-कभी अँगूठे का भी प्रयोग किया जाता था। परन्तु वर्तमान काल में प्राय: तर्जनी और कनिष्ठा का ही प्रयोग होता है। परन्तु प्राचीन काल की अपेक्षा आधुनिक काल में खटका, मुर्की, कृन्तन, मींड इत्यादि बायें हाथ के व्यापारों में अधिकता आई है।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक तंत्री वाद्यों की वादन विधि में एक अन्य परिवर्तन हुआ है। प्राचीन काल में गायन शैली पर मूर्च्छना पद्धति का विशेष प्रभाव था। अर्थात गायकों का षडज स्थिर नहीं था। इसी प्रकार वाद्यों में भी सारिकाएं न होने के कारण किसी स्वर को षडज् मान कर वादन करने की सुविधा थी। परन्तु सारिकायुक्त वीणाओं में यह सम्भव नहीं है और चिकारी और छेड़ के तारों के प्रयुक्त होने से स्वरों का स्थिरीकरण अति आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि षडज का स्थिरीकारण

किन्नरी वीणा के काल से प्रारम्भ हो गया था।[208] जिससे वाद्यों की वादन विधि में परिवर्तन स्वाभिवक हो गया।

हिन्दोस्तानी संगीत में उपरोक्त विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट है कि हिन्दोस्तानी संगीत में परचलित वाद्यों की विशिष्ट व विशाल परम्परा प्रचलित एंव प्रवाहित रही है। मानवीय जीवन के प्रारम्भ से ही वाद्य इसका विशेष अंग रहे हैं। वाद्यों के विकास के साथ-साथ विभिन्न वाद्य भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित हुए और इन वाद्यों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया। इतिहासिक तौर पर अलग-अलग कालों में वाद्यों की वादन परम्परा, वादकों की विशेष श्रेणियाँ व घराने प्रचलित रहे। अपने विश्लेषण में हमने हिन्दोस्तानी संगीत पद्वति में प्रचलित वाद्यों में से तंत्री वाद्यों का विशेष रूप में विस्तृत अध्ययन किया है। जिसके आधार पर हम अगले अध्यायों में गुरमति संगीत की तंत्री वाद्यों की परम्परा का अध्ययन करेंगे।

---

208. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 122

द्वितीय अध्याय

गुरमति संगीत की उत्पत्ति एवं विकास

2.1 गुरमति संगीत : संक्षिप्त परिचय

2.2 गुरमति संगीत की उत्पत्ति

2.3 विभिन्न गुरुओं के काल में गुरमति संगीत का इतिहासिक विकास ।

गुरमति संगीत : संक्षिप्त परिचय

भारतीय अध्यात्मिक संगीत परम्पराओं में संगीत का विलक्ष्ण और महत्त्वपूर्ण स्थान है । अध्यात्मिकता का प्रमुख लक्ष्य परमात्मा का साक्षातकार माना जाता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वाणी की सिरजना की गई । वाणी में शब्द प्रथम है । शब्द नाद / ब्रहम है और इस का सफल एवं सर्वोत्तम माध्यम संगीत है । सामवेद से लेकर आधुनिक काल तक संगीत की प्रयुक्तता मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है । ''वैदिक संगीत भारतीय संगीत परम्परा का आरम्भिक स्त्रोत्र स्वीकार किया जाता है । चार वेदों में से सामवेद का सम्बन्ध गायन अथवा संगीत से है । इन वेद मन्त्रों के उच्चारण एवं गायन प्रक्रिया को स्वर, सप्तक, लय व ताल के प्रथम प्रमाण को आधार के रूप में माना जाता है ।[1]

सामवेद के अतिरिक्त ब्राह्मण-संहिता, गांधर्ववेद, प्रतिसारख्य, नारदीय शिक्षा, छान्दोग्य उपनिषद, नाट्यशास्त्र, विष्णु धर्मोत्तर-पुराण, संगीत रत्नाकर-संगीत और अध्यात्म का सम्बन्ध दर्शाने वाले ग्रन्थ हैं ।[2] भारत जैसे धर्म परायण देश में समय-समय विभिन्न पीर पैगम्बरों अवतारों ने जन्म लेकर भिन्न-भिन्न विधियों से मुनष्य की आध्यात्मिक आत्म उन्नति के लिये पथ प्रदर्शित किया । प्राचीन काल से लेकर मध्य काल तक संगीत की विभिन्न धाराएं प्रवाहित रही हैं । जिनमें शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, भक्ति संगीत आदि प्रमुख रुप में पहचानी जाती हैं । मध्यकाल

---

1. प्यारे लाल श्री माल, *निबन्ध संगीत,* लक्ष्मी नारायण गर्ग (संपा), पृ० 305
2. वहीं, पृ० 305

में प्रचलित धार्मिक संगीत परम्पराओं में गुरमति संगीत परम्परा एक नवीन और विलक्ष्ण परम्परा है । यह परम्परा सिक्ख धर्म द्वारा प्रवाणित और प्रमाणिक व्यवहारिक परम्परा के रूप में मूर्तिमान होती है । इस परम्परा की व्यवहारिकता इसके विलक्ष्ण संगीत प्रबन्ध पर आधारित है जिसका अपना विशिष्ट सिद्धान्तिक आधार है । इस संगीत परम्परा का आरम्भ सिक्ख धर्म के प्रथम गुरु श्री गुरु नानक देव जी के आगमन से हुआ । श्री गुरु नानक देव जी और उनके नौ उत्तराधिकारियों ने सिक्ख धर्म के प्रचार हेतु वाणी के गायन के लिये संगीत को माध्यम रुप में अपनाया, जिसे गुरमति संगीत कहा जाता है ।

''गुरमति संगीत सिक्ख गुरुओं द्वारा निर्मित, नियोजित एवं विकसित संगीत परम्परा है । जिसकी मौलिकता उसका सुनिश्चित संगीत प्रबन्ध विशिष्ट प्रस्तुति विधान से मूर्तिमान होती है । इस संगीत परम्परा में समूचे भारतीय संगीत के रागों, गायन रुपों एवं सांगीतिक प्रस्तुति के अन्य भिन्न-भिन्न अंगों और तत्त्वों को गुरमति के दृष्टिकोण एवं मौलिक सार्थकता, नवीन संदर्भ और विलक्ष्ण सम्भावनाएं प्रदान की हैं ।''[3] सिक्ख धर्म के आधार ग्रन्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में पूर्वकालीन और समकालीन परम्पराओं के चिन्तन एवं मन्थन के पश्चात् वाणी के शब्द रुप को वैज्ञानिक रुप में संकलित किया गया है । सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने इसका संकलन किया जिसमें गुरु साहिबान की वाणी और विभिन्न भक्तों की वाणी

---

3. गुरनाम सिंह (डा.) शोध पत्र, *गुरमति संगीत विषय वजों पहचान ते सार्थकता ।*

को विभिन्न-विभिन्न रागों के अर्न्तगत अंकित किया गया। सिक्ख गुरुओं के अनुसार वह परमात्मा के संदेश को जन मानस तक संचारित करने का कार्य करते हैं ।

जैसी मैं आवे खसम की वाणी
तैसडा करी ज्ञान वे लालो ।[4]

वाणी की सजृन प्रक्रिया अंतरगत गुरु नानकदेव जी उसे धुर की वाणी[5] अपने को खसम ढाड़ी[6] कहते हुए उस परमात्मा के आदेश[7] को समस्त मानव जगत् में संचारित करने के लिये शब्द कीर्तन को माध्यम बनाया । इस शब्द कीर्तन में संगीत द्वारा खसम की वाणी को सर्व लोगों तक संचारित करने के लिये परम पिता परमात्मा की उपासना की गई है । परमात्मा की स्तुति में संगीत गायन कला के लिये नहीं अपितु भक्ति के लिये किया जाता है । इसका उद्देश्य आत्मा का परमात्मा से मिलन करवाना है । जिसके लिये गायक/कीर्तनकार संगीत के माध्यम से वाणी के आन्तिरक भावों को शब्द, स्वर एवं लय द्वारा व्यक्त करता है । वाणी की प्रस्तुति के लिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सिद्धान्तिक और व्यवहारिक रुप में विभिन्न संगीतिक संकेत विद्यमान हैं । जिनका एक सुसंगठित एवं निश्चित संगीत प्रबन्ध है । जिसे गुरमति संगीत प्रबन्ध कहा जाता है । आधुनिक समय में व्यवहारिक परम्परा के रुप में प्रचलित एवं विकसित गुरमति संगीत परम्परा को विस्तृत रुप में जानने से पूर्व गुरमति संगीत की उत्पत्ति के विषय में जानना आवश्यक है ।

4. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 722.
5. वही
6. वही
7. वही

गुरमति संगीत की उत्पत्ति :-

गुरमति संगीत का आरम्भ सिक्खों के प्रथम गुरु श्री गुरु नानक दवे जी के आरम्भिक जीवन से प्रत्यक्ष होता है । परमपिता आकाल पुरख ने गुरु नानक देव जी को संदेश वाहक रुप में समस्त जन मानस के उद्धार के लिये धरती पर भेजा (गुरू साहिब ने भ्रमण करते हुए (चार उदासियों के रुप में) परमात्मा के संदेश का संचार किया । इस सम्बन्ध में भाई गुरदास जी का कथन है :

पहला बाबा पाया बरख्श दर[8]

गुरु नानक देव जी का उपदेश परमपिता परमात्मा का हुक्म है । आपने परमात्मा के फुरमान को वाणी के शब्द रुप में व्यक्त किया :

जैसी मैं आवे खसम की वाणी
तैसडा करी ज्ञान वै लालो ।[9]

दैवी हुक्म की शब्द प्रस्तुति को संगीत के माध्यम द्वारा लोगों तक संचारित किया गया । संगीत के साथ के लिये गुरु साहिब ने भाई मरदाने को अपना साथी चुना । भाई मरदाना गुरमति संगीत परम्परा के प्रमुख रबाबी कीर्तनकार थे । जिनके रबाब वादन के विषय में भाई गुरदास जी कहते हैं :

---

8. *भाई गुरदास की वारां*, वार 1., पाऊडी 24.
9. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब*, पृ० 722

इक बाबा आकाल रुप, दूजा रबाबी मरदाना ।
दित्ती बांग नर्माज करिं सुन समानि हुआ जहाना ।[10]

श्री गुरु नानक देव जी भ्रमण करते हुए जिस जिस स्थान पर गये भाई मरदाना उनके साथ रहे । आप शब्द का गायन करते और मरदाना रबाब द्वारा संगीत देते । वाणी की आमद को गुरु साहिब इस प्रकार दर्शाते है :

मरदानिया रबाब बजा । धुर की वाणी आई है ।[11]

श्री गुरू नानक देव जी का भाई मरदाने को एक साथी के रुप में चुनना और प्रथम उदासी के समय भाई मरदाने के लिये एक विशेष प्रकार का रबाब तैयार करवाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि श्री गुरु नानक देव जी ने शब्द और संगीत द्वारा लोकाई को सोधने की प्रक्रिया प्रारम्भ की । श्री गुरु नानक देव जी की सृजन प्रक्रिया में वाणी, शब्द या काव्य ना हो कर दैवी है :

---

10. *भाई गुरदास की वारां,* वार 1., पाऊडी 35.

11. बाबे कहा मरदानिया रबाब बजा । मरदाने रबाब बजाया ।।
रांग आसा कीता । बाबे शब्द बोलिया ।। राग आसा ।।
जिन सिरि सोहिन पटियां मांगी पाई सन्धूर
.....
जो तिस भाव सो थीये नानक किया मानुख ।।
जन्मसाखि श्री गुरु नानक देव जी, प्यारा सिंह (संपा), पृ० 21.

धुर की वाणी आई
तिन संगली चिन्त मिटाई ।।[12]

इस धुर की वाणी के गायन का आदेश तृतीय गुरु श्री गुरु अमरदास जी ने भी दिया है :

आवो सिक्ख सत्गुरु के प्यारियो ।
गावो सच्ची वाणी ।।[13]

पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी का इस सम्बन्ध में आदेश है :

गुरवाणी गावो भाई ओह सफल सदा सुखदाई ।[14]

गुरवाणी गायन करने के लिये सिक्ख गुरुओं की वाणी में रागों के अर्न्तगत विभिन्न श्लोक प्राप्त होते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि शब्द गायन का आरम्भ श्री गुरु नानक देव जी से हुआ और जिसका अनुसरण विभिन्न गुरुओं एवं भक्तों ने वाणी रुप में किया ।

वाणी के अर्न्तगत शब्द और संगीत अलग-अलग नहीं हैं बल्कि वाणी रुप में शब्द और संगीत का संयुक्त, सम्मिलित प्रस्तुतिकरण प्रभु स्तुति के कीर्तन रुप में मूर्तिमान हो रहा है । यहाँ पर यह स्पष्ट करना उचित लगता है कि श्री गुरु नानक देव जी से पूर्व भारतीय अध्यात्मिक भक्ति परम्पराओं में संगीत का प्रयोग होता रहा है ।

---

12. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 629
13. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 920
14. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 628

यदि श्री गुरु नानक देव जी ने सिक्ख धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिये संगीत का प्रयोग किया तो इसमें कौन-कौन सी विलक्षणताएं विद्यामान थी जो इसे अन्य आध्यात्मिक संगीत परम्पराओं से अलग करती हैं । इस विषय का अध्ययन स्वतन्त्र रुप में अपने खोज कार्य के अर्न्तगत तृतीय अध्याय में किया गया है । सर्वप्रथम हम गुरमति संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ही अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं । सिक्ख इतिहासिक दृष्टि के प्रसंग में समकालीन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक हालातों को सूक्ष्म दृष्टि, गहरे चिन्तन और बोध के आधार पर श्री गुरु नानक देव जी गुरमति संगीत परम्परा के प्रथम स्त्रोत्र बिन्दु हैं । गुरु साहिब ने वाणी की सृजन प्रक्रिया को प्रस्तुति रुप में भाई मरदाना और उनके रबाब द्वारा सुचेत रुप में माध्यम रुप में अपनाया । दैवी हुक्म को जन मानस तक संचारित करने के लिये आपने सर्वप्रथम शब्द कीर्तन की धुन को गुंजारित किया । इस सम्बन्ध में अनेक साखियां उपलब्ध होती है । वाणी की प्रस्तुति के लिये आपने भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, धर्मों एवं जाति के लोगों को परमात्मा का संदेश दिया । वाणी के संदेश के लिये आपने संगत स्त्रोत्र श्रेणी के स्तर पर मानसिकता को मुख्य रखते हुए विभिन्न रागों, गायन शैलियों का प्रयोग किया । जिसकी प्रस्तुति के लिये विशिष्ट विधि विधान को सिद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रुप से लेकर उतराधिकारी गुरु साहिबान के समय गुरमति संगीत निरन्तर विकास करता रहा। गुरमति संगीत परम्परा के अर्न्तगत सिक्ख गुरु साहिबान ने वाणी और संगीत के विभिन्न रूपों द्वारा इस परम्परा को विकसित एवं प्रफुल्लित किया । वाणी में शब्द

परमात्मा की सर्वव्यापकता का लिखायक है । उसके दर्शन गुरु के माध्यम से सम्भव हैं । इसलिये गुरु फरमान है :-

भलो भलो रे कीतनीयां राम, रमा, रामा, गुण गावो ।[15]

शब्द के कीर्तन द्वारा ही परमात्मा की आध्यात्मिक अनुभूति को जाना जा सकता है । इसीलिये गुरमति संगीत सिक्खी जीवन की व्यवहारिकता का अटूट अंग बन गया है । इसके विकास की गाथा श्री गुरु नानक देव जी से प्रारम्भ होकर दस गुरुओं के जीवन काल तक फैली हुई है । जिसका प्रचलन सिक्ख धर्म के रोजाना जीवन और विशेष अवसरों पर व्यवहारिक प्रयोग में नजर आता है । श्री गुरु नानक देव जी से लेकर दस गुरु साहिबान ने गुरमति संगीत के प्रति जो विशेष योगदान दिया उसका वर्णन निम्नलिखित रुप में किया जा रहा है ।

विभिन्न गुरुओं के काल में गुरमति संगीत इतिहासिक विकास

श्री गुरु नानक देव जी द्वारा स्थापित एवं प्रचलित गुरमति संगीत परम्परा का प्रचलन सिक्ख इतिहास के विभिन्न कालों में व्यवहारिक रुप में मूर्तिमान होता रहा है । इस परम्परा को अलग-अलग गुरु साहिबानों द्वारा वाणी और संगीत का सुमेल करते हुए विभिन्न चरणों में विकसित किया जाता रहा । गुरमति संगीत परम्परा इतनी विकसित एवं दृढ होती रही कि सिक्ख धार्मिक जीवन का अटूट अंग बन गई ।

---

15. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 885

गुरमति संगीत परम्परा के विकास की इस गाथा को दस गुरु साहिबान द्वारा संगीतात्मक रुप से रचा गया । गुरमति संगीत की निर्धारित परम्परा को विकसित करने हेतु गुरु साहिबानों ने राग, गायन रूप, वाद्य, कीर्तन चौकियों के द्वारा विशिष्टिता प्रदान की । गुरमति संगीत की उत्पत्ति एवं विकास में गुरू साहिबान के अमूल्य योगदान से ही यह परम्परा विशिष्ट एवं दृढ हुई है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अलग - अलग गुरु साहिबान की वाणी का सांगीतिक संकलन किया गया है । विभिन्न गुरु साहिबान के काल में निरन्तर उन्नति पथ पर अग्रसर गुरमति संगीत के इतिहासिक विकास को हम इस प्रकार वर्णित कर सकते हैं :

श्री गुरु नानक देव जी के काल में गुरमति संगीत :-

श्री गुरु नानक देव जी सिक्ख धर्म के प्रथम गुरु और गुरमति संगीत के प्रवर्त्तक थे । उनका जन्म 1469 में राये भोए की तलवंडी 'ननकाना साहिब' (पाकिस्तान) में हुआ । उनके जन्म काल में देश में अधर्म, अन्याय और अनैतिकता का अन्धकार व्यापत था । श्री गुरु नानक देव जी ने लोगों को अपने अध्यात्मिक एवं बौद्धिक चिन्तन के द्वारा सही मार्ग पर लाने के लिये सरल और प्रभाविक वाणी का सृजन किया जिसे संगीत के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया गया ।

श्री गुरु नानक देव जी से पूर्व भारतीय संगीत में मार्गी संगीत और देसी संगीत की दो धाराएं प्रचलित थी । ''शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित नियमों का पालन कर ईश्वर

की अराधना के उद्देश्य से जिस संगीत का प्रयोग किया जाता था, उसे 'मार्ग संगीत' कहा जाता था ।''[16]

''शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त समूह संगीत 'देशी संगीत' कहलाता है । भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित संगीत को ही शास्त्रकारों ने 'देशी संगीत- का नाम दिया है ।''[17]

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मार्गी संगीत शास्त्र बद्ध संगीत है जबकि देसी संगीत शास्त्र के नियमों से स्वतन्त्र संगीत है । इन दोनों परम्पराओं से हट कर गुरमति संगीत, गुरु सिद्धान्त (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के वर्तमान स्वरूप और फिलॉसफी पर आधारित) के अनुसार निर्मित, नियोजित और विकसित संगीत परम्परा है जिसका निश्चित संगीत प्रबन्ध और प्रस्तुति विधान है ।[18] इसको प्रारम्भ करने वाले प्रथम गुरु श्री गुरु नानक देव जी ने चार उदासियों के रुप में ''खसम की वाणी'' और ''खालक के आदेश'' को समस्त जहान् के लिये समाज्य रुप में प्रस्तुत किया ।

बाबा देखे ध्यान घर जलती सब पृथ्वी दिस आई।
बाझहु गुरु गुबार है, है है करदी सुणी लुकाई ।
बाबे भेख बनाया उदासी की रीत चलाई
चढ़िया सोधन धरत लोकाई ।।[19]

---

16. बन्धोपाध्याय, श्री पद, *संगीत भाष्य,* पृ० 268.
17. चौधरी, विमलकांत राय, *भारतीय संगीत कोष* पृ० 63.
18. गुरनाम सिंह (डा०) *गुरमति संगीत : विषय वजों पहचान ते सार्थकता,* गुरमति संगीत अंक, जनवरी फरवरी 1997, पृ० 18.
19. *भाई गुरदास की वारां,* वार 1. पाऊडी 38 वीं

अपनी वाणी में उन्होंने शब्द और संगीत का प्रयोग सम्मिलित रुप में किया । श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी के अद्‌भुत प्रस्तुतीकरण के साथ 'रबाब' नामक वाद्य का प्रयोग किया । उन्होंने अपने बाल सखा भाई मरदाना को अपने साथ रखा, जो रबाब बजाया करते थे । भाई मरदाना रबाब वादन में अद्‌भुत क्षमता रखते थे । वह उच्च कोटि के गायक भी थे । श्री गुरु नानक देव जी ने भाई मरदाना के लिये भैरोआणा (कपूरथला) के भाई फिरन्दा से विशेष प्रकार का रबाब बनवाया । गायन के सुमेल में वादन (रबाब) का मिश्रण कर उसे गायन प्रस्तुति के लिये विशिष्टम स्वरुप दिया । जनसाधारण को शब्द प्रस्तुति के सरल एवं प्रभावकारी ढंग से उचित मार्ग दिखाया ।

गुरू साहिब गायन करने से पहले मरदाने को कहते 'मरदानियाँ' रबाब छेड़ वाणी आई है, तब मरदाना रबाब बजाते और गुरु नानक देव जी धुर की वाणी का गायन करते ।[20] श्री गुरु नानक देव जी ने शब्दों की अभिव्यक्ति के लिये संगीत का प्रयोग किया परन्तु शब्द और संगीत भिन्न नहीं लगते अपितु उनका संयुक्त प्रस्तुतिकरण अद्‌भुत एवं विलक्ष्ण प्रभाव डालता है । गुरु साहिब वाणी प्रस्तुति के लिये 31 रागों में अपनी रचना को निबद्ध किया जिनमें आपकी 976 पद रचनाएँ[21] आज भी गायन की

---

20. बाबे कहा मरदानिया राब बजायि । मरदाना रबाबा बजाइया ।।
रााग आसा कीता ।। बाबे शब्द बोलिया ।। राग आसा ।।
जन्म साखी श्री गुरु नानक देव जी (सेवा प्यार सिंह, पृ० 21

21. दर्शन सिंह नरुला (डा०) संगीत, गुरमति संगीत विशेष अंक जनवरी फरवरी 1997 पृ० 36.

जाती हैं । श्री गुरु नानक देव जी ने वाणी रचनाओं को भिन्न-भिन्न रागों के अर्न्तगत अंकित किया । जिन को निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकत है ।

मुख्य राग : श्री, माझ, गऊडी, आसा, गुजरी, देवगंधारी, बिहागडा, बडहंस, सोरठि, धनाश्री, तिलंग, बसन्त, सारंग, मल्हार, प्रभाती ।

मिश्रित राग : गऊडी गुआरेरी, गऊडी चेती, गऊडी बैरागणि, गऊडी दीपकी, गऊडी, पूरबी दीपकी, गऊडी पूरबी, आसा, काफी, सूही काफी, मारु काफी, बसन्त हिन्डोल, प्रभाती विभास ।

दखनी राग : गऊडी दखनी, बडहंस, दखनी, बिलाबल दखनी, रामकली दखनी, मारु दखनी, प्रभाती दखनी ।

रागों के उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रयुक्त किये गये कुछ राग शास्त्रबद्धता एवं प्राचीनता के धारणी है जबकि कुछ राग देसी संगीत की धुनों से विकसित हुए हैं । और कुछ राग गुरु नानक देव जी की मौलिक सृज्न प्रक्रिया के धारणी हैं । प्रचलित रागों के साथ-साथ अप्रचलित रागों की सृज्ना से श्री गुरु नानक देव जी की सूक्ष्म सोच एवं गहन चिन्तन को जाना जा सकता है । राग सोरठि में आप फरमाते हैं :

> सोरठि सदा सोहवणी जे सच्चा मन होये ।।
> दन्दीमेल ना करु मन जीभे सच्चा सोये ।।[22]

---

22. *आदि ग्रन्थ,* सोरठि महला 1. पृ० 642

राग रामकली श्री गुरु नानक देव जी द्वारा प्रयुक्त किया गया नवीनतम राग है । श्री गुरु नानक देव जी ने इस राग के अधीन रचित वाणी के अर्न्तगत जोग सिद्धान्त के साथ सम्बन्धित भावों, बिम्बों और प्रतीकों का इस्तेमाल भी उन की भाषा और शब्दावली द्वारा ही किया ।[23]

उक्त रागों के अधीन गुरु साहिब ने पदे, अष्टपदी, छंत, वार एवं गायन शैलियों का प्रयोग किया । उनकी वाणी के समूह पद ध्रुपद गायन शैली पर आधारित हैं।

''समूह पदे ध्रुपद गायन शैली पर आधारित है ।''[24]

लोक गायन शैलियों के अर्न्तगत आपने अलाहुणियां सोलहे व पहरे रचनाओं की रचना की । गुरमति संगीत के विकास के लिये आपने करतारपुर साहिब (पाकिस्तान) कीर्तन केन्द्र की स्थापना की । इस सम्बन्ध में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कथन है :

करतारपुर करता वसे सन्तन के पास ।[25]

श्री गुरु अंगद देव जी

श्री गुरु नानक देव जी के उत्तराधिकारी, श्री गुरू अंगद देव जी सिक्खों के दूसरे गुरु द्वारा चलाई गई गुरमति संगीत परम्परा का अपने समयकाल में व्यवहारिक रुप में प्रचलन किया । गुरु गद्दी धारण करने से पूर्व आपका नाम भाई 'लहिणा'' था । इनका जन्म 31 मार्च 1504 ई. में गाँव मत्ते की सरां (जिला फरीदकोट) में हुआ ।

---

23. अमृत पाल कौर (डा.) *गुरबाणी संचार विज्ञान,* पृ० 180
24. योगेन्द्र पाल शर्मा, बच्चितर सिंह (डा०) *भारती संगीत दा इतिहास* पृ० 193
25. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* बिलाबल महला 5, पृ० 816

इनके पिता का नाम भाई फेरु था । इनका विवाह 15 वर्ष की आयु में रवी नामक लड़की से हुआ । श्री गुरु अंगददेव जी बचपन से धार्मिक प्रवृति के थे और देवी की भक्ति करते थे । श्री गुरु नानक देव जी के दर्शन करने के पश्चात् वह उनके शिष्य बन गये। श्री गुरू नानक देव जी उनके भक्ति भाव और सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें 'अंगद' कहा करते थे । 1538 ई० में उन्होंने सिक्खों के दूसरे गुरु के रूप में गद्दी संभाली और 'गुरू अंगद' के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

श्री गुरु अंगददेव जी ने सिक्ख धर्म की परम्परा का अनुसरण करते हुए वाणी में संगीत का प्रयोग करते हुए गुरमति संगीत की रचना की । श्री गुरु अंगददेव जी के वाणी गायन में भाई मरदाना के पुत्र भाई सजादा[26] रबाब बजाते थे । भाई सजादा के अतिरिक्त भाई सादू, भाई बादू[27] भाई रजादा, भाई सत्ता और बलबंड थे ।

श्री गुरु अंगददेव जी ने अपनी वाणी में विभिन्न रागों का प्रयोग किया । उनके द्वारा प्रयुक्त किये राग निम्न प्रकार से है : श्री, माझ, आसा, सोरठि, सूही, रामकली, मारु, सारंग, मल्हार । श्री गुरु अंगद देव जी की वाणी श्लोक रुप में आदि ग्रन्थ में उपलब्ध है । इन श्लोकों को उन्होंने विभिन्न रागों के अर्न्तगत रखा है । बसंत राग सम्बन्धी आप के विचार हैं :-

---

26. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ० 144

27. ज्ञानी ज्ञान सिंह, *तवारीख गुरु खालसा,* पृ० 294

पहल बसन्त आगमन तिस का करहु बीचार ।।
नानक सो सालाहीए जि सबसे दे आधार ।।[28]

आपने श्री गुरु नानक देव जी द्वारा चलाई गई गुरमति संगीत परम्परा को पूर्ण निष्ठा और समर्पित भाव से प्रचारित करते हुए खडूर साहिब में दूसरे कीर्तन केन्द्र की स्थापना की । जिसके सम्बन्ध में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज है :-

फेरि वसाया फेरु आणि सतिगुरि खाडरु ।[29]

इस विषय में भाई गुरदास जी का कथन है :

गुरु नानक हंदी मोहर हथ
गुर अंगद दी दोही फिराई ।
दित्ता छड करतार पुरि
बैठ खडूरे जी जाति जगाई ।।[30]

श्री गुरु अमरदास

सिक्खों के तृतीय गुरु श्री गुरु अमरदास जी ने गुरु परम्परा को आगे ले जाते हुए सेवा तथा सिमरण की अथाह निष्ठा से इसको प्रचारित किया । उनका जन्म 4 मई 1479 ई० में बासरके नामक गाँव में हुआ । उनके पिता का नाम तेजभान था । श्री गुरु अमरदास जी ने अपने आरम्भिक जीवन में अनेक धार्मिक कार्य व तीर्थ यात्राएं की और सच्चे गुरु की खोज करते रहे । श्री गुरु नानक देव जी की वाणी को बीबी

28. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोक महला 2, पृ० 791
29. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ. 911
30. *भाई गुरदास की वारां,* वार 1., पाऊडी 16.

अमरो जो श्री गुरु अंगददेव जी की सपुत्री थी, से सुन कर वह अत्यन्त प्रभावित हुए, और श्री गुरु अंगददेव जी के दर्शन हेतू खडूर साहिब गये । यहां वह उनके शिष्य बन गये और उनकी सेवा करते रहें । श्री गुरु अंगददेव जी ने उनकी निष्काम सेवा से प्रभावित होकर 1553 ई० में उन्हें गुरु गद्दी पर बिठाया ।

श्री गुरु अंगद देव जी ने सिक्ख परम्परा का निर्वाह किया । उन्होंने वाणी में संगीत का सुमेल करते हुए गुरमति संगीत को विलक्षणता प्रदान की । कानूने मौसीकी नामक पुस्तक में पृ० 306 पर उल्लेखित है कि श्री गुरु अमरदास जी ने 'सारंदा' नामक नवीन वाद्य की रचना की ।[31]

''सारन्दा सारंगी के प्रकार का ही एक वाद्य है ।''[32]

श्री गुरु अमरदास जी के साथ भाई सत्ता और बलबंड वादक और कीर्तनकार के रुप में कीर्तन करते थे । उनके अतिरिक्त भाई पांधा और बूला रबाबी कीर्तनकार थे ।

पांधा बुला जानीए, गुरबाणी गायन लेखारी
डल्ले वासी संगति भारी ।।[33]

श्री गुरु अमरदास जी ने भिन्न-भिन्न रागों में वाणी की रचना की । जिनमें श्री, माझ, गाऊडी गुआरेरी, गऊडी, बैरागणि, गऊडी पूर्वी, आसा, आसा काफी, गूजरी,

---

31. तारासिंह (प्रो.) भूमिका, *श्री गुरु अमरदास, राग रत्नावली ।*

32. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ० 142

33. *भाई गुरदास की वारां,* वार 11, पाऊडी 16.

बडहस, सोरठि, धनाश्री, सूही, बिलाबल, रामकली, मारु, भैरव, बसंत, बसंत हिंडोल, सारंग, मल्हार प्रभाती विभास राग आते हैं । रागों के विषय में उनका कथन है :-

सिरी :

रागा विच श्री राग है जे सचि धरे प्यार ।।
सदा हरि सच मनि वसे निहचल मति अपारु ।[34]

बडहंस

शब्द रते बडहंस है सच नाम उरधारिया
सच संग्रहहि सद सच रहहि सचै नामि प्यार ।[35]

बिलाबल

बिलाबल तब ही कीजीए जब मुखि होवे नाम ।।
राग नाद शब्द सोहणे जा लागे सहज ध्यान ।।[36]

गऊडी

गऊडी रागि सुलखणी जे खसमे चिति करे ।।
भाणे चले सतगुरु के ऐसा सीगार करे ।।[37]

श्री गुरु अमरदास जी ने अपनी वाणी में मौसमों के चित्रण के लिये उपयुक्त रागों का प्रयोग विशेष रुप से किया ।

उन्होंने सूही राग का प्रयोग श्रृंगार रस की वाणी के लिये किया ।

---

34. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोक महला 3. पृ० 83,
35. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोक महला 3., पृ० 585
36. वही, सलोक महला 3, पृ० 849
37. वही, सलोक महला 3, पृ० 311

बसंत और मल्हार रागों का प्रयोग विभिन्न ऋतु सम्बन्धी वाणी के चित्रण के लिये किया ।

उनकी वाणी के अध्ययन से यह प्रत्यक्ष होता है कि वह वाणी और संगीत के सुमेल को प्रभावशाली एवं विलक्षण बनाने में प्रवीण थे । उन्होंने अपनी वाणी की रचना विभिन्न गायन शैलियों में की । जिनमें पद, अष्टपद, छंद, वार, सोलहे आते हैं । राग रामकली में 'आनन्द साहिब' उनकी प्रसिद्ध रचना है । गुरमति संगीत में आनन्द साहिब नितनेम की वाणियों में से एक है । सिक्खी जीवन के विभिन्न कर्मो के समापन पर इसका गायन आज की भी किया जाता है ।

गुरमति संगीत का प्रचार करने हेतु श्री गुरु अमरदास जी ने 'मंजी प्रथा' आरम्भ की । मंजी स्थापना का उद्देश्य श्री गुरु नानक देव जी के भाव और संगीतिक उपदेशों से ओत प्रोत वाणी को प्रचारित करने के लिये उच्च विचारधारा वाले सेवको की नियुक्ति करना था । उन्होंनें गुरमति और संगीत के बाईस विद्वान उपदेशकों के द्वारा पंजाब में अलग - अलग स्थानों पर बाईस मंजियों की स्थापना की । उन्होंनें गुरबाणी के तीसरे केन्द्र की स्थापना 'गोइंदवाल साहिब' में की । जिसके सम्बन्ध में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भी उल्लेखित है

> गोबिंद वालु गोबिंद पुरी सम, जलहम तीरि विपस बनायऊ ।
> गयऊ दुखु द्रि बरखन को सु, गुरु मुख देखि गुरु सुखु पायऊ ।।[38]

---

38. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सवैये महला 4. पृ० 1400

श्री गुरु रामदास जी के काल में गुरमति संगीत : श्री गुरु रामदास जी ने गुरमति संगीतिक गायन परम्परा को न केवल कायम रखा अपतु उसमें नई सम्भावनाओं को उजागर किया । श्री गुरु रामदास जी सिक्ख गुरु परम्परा में चतुर्थ गुरु थे । उनका जन्म 1534 ई० में चूना मंडी लाहौर में हुआ । आपके पिता का नाम श्री हरिदास जी था । वह बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृति रखते थे । आप जी के बचपन का नाम 'जेठा' था । वह अपने सिक्ख साथियों के साथ गोइंदवाल साहिब में श्री गुरु अमरदास जी के दर्शन हेतु गये और गुरु साहिब की सेवा के लिये वहीं रह गये । श्री गुरु अमरदास जी ने उनकी श्रद्धा और आचरण से प्रभावित होकर अपनी सुपुत्री बीबी भानी जी का विवाह उनके साथ कर दिया । श्री गुरु अमरदास जी ने अपने उपरान्त श्री गुरु रामदास जी को गद्दी पर बिठाया । उस समय तक सिक्ख श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ गई थी । श्री गुरु रामदास जी के दरबार में दीवान सजाये जाते थे जिनमें गुरुओं की वाणी का गायन किया जाता था । उनके दरबार में भाई सत्ता और बलबंड प्रसिद्ध रबाब वादक कीर्तनकार थे ।

श्री गुरु रामदास जी ने निम्न रागों में अपनी वाणी दर्ज की - श्री, माझ, गऊड़ी, गऊड़ी गुआरेरी, गऊड़ी बैरागणी, गाऊड़ी पूर्वी, गऊड़ी माझ, आसा, आसा काफी, आसावरी, गूजरी, देवगांधारी, बिहागडा, वडहंस, सोरठि, धनाश्री, जैत श्री, टोड़ी, बैराड़ी, तिलंग, स्ही, बिलाबल, रामकली, नट्नारायण, नट, गौडम ल्हार, मारु, दरबारी, केदार,

भैरऊ, बसंत, सारंग, मल्हार, कान्हडा, कलियान, कलियान भूपाली, प्रभाती, प्रभाती विभास । श्री गुरु रामदास जी के द्वारा प्रयुक्त रागों के विषय में आदि ग्रन्थ में कथन निम्न प्रकार से उल्लेखित है :

बिलाबल

- हरि उत्तम हरि प्रभु गाविया करि नादु बिलाबल राग ।।
  उपदेस गुरु सुनि मन्निया धुर मसतकि पुरा भाग ।।[39]

सोरठि

- सारेठि तामि सुहावणी या हरिनाम ढन्ढोले ।।
  गुरु पुरखु मनावे आपना गुरमति हरि हरि बोले ।।[40]

श्री गुरु रामदास जी ने अपनी वाणी की रचना शास्त्रीय संगीत की शैलियों पर आधारित पद और अष्टपदों में करने के साथ-साथ लोक काव्य रूप, घोड़ियाँ, छंद व वार का भी प्रयोग किया । आप जी ने वाणी की रचना सनातनी और लोक काव्य रुप में की है । लोक काव्य रुप के अधीन उन्होंने छंदो की रचना की । जिनको बाद में आसा की वार में गाया जाने लगा ।

श्री गुरु रामदास जी ने शास्त्रीय गायन शैली पर आधारित नवीन एवं मौलिक 'पड़ताल' शैली का निर्माण किया । यह शैली ताल पर आधारित है । ''गुरबाणी संगीत

---

39 *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* महला 4, पृ० 849

40. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* महला 4, पृ० 642

के अर्न्तगत पड़ताल को पद रचना होने के कारण ध्रुपद अंग से गाये जाने की रीत है ।''[41] भारतीय शास्त्रीय संगीत में पड़ताल गायन शैली प्रचार में नहीं है । श्री गुरु रामदास जी द्वारा रचित पड़ताल राग सारंग में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अंकित है :

जपि मन जगन्नाथ जगदीसरो .....[42]

श्री गुरु रामदास जी ने सात विभिन्न रागों में उन्नीस पड़तालों की रचना की । आप जी की वाणी में नटनारायण, नट, सारंग, मल्लार, कानडा, जैसे रागों में पड़ताल गायन शैली का काव्य रुप श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज है । पड़ताल गायन शैली में शब्द की स्थाई की तुक में एक किसी ताल प्रयुक्त होता है और अन्तरों में अलग-अलग ताल प्रयुक्त किये जाते हैं परन्तु राग एक ही रहता है । श्री गुरु रामदास जी द्वारा रचित पड़ताल शैली निश्चित रुप से गुरमति संगीत के साथ-साथ भारतीय संगीत में भी विलक्षण एवं अद्‌भुत है ।

आप जी ने गुरमति संगीत के प्रचार हेतु रामदास जी पुरा या चक गुरु की नींव रखी । जिसे बाद में अमृतसर कहा जाने लगा । इस सम्बन्ध में आदि ग्रन्थ में कथन है :

बैठा सोडी पातिसाहु, रामदास सतिगुरु कहावै ।
पूरन ताल खटाया । अमृतसर विचि जोति जगावै ।[43]

---

41. अमृतपाल कौर (डा०) *गुरबाणी अध्ययन : नव परिपेरव* पृ० 104
42. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* महला 4, पृ० 1200
43. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोम महला 4, पृ० 9824

इस कीर्तन केन्द्र को 'हरिमन्दिर साहिब' और दरबार साहिब भी कहा जाता है । दरबार साहिब में ही कीर्तन चौंकी परम्परा का आरम्भ हुआ । ''यहाँ निरन्तर कीर्तन होता है और कीर्तन चौंकीया 'आसा की वार' की चौंकी के उपरान्त 'बिलाबल की चौंकी' उपरान्त 'चरन कंवल की चौंकी' फिर 'सोदर की चौंकी' अन्तिम चौंकी' रात को 'कीर्तन सोहले की चौंकी' सजती है ।[44] इसमें चार सिक्ख सामूहिक रुप में कीर्तन करते हैं । यह प्रथा दरबार साहिब में आज भी निरन्तर कायम है ।

गुरु अर्जुन देव जी के काल में गुरमति संगीत :

गुरमति संगीत परम्परा को व्यवाहरिक रुप में विकसित एवं स्थापित करने वाले सिक्खों के पाँचवे गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी थे जिनका गुरमति संगीत में विशिष्ट योगदान है । आपने अपने से पूर्व चार गुरु साहिबान की वाणी तथा भक्तों की वाणी का भिन्न-भिन्न रागों के अर्न्तगत संकलन किया । वर्तमान समय में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का संपादन श्री गुरु अर्जुन देव जी की महान् देन है । उनका जन्म 15 अप्रैल 1563 ई० को गोइन्दवाल में हुआ । वह श्री गुरु रामदास जी के सुपुत्र थे । बचपन से ही वह प्रतिभावान और गंभीर विचारों के थे । कविता से उन्हें बेहद लगाव था । आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर श्री गुरु रामदास जी ने उन्हें 1581 ई० में गुरु गद्दी पर बिठाया । श्री गुरु अर्जुन देव जी ने अपने पूर्व गुरुओं की वाणी और परम्परा का गहन

---

44. सन्त सरवण सिंह 'गन्धर्व', *'सुर सिमरण संगीत'* (भाग-5) पृ० 53

अध्ययन किया । उन्होंने कीर्तन शैली को नई दिशा प्रदान की । आप के काल में सारन्दा के साथ तबला (जोड़ी) का प्रयोग आरम्भ हो गया । श्री गुरु अर्जुन देव जी के काल में सत्ता और बलवंड रबाब कीर्तनकार थे । उनके इलावा भाई किदारा, भाई झाझू, भाई मुकंद भी आप के दरबार में प्रसिद्ध रबाबी कीर्तनकार थे ।

झाझू अते मुकंद है कीर्तन कर हजूर किदारा ।।[45]

किसी कारणवश सत्ता और बलवंड ने कीर्तन करने से इन्कार कर दिया । जिससे गुरु साहिब ने साधारण सिक्ख संगत को कीर्तन करने का आदेश दिया । आप जी ने स्वयं भी कीर्तन किया जिससे साधारण संगत में भी कीर्तन के प्रति लगाव उत्पन्न हुआ । जन साधारण ने भी शब्द कीर्तन का गायन आरम्भ कर दिया । ''इस तरह गुरु अर्जुन देव जी के समय गुरबाणी कीर्त्तन में क्रियात्मक तौर पर रागी, रबाबी, कसबी लोग यानि शिक्षित लोग और अशिक्षित साधारण सिक्ख संगत का दो वर्गो में प्रवेश हुआ । गुरबाणी कीर्त्तन की (शास्त्रीय+ लोक संगीत) दोनों परम्पराएं उस समय से लेकर अब तक उसी तरह चली आ रही है ।''[46]

श्री गुरु अर्जुन देव जी ने श्री, माझ, गऊडी, गुआरेरी, गऊडी, गऊडी चेती, गऊडी बैरागणि, गऊडी पूर्वी, गऊडी माझ, गऊडी मालवा, गऊडी माला, आसा, आसा काफी, आसावरी, गूजरी, देवगंधारी, देवगंधार, बिहागडा, सोरठि, वडहंस, धनाश्री,

---

45. *भाई गुरदास की वारां,* वार 11, पऊडी 18.

46. गुरनाम सिंह (डा०), *संगीत, गुरमति संगीत अंक,* जनवरी फरवरी 1997 पृ० 54.

जैतश्री, टोड़ी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलाबल, गौड, रामकली, नट्नारायण, नट, मालीगऊडा, मारु, दरबारी, तुखारी, केदारा, भैरव, बसंत, सारंग, मल्हार, कान्हडा, कल्याण, प्रभाती, प्रभाती विभास रागों में अपनी वाणी की रचना की । गुरु साहिब द्वारा रागों सम्बन्धी उच्चारित किये श्लोक निम्न प्रकार से है :

राग सोरठि :

- सोरठि सो रस पीजीए कबहु ना फीका होइ ।।
  नानक राम नाम गुन गाईअहि दरगह निरमल सोई ।।[47]

राग मारु :

- गुरु के शब्द अराधिए नाम रंग बैराग ।।
  जीते पंच बैराइए नानक सफल मारु इह राग ।।[48]

आप जी ने सभी गुरु साहिबान से अधिक वाणी की रचना की । जो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त आप जी ने सबसे अधिक राग और गायन शैलियों के अर्न्तगत अपनी वाणी की रचना की । आपने अपनी वाणी को छंद, वार, पद, अष्टपद, सोलहे और अंजुली गायन रुपों में गाया । आपके द्वारा रचित सुखमणि तथा बारहमास विशेष वाणी रचनाएं हैं । श्री गुरु रामदास जी द्वारा आरम्भ की गई गायन शैली पड़ताल गायकी को आपने प्रचारित किया । आप द्वारा रचित छत्तीस पड़ताले विभिन्न रागों में प्रचलित हैं । मलार राग में आप द्वारा रचित पड़ताल आदि ग्रन्थ में दर्ज है जो निम्न प्रकार से है :

---

47. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोक महला 4, पृ० 1425

48. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सलोक महला 4, पृ० 1425

गुन गोपाल गाओ नीत - - - - [49]

गुरमति संगीत के संस्थागत प्रचलन के लिये आपने तरनतारन साहिब की स्थापना की और श्री हरिमंदर साहिब अमृतसर को पूर्ण किया ।

श्री गुरु हरगोबिन्द जी के काल में गुरमति संगीत : यह काल सिक्ख इतिहास में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन का काल है । श्री गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी एवं राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने के कारण श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब ने सिक्ख धर्म में नवीन जागृति की संचार किया । आप श्री गुरु अर्जुन देव जी के सुपुत्र थे । अपने पिता के शहीद हो जाने के पश्चात् यह गुरु गद्दी पर बैठे । समकालीन मुगल अत्याचारों का विरोध करने के लिये आपने दो तलवारें धारण कीं । इनमें से एक मीरी तथा दूसरी पीरी की थी । जो भक्ति और शक्ति का संयुक्त प्रतीक थीं ।

श्री गुरु नानकदेव जी से आरम्भ हुई गुरमति संगीत परम्परा को श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब ने कायम रखा । आपके बारे में कहा जाता है कि आपने 'श्री ग्रंथ साहिब' में अंकित नौ वारों पर धुनों के शीर्षक लिखे ।[50] आपके आदेश द्वारा सिक्खों या रागियों को योद्धाओं की वारें गाने का हुक्म हुआ । योद्धाओं की वारें साथ गाने वालों का नाम ढाडी गायक या ढाड़ी जत्था प्रचलित हुआ ।[51] इस तरह कीर्तन परम्परा के साथ ढाड़ी परम्परा गुरु दरबार में प्रचलित हुई । भाई नत्था और भाई अब्दुला आपके

---

49. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* महला 5. पृ० 9292

50. भाई जोध सिंह, *'श्री करतारपुर बीड के दर्शन,* पृ० 72.

51. सन्त सरवण सिंह 'गन्धर्व', *सुर सिमरण संगीत,* (भाग - 5) पृ० 54.

समय में प्रसिद्ध ढाड़ी थे ।[52] इसके इलावा बाबा दीप और भाई बाबक कीर्तनकार होने साथ ही महान् योद्धा भी थे । आप जी के काल में वाणी में वारों का गायन करने के लिये उसमें वीर रस प्रदान करने के लिये सारंगी वाद्य का प्रवेश हुआ । आपको ताऊस वाद्य का निर्माता माना जाता है ।[53] श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब जी ने गुरबाणी को प्रचारित करने के लिये 'कीरतपुर साहिब' की स्थापना की ।

श्री गुरु हरिराये जी, श्री गुरु हरकिशन जी के काल में गुरमति संगीत :

श्री गुरु हरिराये जी और श्री गुरु हरकिशन जी के समय परिस्थिति अनुकूल न होने पर वह वाणी की रचना नहीं कर सके । परन्तु उन्होंनें पूर्व गुरु साहिबान के द्वारा चलाई गई कीर्तन परम्परा को कायम रखा ।

श्री गुरु तेग बहादुर जी के काल में गुरमति संगीत : गुरमति संगीत के विकास हेतु अपना विशष्टि योगदान देने वाले श्री गुरु तेग बहादुर जी सिक्खों के नवम् गुरु थे । आप श्री हरगोबिन्द जी के सुपुत्र थे । आपकी वाणी काव्यात्मक भिन्नता और संगीतात्मक नवीनता लिये थी । आपजी की वाणी में नाशवानता और राम नाम के विचार मिलते हैं । श्री गुरु तेग बहादुर जी ने जिन रागों में अपनी वाणी की रचना की वह निम्न प्रकार से है : गऊड़ी, आसा, देवगांधार, बिहागडा, सोरठि, धनासिरी, जैतसिरी, तिलंग, काफ़ी तिलंग, बिलाबल, रामकली, मारु, बसंत, बसंत हिन्डोल, सारंग

---

52. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष* पृ० 69.
53. *स्मृति ग्रन्थ,* अदूति गुरमति संगीत सम्मेलन 1991 पृ० 89.

और जयजयवन्ती । जजयवन्ती में केवल श्री गुरु तेग बहादुर जी की ही रचना श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में मिलती है ।

आप जी ने अपनी वाणी को पद और अष्पद गायन रुपों में उच्चारित किया । आप जी ने आनंदपुर साहिब के अपना कीर्तन स्थल बनाया । ''सतलुज के किनारे पहाड़ी राजाओं से जमीन खरीद कर आन्नदपुर नगर बसाया जो खालसे का वासी है ।''[54]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के काल में गुरमति संगीत : गुरमति संगीत की विशिष्ट परम्परा को अपनी वाणी और संगीत के द्वारा विकसित करने वाले श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी सिक्ख परम्परा के दशम एवं अन्तिम गुरु थे । उनका जन्म 26 दिसम्बर 1666 ई० में पटना में हुआ । आप जी के पिता श्री गुरु तेग बहादुर और माता गुजरी थीं । बचपन में आपका पालन-पोषण उनके मामा कृपाल के द्वारा हुआ । पटने में छह वर्षो तक रहने के पश्चात् वह आनंदपुर आ गये । वहाँ आप जी की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया । 1675 ई० में आपजी ने गद्दी संभाली । आपजी की वाणी का संकलन 'दशम ग्रन्थ' में है जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब के बाद सिक्ख धर्म में दूसरा विस्तृत धार्मिक ग्रंथ है। परन्तु इसकी प्रमाणिकता संदेहपूर्वक है । आपने दरबार में 52 कवि रखे हुए थे। आपजी के दरबार में भाई मदू और सदू रबाबी कीर्तनकार थे जो कि 'आसा की वार' का गायन करते थे । उनके बारे में भाई संतोख सिंह जी का कथन निम्न प्रकार से है :

---

54. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष*, पृ० 600

- सदु मददु आसा वार कीरतन करते राग सुधार ।।[55]
- सदु मद्दु दो नहु भ्राता ।। गावे राग सुरने के ज्ञाता ।।
  करी बिलाबल चौकी चार । भोग पाई अरदास उचार ।।[56]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के काल में वाणी गायन के साथ तानपूरे का प्रयोग किया जाता था । ''आपने गुरमति संगीत परम्परा में पूर्व प्रचलित रबाब, ताऊस, सारन्दा आदि वाद्यों के साथ तानपूरे का भी प्रचलन किया ।''[57]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपनी वाणी रचना रामकली, सोरठि, कल्याण, तिलंग, काफ़ी, बिलाबल, देवगांधारी रागों के अर्न्तगत की ।

-रामकली - रे मन ऐसो करि सन्यासा ।।
वनसे सदन सभे करि समझहु मन ही माहि उदासा ।।[58]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपनी वाणी की रचना पद, पड़ताल और ख्याल गायन रुपों में की । आपजी की प्रसिद्ध ख्याल रचना ''मित्तर प्यारे नू हाल मूरीदां दा कहना ।[59]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के कीर्तन केन्द्र मुक्तसर, गुरु काशी (दमदमा साहिब) थे ।

---

55. भाई सन्तोख सिंह, *गुरप्रताप सूरज ग्रन्थ,* पृ० 577
56. वही
57. *स्मृति ग्रन्थ,* अदूति गुरमति संगीत सम्मेलन, 1991, पृ० 42.
58. *दशम ग्रन्थ,* शब्द हजारे, पृ० 709
59. *दशम ग्रन्थ* पृ०

गुरमति संगीत की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करते हुए इस अध्याय में हमारे सम्मुख यह तथ्य प्रकट हुआ है कि गुरमति संगीत की उत्पत्ति सिक्ख धर्म के प्रारम्भ से ही हो गई थी। सिक्ख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरू नानक देव जी ने शब्द के द्वारा शब्द भाव वाणी द्वारा समस्त जनमानस को अपना संदेश दिया और इस वाणी की पेशकारी कीर्तन के द्वारा की गई। इस कीर्तन का आधार संगीत की एक विलक्ष्ण परम्परा थी जो गुरू साहिब द्वारा सथापित किये गये सिद्धान्तों और स्वरूप के अनुसार थी। यही परम्परा बाद में भिन्न भिन्न गुरू साहिबान की निगरानी और सर्वपरस्ती में विकसित होते हुए हम तक पहुँची है। गुरमति संगीत व्यवहारिक तौर पर एक विशाल परम्परा की तरह प्रगति कर रही है। जिस में कीर्तन एक विशाल संगीतिक सामग्री गायन वादन के रूप में प्रचलित है जो अन्य अन्य भारतीय संगीत परम्पराओं की तुलना में गुरमति संगीत को अलग पहचान योग्य स्थान दिला रही है। गुरमति संगीत को प्रयुक्त भिन्न भिन्न वाद्यों की परम्परा भी गुरमति संगीत की विलक्ष्णता है जो कि गुरू नानक देव जी से लेकर वर्तमान समय तक निर्धारित रूप में विकसित होती रही है। इन वाद्यों के प्रयोग और प्रचलन से गुरमति संगीत के विकास और स्वरूप पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस से पहले कि हम गुरमति संगीत के इन वाद्यों के विषय में अध्ययन करें गुरमति संगीत के प्रबन्ध के विषय में जान लेना आवश्यक है।

तृतीय अध्याय

गुरमति संगीत प्रबन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।

3.1 गुरमति संगीत प्रबन्ध : एक सिद्धान्तिक परिचय ।

3.2 श्री गुरु ग्रंथ साहिब : गुरमति संगीत के मूल स्त्रोत्र ।

3.3 वाणी व संगीत : आन्तरिक सम्बन्ध ।

3.4 गुरमति संगीत के गायन रूप ।

3.5 गुरमति संगीत में राग, रहाऊ, अंक, घरु, जाति ।

3.6 गुरमति संगीत में शब्द कीर्तन ।

3.7 कीर्तन चौंकी परम्परा ।

3.8 गुरमति संगीत प्रबन्ध के प्रमुख लक्ष्ण ।

गुरमति संगीत सिक्ख गुरुओं द्वारा स्थापित एवं प्रचलित संगीत परम्परा है । जिसके अर्न्तगत गुरु वाणी के उपदेश को सर्मूत किया जाता है ।

गुरु साहिबान द्वारा रचित वाणी के काव्य व संगीत के सम्मलित रुप को 'शब्द' कहा जाता है । वाणी और शब्द एक ही तत्त्व के दो विभिन्न नाम है । सिक्ख धर्म में परमात्मा के शाब्दिक स्वरुप को शब्द कहा जाता है । गुरु साहिबान ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को शब्दों के द्वारा व्यक्त किया है । उन शब्दों को जनसाधारण तक सरलता से पहुँचाने के लिये संगीत को माध्यम बनाया गया । इस प्रकार शब्द रुपी वाणी को जब संगीत के द्वारा प्रस्तुत/पेश किया जाता है तो उसे 'शब्द कीर्तन' कहते हैं । शब्द कीर्तन की प्रस्तुति को वैज्ञानिक आधार पर रचा गया है । इस वैज्ञानिक आधार का मन्तव शब्द के विभिन्न सौंदर्यात्मक मूल्यों के द्वारा जनसाधारण की आध्यात्मिक सृजनता को क्रियान्वित करना है । ''शब्द गुरबाणी की प्रथम और प्रमुख शक्ति है । ''[1]

गुरु साहिबान द्वारा बताये गये सत्य के मार्ग पर चलते हुए अन्य मर्यादाओं की तरह गुरमति अनुसार शब्द कीर्तन आवश्यक है । शब्द कीर्तन की मर्यादा के इतिहासिक विकास का व्यवहारिक प्रचलन वर्तमान समय एक विशेष प्रबन्ध का रुप धारण कर

---

1. "Sabda is a primary and central unit of Gurbani. The entire process of the presentation of 'Sabda' is Gurbani will help in understanding the musical system of this Bani. It comes out from the poetic/singing style of Bani. The tonal form of Raga is the means of presenting the feeling and sentiment of the 'Sabda, " this form of Raga is prescribed on the basis of its poetry/ singing."

* Gurnam Singh (Dr.), *Sangeet prabandh of Gurbani. Aduttor Gurmat Sangeet Sammelan,* Oct., 1991, Page - 46

चुका है । जोकि अपनी विशिष्टताओं के कारण संस्थागत स्तर पर प्रयोग एवं प्रसार की दृष्टि से विशिष्ट विधान के रुप में दृष्टिमान होता है । गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्यों का संगीतिक अध्ययन करने से पूर्व आवश्यक है कि गुरमति संगीत विधान के सिद्धान्तिक आधार को विशलेषित किया जाये ।

गुरमति संगीत के प्रबन्ध की केन्द्रीय इकाई 'शब्द' है । शब्द वाणी रुप में श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब सिक्ख धर्म का आधार ग्रंथ है । यह ग्रंथ केवल सिक्ख धर्म के लिये नहीं बल्कि भारतीय आध्यात्मिक संगीत परम्परा में पाँच सदियों के महान् साधकों के ज्ञान व आध्यात्मिक बोध की दृष्टि से समस्त मानव जाति के लिये महत्त्वपूर्ण है। जिसमें सभी धर्मो, जातियों व क्षेत्रों के महापुरुषों के आध्यात्मिक चिन्तन वाणी रुप में अंकित है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब मूल रुप में उपलब्ध है । इस ग्रंथ को सिक्ख धर्म के अन्तिम गुरु श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के पश्चात् गुरु का दर्जा दिया गया है । 'वर्तमान समय में गुरु ग्रंथ ही सिक्खों के शब्द गुरु है। ।''[2] वाणी गुरु- -

श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी को संपादित करने का श्रेय सिक्खों के पांचवे गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी को जाता है । आपजी ने सम्वत: 1660 में, रामसर के किनारे, (अमृतसर) भाई गुरदास जी से लिखवाना आरम्भ किया और सम्वत: 1661 ई० में सम्पूर्ण हुआ ।[2] अन्य मान्यता के अनुसार श्री गुरु ग्रंथ के संकलन का कार्य 1604 ई० में सम्पूर्ण हुआ ।[4] श्री गुरु अर्जुन देव जी ने अपने से पूर्व गुरु साहिबान श्री गुरु नानक

---

2. गुरनाम सिंह (डा०), संगीत, *गुरमति संगीत विशेषांक,* जनवरी फरवरी 1997 पृ० 22
3. भाई काहन सिंह नाभा, महान कोष
4. गुरनाम सिंह (डा.), संगीत, *गुरमति संगीत विशेषाँक,* पृ. 22

देव जी, श्री गुरु अंगद देव जी, श्री गुरु अमरदास जी और श्री गुरु रामदास जी द्वारा रचित वाणी और अपनी वाणी को भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित किया । दशम गुरु श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने गुरु तेग बहादुर जी की वाणी को इस में दर्ज किया और श्री गुरु ग्रंथ साहिब को 1708 ई० में गुरु का दर्जा दिया । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विभिन्न भक्तों, कवियों की वाणी को भी संकलित किया गया । यह भक्त कवि विभिन्न इलाकों और सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते थे । इन सभी महापुरुषों की वाणी को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित करके श्री गुरु अर्जुन देव जी ने इस ग्रन्थ को सभी धर्मो के लिये पूजनीय बना दिया । इसलिये श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को एक धर्म निरपेक्ष ग्रन्थ माना जाता है । जिन भक्त कवियों की वाणी को संकिलत किया गया उनके नाम निम्नलिखित प्रकार से है :

कबीर, श्री जयदेव (बंगाल), भक्त नामदेव (महाराष्ट्र), शेख फरीद (गाँव कोठीवाल, ज़िला मुलतान) त्रिलोचण (महाराष्ट्र), स्वामी रामानन्द, बेणी, सधना (सिंध इलाके का नगर सेहवान), सैण, पीपा, धन्ना (राजस्थान), भीखन (लखनऊ के पास नगर काकोरी), रविदास (काशी), परमानन्द, सूरदास, सुन्दर ।

इसके इलावा भट्टों की वाणी को भी संकलित किया गया 'जिन्हें भट्टों के सिवाये कहा जाता है । सूर्य प्रकाश में इन्हें वेदों का अवतार लिखा गया है ।[5] इन

---

5. भाई काहन सिंह नाभा, (भाई) *महान् कोष,* पृ० 904

भट्टों के नाम निम्नलिखित प्रकार है : बल्ल, हरिवंस, मथुरा, कल्लसहार, जल्ल, दास, सेवक, रंग, टल्ल, कल्ल, जालप, कीरत, सल्ल, भल्ल, नल्ल, भिक्खा, परमानन्द ।

इक इक वेद चतुरवपु धारे,
प्रगट नाम तिन कहों असंस,
पूरव सामवेद के इह भे
मथुरा, जालप बल्ल, हरिबसं,
..... (गु.प्र.सु रासि ३ अः 48)[6]

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के साधारण पठन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें दर्ज वाणी अलग-अलग इक्कतीस रागों में वर्गीकृत है । प्रत्येक राग में प्रथम रुप में गुरु साहिबान और उपरान्त संतो भक्तों की वाणी दर्ज है । रागों के अनुसार दर्ज इस वाणी को अलग-अलग संगीतिक संकेतों और शीर्षकों के द्वारा बद्ध किया गया है । वाणी की संगीतात्मक संपादना का उद्देश्य इसे एक विशेष प्रबन्ध के रुप में प्रस्तुत करना है । वाणी का प्रत्यक्ष रुप में सम्बन्ध श्रोता श्रेणी से है । अपनी संगीतात्मकता द्वारा वाणी अपने श्रोत्रा की मानसिकता से एक सुर हो कर अटूट सांझ पाने की सर्मथा रखती है । इसीलिये शब्द कीर्तन को वाणी के संचार में प्रमुख स्थान दिया गया है । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वाणी की पंक्तियों से इस महत्त्व को जाना जा सकता है :

---

6. काहन सिंह नाभा (भाई), *महान् कोष,* पृ० 904

- कलियुग महि कीरतन परधाना ।
  गुरमुखि जपीअै लाए धियाना ।।[7]
- जो-जो कथै कीर्तनु ताकी दुरमति नास ।।[8]
- गुण गोबिन्द गावहु सभि हरिजन
  राग रतन रसना आलाप ।।[9]

वाणी का संगीत विधान उसमें अंकित संगीतिक संकेतों उदाहरणों और फुरमानों पर आधारित है जो इस प्रकार है : राग, महला, रहाऊ, गायन-रुप/काव्य रुप, अंक, घरु, जति, धुनि आदि । इस संगीत विधान के अर्न्तगत शब्द / वाणी की कार्यशीलता की प्रक्रिया जारी रहती है । इस प्रक्रिया का सर्वप्रथम आरम्भ रहाऊ से होता है । रहाऊ में शब्द का केन्द्रीय भाव है। इसलिये गायन के लिये इसे स्थाई के रुप में सम्बन्धित निर्धारित राग, निर्धारित गायन रुप और निर्धारित काव्य रुप के अनुसार आरम्भ किया जाता है । गुरमति संगीत विधान में प्रयुक्त होने वाले अन्य संगीतिक संकेत शब्द प्रस्तुति में सहायक होते हैं । गायन की यह प्रस्तुति संगीत की साधारण प्रस्तुति से भिन्न होती है । साधारण संगीतिक प्रस्तुति में आये कलात्मक आनन्द बोध से मुक्त वाणी प्रस्तुति में सम्पूर्ण सर्मपण एवं निजी अंहकार का त्याग कर शब्द को प्रधानता दी जाती है । इस संगीत विधान की विशेषताओं को जानने के लिये इस का विस्तारपूर्वक विश्लेषण इस प्रकार है :-

---

7. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* मारु महला 5, पृ० 1075
8. वही, कानडा महला 4, 5 पृ० 1300
9. वही, बिलाबल महला 5, पृ० 821

गुरमति संगीत में राग :

गुरमति संगीत का मूल स्त्रोत्र श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी हैं जिसमें समस्त गुरजनों की वाणी निहित है । वाणी में शब्द की गायन प्रक्रिया हेतु उसे राग में निबद्ध किया गया है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी को भिन्न-भिन्न रागों और राग प्रकारों के अर्न्तगत रखा गया है जिससे गुरमति संगीत में राग का महत्त्व परिलक्षित होता है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उल्लेखित है कि शब्द विशेष को किस राग में गाया जाना चाहिये । इस का कारण यह है कि शब्द का भाव और राग की प्रकृति में समानता होने से आत्मिक प्रभाव पड़ता है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के वाणी गायन प्रकारों व शब्द के ऊपर राग का नाम अंकित किया गया है । अन्य ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसकी रचना इस प्रकार की गई हो ।

राग : – गायन प्रक्रिया में शब्द को प्रस्तुत करने के लिये राग मुख्य तत्व है । जो रचना रंजकता प्रधान हो एवं चित्त का रंजन करती हो, राग कहलाती है ।

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषित: ।
रंजको जनचित्तानां स राग: कथितो बुधै:।।[10]

एक विशिष्ट स्वर-समुदाय, जो स्वर या वर्ण से सुशोभित होकर मनुष्यों के हृदय का रंजन करता है, उसे पण्डित जन 'राग' कहते हैं ।[11]

---

10. भातखण्डे, *भातखण्डे-संगीत शास्त्र,* (हिन्दोस्तानी संगीत पद्धति), पृ० 21
11. वही

पं० अहोबल के अनुसार : रंजकः स्वरसन्दर्भो राग इत्यभिधीयते ।

सर्वेषामपि रागाणां समयोऽत्र निरुप्यते ।।

अर्थात् विशेष प्रकार की ध्वनि स्वर और वर्ण से युक्त और जनचित्त रंजन करने में समर्थ हो उस विशेष प्रकार की ध्वनि रचना को ही राग कहा जाता है ।[12] राग के अर्थ है : रंग, जनचित-रन्जन या प्राणी मात्र को विशेष रंग में रंगना, राग की क्रिया है।[13]

राग को जाति का ही विकसित रुप माना जाता है यद्यपि राग और जाति समान नहीं है परन्तु प्राचीन काल की गान-पद्धति, जाति के नियमों को राग में भी प्रयुक्त किया जाता है । राग में निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है, जिन्हें राग थाट, स्वर, आरोह-अवरोह, जाति, वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी, अंग, न्यास, पूर्वांग, उतरांग, समय, समप्राकृतिक राग आदि। राग का मूल, गुण स्वरों के द्वारा मन का रंजन करना है । इसे 'जन चित्तरंजक-ध्वनि' कहा गया है । राग का मूल स्वर अथवा नाद है । ''निराकार आकाशतत्त्व का सूक्ष्म रुप स्वर है ।''[14] ''स्वर अथवा नाद को 'ब्रह्म' कहा गया है, जिसकी उपासना से परम सत्य /ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है ।''[15] 'विशिष्ट क्रम और विशष्टि अनुपात में प्रयोग किये जाने वाले स्वरों का विशिष्ट स्वरुप राग है । इसमें खास-खास स्वरों पर ठहराव और राग की स्थापना क्रमवार धीरे धीरे होती है । [16]

---

12. श्रीपद, बन्धोपाध्याय, *संगीत भाष्य,* पृ० 299
13. पाठक सुनंदा, *हिन्दोस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास,* पृ० 13
14. श्रीपद, बन्धोपाध्याय, *संगीत भाष्य,* पृ० 299
15. विमलकांत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ० 66
16. आचार्य वृहस्पति, *संगीत चिंतामणि,* पृ० 180

यद्यपि प्राचीन काल अथवा वैदिक काल से ही संगीत में राग को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है तथापि गुरमति संगीत में राग का प्रयोग संगीत की किसी भी परम्परा से भिन्न है क्योंकि गुरमति संगीत में ''इसके द्वारा उस 'रागै नादै बाहरा' वाले खालक के आदेश को माना है ।[17]

गुरमति संगीत के अर्न्तगत गुरु साहिबान ने राग के महत्त्व एवं विशेषता को पूर्ण रुप में स्वीकार करते हुए उसे प्रयुक्त किया । गुरु साहिबान के रागों से सम्बन्धित श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कई कथन उपलब्ध हैं जो निम्न प्रकार से हैं:

- राग नादि मन दूजे भाई ।।
  अंतर कपट महा दुख पाई ।।[18]

- धन्न सु राग सुरंगड़े ।
  आलापत सभ तिख जाए ।।[19]

श्री गुरु अर्जुन देव जी ने रागों के विषय में कहा है कि राग की प्रकृति, रस व धुन की रचना इस प्रकार की हो, जो शब्द के आन्तरिक भाव को उजागर कर सके ।

- ओंकार एक धुनि एकै एकै राग अलापे ।
  ऐका देसी ऐक दिखावे ऐको रहिआ बियापे ।।
  ऐका सुरति ऐका ही सेवा ऐको गुरु ते जापे ।।[20]

---

17. गुरनाम सिंह (डा०), *संगीत, गुरमति संगीत अंक,* पृ० 113
18. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* प्रभाती, महला 1., पृ० 1342
19. वही, वार, रामकली, महला 5., पृ० 958
20. वही, रामकली महला 5.

गुरु साहिबान ने वाणी में राग को विशिष्ट प्रकार से प्रयुक्त करते हुए राग के विशेष गुणों को निर्धारित किया है ।

''इस तरह वाणी में राग के प्रयोग को एक विशिष्ट उद्देश्य का धारणी बनाकर उसका विशेष गुण राग के स्वरात्मक या संगीतात्मक स्वरुप के वाद-विवाद, झगड़ो या पहचानों से मुक्त होकर बुनियादी तौर पर महत्त्वपूर्ण है ।''[21] गुरु साहिबान ने राग की नादात्मक शक्ति को अपनी वाणी में धारण किया है ।

- सभना रागां विचि सो भला भाई जित वसिआ मन आए ।।
  राग नाद सभ सच है कीमति कहि न जाए ।।
  राग नादै बाहरा इनी हुक्म न बुझिया जाए ।।
  नानक हुक्म बुझै तिना रासि होई सतिगुरु ते सोझी पाई ।।[22]

गुरमति संगीत में वाणी में राग की प्रयुक्तता भारतीय संगीत की तरह जटिल न होकर शब्द व वाणी के सम्मलित प्रयोग से सरल एवं सहज है । परमात्मा के संदेश को शब्द प्रस्तुति द्वारा संचारित किया गया है । इसलिये शब्द का प्रथम एवं प्रमुख स्थान है। भाव अभिव्यक्ति के लिये समूह वाणी को रागों के द्वारा संकलित कर उसे मौलिक संगीत में प्रबन्ध में निबद्ध किया गया है । इसलिये राग प्रथम रुप में प्रकट होता है । जिससे राग का प्रयोग कलात्मक अंहकार से मुक्त होकर शब्द की शुद्ध अभिव्यक्ति

---

21. गुरनाम सिंह, (डा०) *संगीत, गुरमति संगीत विशेषांक,* पृ० 114
22. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* महला 4, पृ० 1423

के प्रति अग्रशील है । इस सम्बन्ध में गुरु साहिबान के कथानुसार वाक्य निम्नलिखित प्रकार से है :

- इकि गावत रहे मनि सादु न पाई ।।
  हऊमै विचि गावहि बिरथा जाई ।।[23]

इसलिये गुरमति संगीत की वाणी में राग के प्रयोग को सहज एवं संतुलित बनाया गया है । जो गुरु साहिब के द्वारा वाणी के गायन प्रबन्ध के लिये निर्मित है ।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की संपादना के आधार पर 31 राग मिलते है जो मुख्य रागों के रुप में ततकरे में अंकित किये गये है । मुख्य रागों के अतिरिक्त 31 राग प्रकार भी मिलते हैं । मुख्य रागों और उपरागों के अर्न्तगत विभिन्न परम्पराओं, मौसमों से सम्बन्धित रागों का उल्लेख भी प्राप्त होता है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में आये 31 मुख्य राग और उनके प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित है :

गुरमति संगीत में गुरु साहिबान ने विभिन्न गायन शैलियों के अर्न्तगत विभिन्न मार्गी एवं देसी रागों को प्रयुक्त किया है । इन रागों को शुद्ध, छायालग और संकीर्ण रागों के अर्न्तगत विभाजित किया गया है । इन रागों का विवरण निम्न प्रकार से है :

---

23. वही, महला, पृ.

1. **शुद्ध राग** : जिन रागों में किसी अन्य राग की छाया दृष्टिगोचर नहीं होती जिनका अपना स्वतन्त्र, स्पष्ट और प्रधान स्वरुप होता, वह शुद्ध राग कहलाते हैं । गुरमति संगीत में इन रागों को मुख्य रागों के अर्न्तगत रखा गया है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में ततकरे के अर्न्तगत 31 प्रमुख शुद्ध राग आते हैं जैसे - सिरी, माझ, गऊड़ी, आसा, गुजरी, बिहागडा, वडहंस, सोरठि, धनाश्री, तिलंग, सूही, बिलाबल, रामकली, मारु, तुखारी, भैरव, बसन्त, सारंग, मलार और प्रभाती ।

2. **छायालग राग** : छायालग रागों की रचना दो भिन्न रागों की स्वरावलियों के मिश्रण से होती है । इन रागों में किसी राग की प्रधान छाया प्रतीत होती है । छायालग रागों में जिस प्रधान राग की छाया प्रतीत होती है, वह सम्बन्धित राग का मुख्य राग है और राग उसके प्रकार से जाना जाता है । गुरमति संगीत में मुख्य शुद्ध रागों के अर्न्तगत उनके प्रकार, छायालग राग है जैसे गऊडी - गुआरेरी[24], गऊडी - चेती[25], आसा - काफी, सूही - काफी[26], बसंत - हिन्डोल और प्रभाती - दखनी आदि ।

संकीर्ण राग : संकीर्ण राग वह हैं जिन में किसी मुख्य राग के अर्न्तगत दो या दो से अधिक रागों का मिश्रण हो । गुरमति संगीत में राग गऊडी पूर्वी दीपकी संकीर्ण राग है ।

---

24. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* पृ. 151.
25. वही
26. वही

दखनी राग : गुरमति संगीत में शुद्ध, छायालग और संकीर्ण रागों के इलावा मुख्य रागों के अर्न्तगत रागों के अन्य स्वरुप भी प्राप्त होते हैं जिन पर मुख्य राग के साथ दखनी शब्द अंकित किया गया है । जैसे : गऊड़ी - दखनी[27], वहडंस - दखनी[28], बिलाबल - दखनी[29], मारु - दखनी[30], रामकली - दखनी[31], प्रभाती - दखनी[32] ।

मुसलमानों के हमलों के फलस्वरूप मध्यकाल में भारतीय संगीत की दो धाराएं प्रवाहित हो चुकी थी और दो पद्धतियाँ हिन्दोस्तानी व उत्तर भारतीय संगीत अथवा दक्षिण भारतीय एवं कर्नाटकी संगीत पद्धति बन गई थी । जिससे सम्पूर्ण भारत का संगीत दो धाराओं में विभाजित हो गया था । श्री गुरु नानक देव जी ने 'धुर की वाणी' को समस्त जन में पहुँचाने के लिए चार उदासियों के रुप में जब विश्व भ्रमण किया, तब वह दक्षिणी भारत में भी गये । आप जी ने वहाँ के संगीत, संस्कृति, भाषा और आचार, व्यवहार के अध्ययन के बाद दक्षिणी रागों को अपनी वाणी में प्रयुक्त करके संगीत की दोनों पद्धितयों में परस्पर सामज्स्य उत्पन्न करने में विशेष योगदान दिया । दक्षिणी राग गुरमति संगीत की वाणी के राग प्रबन्ध में नवीन, मौलिक एवं विलक्षण हैं । क्रियात्मक तौर पर इन रागों के स्वरुप केवल दक्षिणी संगीत पद्धति में ही पाये जाते हैं, उत्तरी भारतीय संगीत में नहीं । इसलिये इन रागों को दक्षिणी पद्धति के राग मानना

---

27. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 152
28. वही, पृ० 580
29. वही, पृ० 843
30. वही, पृ० 1033
31. वही, पृ० 907
32. वही, पृ० 1343

ही उचित है । दक्षिणी पद्धति के रागों का प्रयोग श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में केवल श्री गुरु नानक देव जी ने ही किया है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सिरलेख के रुप में अंकित 'राग' क्यों जों वाणी को रागों के अर्न्तगत गायन करने का निर्देश है, इसलिये गुरमति संगीत परम्परा में उत्तरी और दक्षिणी पद्धति दोनों के रागों को समान सत्कार के साथ गाने का आदेश है ।[33]

रागों के विशेष महत्त्व को पहचानने के लिये इन्हें संगीतिक दृष्टि से हम दो भागों में विभाजित कर सकते है। । गुरमति संगीत में प्रयुक्त हुए कुछ राग प्राचीनता के धारणी हैं और कुछ राग देसी संगीत से विकसित हुए हैं । प्रथम प्रकार के रागों को सनातनी राग कहा जाता है और दूसरी प्रकार के रागों को देसी राग कहा जाता है ।

सनातनी राग : गुरु साहिबान ने वाणी के गायन के लिये शुद्ध रुप में मार्गी या स्थापित रागों को प्रयुक्त किया है । वाणी के अर्न्तगत काव्यात्मक और संगीत के अर्न्तगत संगीतात्मक तत्त्वों एवं उनकी विशेषताओं को युग्ल रुप में शब्द भाव अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त किया गया है । गुरु साहिबान ने सनातनी काव्य रुपों के लिये शुद्ध रागों का प्रयोग किया है । जैसे प्रबन्ध गायन शैली के काव्य रुप अष्टपदि के प्रयोग के लिये सिरी[34], माझ[35], गऊडी, गूजरी, रामकली, प्रभाती रागों को लिया गया है ।

---

33. हरजस कौर (डा०) *गुरमति संगीत : परिचयात्मक अध्ययन*, पृ० 59
34. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब*, पृ०
35. वहीं, पृ०

देसी राग : गुरमति संगीत के अर्न्तगत गुरु साहिबान ने देसी राग भी प्रयुक्त किये हैं जो विभिन्न इलाकों की लोक परम्परा से विकसित राग हैं । जैसे माझ, आसा, आसा काफी, बिहागड़ा, तिलंग, सूही, मारु, तुखारी आदि ऐसे रागों के वाणी में प्रयुक्त होने से यह प्रत्यक्ष है कि गुरु साहिबान का लक्ष्य जन साधारण के रहन सहन, आचार, व्यवहार और संस्कृति के अनुसार वाणी का सृजन करना था ।

मौसमी राग : वैदिक काल से ही भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों को विशेष ऋतुओं और विशेष समय पर गाये जाने का विधान है । गुरमति संगीत में ऐसे राग उपलब्ध हैं जिन्हें विशेष मौसम के साथ सम्बन्धित माना जाता हैं । इन रागों को सम्बन्धित मौसम में हर समय गाया जा सकता है । इन ऋतु विशेष रागों में रचित वाणी के गायन से ही, सरल रुप में सम्बन्धित मौसम का अनुमान हो जाता है । ऋतु बसंत के अर्न्तगत बसन्त राग में वाणी की रचना निम्न प्रकार से आदि ग्रन्थ में उपलब्ध है :

- करम पेढु साखा हरि धमर फल फल ज्ञान ।।
  पत परापत छाव घणि चूका मन अभिमान ।।[36]

- रुति आइले सरस बसंत माहि ।[37]

- पहित बसंतै आगमनि तिस का करहु बिचारु ।।
  नानक सो सालहीऐ जि सभसै दे आधारु ।।[38]

---

36. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ०
37. वही, पृ०
38. वही, महला 2, पृ० 721

राग मल्हार में आदि ग्रन्थ में वाणी की रचना इस प्रकार उपलब्ध है :

- गुरमुखि मलार रागु जो करहि तिन मनु तनु सीतलु होई।[39]

- मलार सीतल राग है धिआइअै शांति होई ।[40]

- ऊॅनवि ऊॅनवि आयआ वरसै लाई झड़ी ।

  नानक भाणै चलै कंत कै सु भाणे सदा रली ।।[41]

उक्त रागों के इलावा गुरु साहिब ने समाज के विभिन्न वर्गों के प्रिय रागों का भी प्रयोग किया । जैसे सिद्धनाथों और जोगियों के प्रिय राग रामकली का प्रयोग इसका विशेष उदाहरण हैं । इसके अर्न्तगत गुरु साहिब ने जोग सिद्धान्तों के विचारों को प्रस्तुत किया है । सम्बन्धित विचारों का सम्बन्धित राग में प्रस्तुति करण लोगों को निकटतम लाने में सहायक है । गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त रागों का प्रयोग गुरमति विधान अनुसारी है । गुरमति संगीत में शब्द का प्रथम स्थान है और राग का दूसरा । शब्द की प्रस्तुति राग के प्रयोग में संतुलित एवं सहज रूप में की गई है ।

---

39. वही, महला 3, पृ० 1285
40. वही, महला 3, पृ० 1283
41. वही, महला 2, पृ० 1280

अंक

गुरमति संगीत के प्रबन्ध को विधिवत स्वरूप प्रदान करने हेतु कुछ विशेष संकेत 'आदि ग्रन्थ' में अंकित शब्दों में दृष्टिगत होते हैं । शब्द के काव्य रुप की प्रस्तुति के लिये अंकों को अंकित किया गया है । प्रत्येक शब्द में तुकों के पीछे 1,2,3,4,5, इत्यादि अंक दिखाई पड़ते है। । यह अंक विभिन्न अन्तरों के सूचक हैं । इन अंकों के अर्न्तगत दो या तीन तुकें भी होती हैं । शब्द रचना के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम पदों पर क्रमशः 2, 3, 4, 5, इत्यादि अंक रहते हैं । इन अंकों से काव्य के रुप को भली भांति जाना जा सकता है । गुरमति संगीत के अर्न्तगत प्रथम तुक (रहाओ), जिस में शब्द का केन्द्रीय भाव होता है, को प्रत्येक अन्तरे के बाद गाने का विधान है । इस प्रकार शब्द के अन्तरों को निर्धारित करने के लिये अंक संख्या का प्रयोग किया गया है । शब्द के प्रथम अंतरे के लिये ।। १।। दूसरे के लिए ।।२।। तीसरे के लिए ।।३।। और चौथे के लिये ।।४।। संकेत प्रयुक्त होते है । यह अन्तरा एक तुक, दो तुकों या इस से भी ज्यादा होता है । जिस तुक के बाद अंक लगा होता है, वह अंतरे की समाप्ति का प्रतीक है जिसके पश्चात् रहाऊ का गायन किया जाता है । अंकों के द्वारा अंकित तुकें भी रहाऊ के साथ सम्बन्धित होती हैं जिसमें केन्द्रीय भाव को सुदृढ़ करने हेतु प्रमाणों या उक्तियों को प्रयुक्त किया गया है ।

शब्द के अंकों के पश्चात् बड़े अंकों को अंकित किया गया है जिस प्रकार अष्टपदी जैसी बड़ी वाणियों में जब तुक्कें पुरी हो जाती है तब नई अष्टपदी से यह अंक शुरु होता है अगला अंक, जो अष्टपदीयों की संख्या बताता है, में भी बढ़ौत्तरी हो जाती है । इन को बड़ा अंक और छोटा अंक कहा जाता है । इन अंकों को भट्टों की गिणती के साथ भी सम्बन्धित माना जाता है । कई स्थानों पर जहां भट्ट का नाम शुरु होता है, वहाँ नम्बर बदलता है और कई स्थानों पर एक ही भट्ट के सवैया में जहाँ तरज बदल जाती है वहाँ सिलसिले वाला बड़ा नम्बर तो जारी रहता है, पर एक नया अंक के साथ दर्ज किया जा रहा है ।''[42] इस प्रकार गुरमति संगीत के अर्न्तगत वाणी गायन में अंकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

रहाऊ

गुरमति संगीत में गुरबाणी के संगीत विधान में 'रहाऊ' एक महत्त्वपूर्ण संकेत है । रहाओ की पंक्तियों में शब्द का केन्द्रीय भाव विद्यमान होता है । रहाऊ को 'टेक' भी कहा जाता है । मध्यकाल में सन्त भक्त कवियों ने अपनी वाणी की रचना में 'टेक' शब्द को प्रयुक्त किया है । उन्होंने पद के शुरु में टेक को अंकित किया है । परन्तु गुरमति संगीत में रहाऊ को एक या दो अंको में दिये गये विचारो के बाद दिया गया है जिसे अंको के द्वारा निर्धारित किया गया है । भारतीय संगीत में प्रचलित गायन

---

42. साहिब सिंह, *रब्बी बाण,* पृ. 24

शैलियों प्रबन्ध और धुपद में एक धातु है जिसे ध्रुव कहा जाता है । ध्रुव का ही दूसरा रुप रहाओ है । इस प्रकार ध्रुव, टेक व रहाओ एक समान अर्थ रखते हैं । सन्त भक्तों ने ध्रुव[43] व टेक[44] शब्द का प्रयोग अपनी वाणी में किया है । जिस प्रकार ध्रुव का ध्रुवपद गायन शैली में अचल स्थान है उसी प्रकार रहाओ को शब्द प्रस्तुति में नियमित स्वरुप प्राप्त है । ध्रुव (ध्रुपद) को परिभाषित करते हुए 'ध्रुव' को अचल या 'चिरस्थाई' कहा गया है । इन अर्थों में एक मात्र ईश्वर ही 'ध्रुव' है और उसके गुण कीर्तन सूचक पद को ध्रुव पद कहा जाता है ।[45] अठाहरवीं सदी के कवि दाद्, कान्, शाह हुसैन, शाह सरफ की रचनाओं में भी रहाओं शब्द मिलता है । इनकी रचनाओं में प्राय: शब्द का पहला बंद रहाओ की तुक का है पर गुरबाणी में ज्यादातर शब्द के पहले बंद के बाद रहाओ की तुक आती है ।[46]

ध्रुव के समान ही रहाऊ शब्द का अर्थ भी एक स्थान पर ठहर जाना, विश्राम अथवा स्थिति[47] है । इसके इलावा रहाओ का अर्थ टेक, सुर या पाठ करना भी हैं ।[48] संगीतिक दृष्टि से रहाओ को स्थाई कहा जाता है ।[49]

---

42. साहिब सिंह, *रब्बी बाण,* पृ. 24
43. सिक्रतकमला कुचमंडल ध्रितकुंडल कलि त ललित वनमाल जय जय देव हरे।। ध्रुव।।१।।
44. चरखा मेरा अजब रंगीला वो सोहंद रसना धुन रस मीत।। टेक।। *चोणवीआं काफीआ,* (संपा, सुरिन्द्र सिंह कोहली) पृ. 134
45. गुरनाम सिंह (डा.), *पंजाबी लोक संगीत : सिधात ते सरूप,* पृ. 102 - 103
46. हरजस कौर (डा.), *गुरमति संगीत : परिचयात्मक अध्ययन,* पृ. 43
47. *साहित्य कोष, परिभाषिक शब्दावली,* पृ. 872
48. *पंजाबी साहित्य कोष,* पृ. 420
49. *गुरू ग्रन्थ कोष,* भाई वीर सिंह, पृ. 779

शब्द में अंकित विभिन्न शीषर्कों में रहाऊ का विशेष स्थान है । रहाऊ शब्द की केन्द्रीय शक्ति है । श्री गुरु नानक देव जी द्वारा रचित सिरी राग में शब्द रचना द्वारा रहाऊ का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है :-

- मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जडाऊ ।।
  कसतूरि कुंगू अगरि चन्दन लीपि आवै चाऊ ।।
  मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति ना आवै नाऊ ।।१।।
  मै अपना गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाऊ ।। १।। रहाऊ ।।[50]

रहाऊ के इस पद के बाद रहाऊ की तुक इस प्रकार है :

हरि बिनु जीऊ जलि बलि जाऊ ।।
मैं आपना गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाऊ ।।[51]

रहाऊ की इस तुक के बाद 2, 3, 4, पद आते है। । कई शब्दों में रहाऊ दो[52], रहाऊ तीन[53] और रहाऊ चार[54] भी आते हैं । उनके लिये 'रहाऊ 2' इस प्रकार अंको को लिखा जाता है । जिस प्रकार राग सोरठि में रहाऊ 2 अंकित किया गया है :

- सोरठि महला 5 घरु 2 अष्टपदिआं ।।
  पाठु पडिऊ घरु बेदु बीचारिऊ

---

50. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 14
51. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, महला 1,* पृ० 25-26
52. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, महला 1,* पृ० 154
53. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, महला 5,* पृ० 96-97
54. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 641

निवालि भुअन्गम साधे ।।

पंचजना सिऊ संग न छुटकिऊ

अधिक अन्हबुधि बाधे ।। १ ।।

पिआरे इन बिधि मिलनु न जाई ।

मै कीये करम अनेका ।।

हारि परिऊ सुआमी के दुआरे

दीजै बुधि बिबेका ।। रहाऊ ।।[55]

इस अष्टपदी में प्रथम अंक के पश्चात् 'रहाऊ' अंकित किया गया है परन्तु आगे के सात पदों के पश्चात् आखिर में फिर एक रहाऊ अंकित किया गया है जो निम्न प्रकार है :

तेरो सेवकु इह रंगि माता ।।

भइऊ कृिपालु दीन दुख भन्जनु

हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता ।। रहाऊ दूजा ।। १ ।।[56]

इस प्रकार वाणी की सजृना में गुरु साहिबान ने रहाऊ को महत्त्वपूर्ण स्थान दे कर उसके इर्द गिर्द वाणी की संरचना की है ।

'रहाऊ जहाँ वाणी विधान की केन्द्रीय इकाई है, वहीं वाणी गायन में भी यह एक केन्द्रीय संचारक इकाई और शक्ति है और इसको स्थायी या टेक के रुप में स्वीकार करना इसका प्रथम प्रमुख विशिष्टि लक्ष्ण है ।[57]

---

55. श्री *गुरू ग्रन्थ साहिब,* पृ. 641

56. वही, पृ. 642

57. गुरनाम सिंह (डा.) *संगीत, संगीत विशेषांक,* जनवरी फरवरी, पृ. 71

घरु

गुरमति संगीत में घरु का विशिष्ट स्थान है । वाणी रचना में राग के पश्चात् जिस संकेत को दर्शाया गया है वह घरु है । जिसे घरु १, घरु २, इस प्रकार अंकित किया जाता है । घरु के विषय में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं । भाई वीर सिंह जी के मतानुसार 'साजों में तीन ग्राम होते हैं।, ग्राम घर से बनता है । इसलिये तीन ग्रामों के स्वरों के स्थानों से घरु है । घरु १ से भाव गाये जाने वाले राग की प्रधान स्वर की संख्या का संकेत है ।[58] भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार घरु के दो अर्थ है - एक ताल, दूसरा स्वर और मूर्च्छना के भेद करके एक ही राग के सरगम प्रस्तार अनुसार गाने के प्रकार ।[59] एक मत के अनुसार इसे संगीत रत्नाकार व परम्परागत रबाबियों के हवाले से 'ग्रह ताल' के अर्थों में भी लिया गया है ।[60] एक अन्य मत अनुसार ईरानी ताल पद्वति का उदाहरण दिया जाता है जिसमें एक गाह, दो गाह, तीन गाह, चारह इस प्रकार संगीतिक संकेत होते है[61] । विद्वानों ने गाह को ताल शब्द का पर्यावाची माना है । यह भी माना जाता है कि अमीर खुसरो ने फारसी बहिर की बुनियाद पर भारतीय प्राचीन तालों के बदले 17 ताल बनाये । यह ताल मध्यकाल में फारसी नामों से प्रचलित रहे । जिन्हें क्रमश: पश्तो, ज़ोबहार, कव्वाली, सूलफाख्ता, जत, जलद तिताला, सवारी, आडा चौताल, झूमरा, जमानी सवारी, दासतान, ख़मस, फरोदसत, कैद, पहलवान, पट और चपक थे ।[62]

---

58. भाई वीर सिंह, *गुरु ग्रन्थ कोष,* 302
59. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ. 441
60. जसबीर सिंह साबर, *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब विच संगीत सूचक संकेत,* अदूति गुरमति संगीत सम्मेलन, 1991, पृ. 32
61. शब्दार्थ *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, (पोथी पहली),* पृ. 14
62. *निबन्ध संगीत,* पृ. 557, 58

यह सभी ताल मध्यकालीन संत भक्त कवियों के द्वारा प्रयुक्त किये जाते थे । सम्भवतया गुरु साहिबान द्वारा प्रयुक्त किये गये 17 घुरु इन्हीं विभिन्न 17 भारतीय तालों के रुप हो जो काव्य की विशेष बहिर के धारणी हैं ।[63]

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में घरु १, घरु २, घरु ३, शीर्षक वाणी में दिये गये हैं जिनकी संख्या 17 है । इनका अंकन रुप निम्नलिखित प्रकार से है :

1. माझ महला ३ घरु १ ।।[64]
2. रागु आसा घरु २ महला ५ ।।[65]
3. आसा घरु ३ महला ५ ।।[66]
4. आसा घरु ४ महला १ ।।[67]
5. आसा घरु ५ महला १ ।।[68]
6. आसा घरु ६ महला ५।।[69]
7. रागु आसा घरु ७ महला ५ ।।[70]
8. आसा घरु ८ काफी महला ५।।[71]
9. आसा घरु ९ महला ५ ।।[72]
10. आसा घर १० महला ५ ।।[73]
11. आसा घरु ११ महला ५ ।।[74]
12. राग आसा महला ५ घरु ।। २ ।।[75]
13. राग आसा महला ४ घरु ।। ३ ।।[76]

---

63. अमृतपाल कौर (डा.) *गुरबाणी अध्ययन : नवपरिपेरव,* पृ. 35
64. 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76 *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ. क्रमश:110,370, 379, 358, 359, 384, 396, 401, 401

14. महला ५ आसा घरु ।। ७।।[77]

15. आसा महला ५ घरु ।। ५ ।। पड़ताल ।।[78]

16. रागु आसावरी घरु । ६ के २ महला २ सुधंग ।।[79]

17. आसा महला ५ घरु १ आसावरी ।।[80]

जति :

गुरमति संगीत की वाणी के अर्न्तगत आने वाला एक अन्य शीर्षक जति है । जति को भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'यति' नाम से जाना जाता है । यति का अर्थ है निरन्तर चाल में ठहराव की अवस्थायें । श्री गुरु नानक देव जी द्वारा रचित वाणी में राग बिलावल का एक शीर्षक इस प्रकार अंकित है :

'बिलाबल महला १ थिति घरु १० जति ।।[81]

विद्वानों जति के अर्थ विभिन्न प्रकार से दिये हैं । 'जति का सम्बन्ध जोड़ी बजाने वाली एक गत के साथ है ।[82] महान् कोष में उल्लेखित जति के अर्थों के अनुसार ''संगीत की धारणा का नाम जति (यति है और मृदंग के बोल का जहां विश्राम हो वह भी जति की संज्ञा है ।[83] डा० चरण सिंह के विचार में ''जति, गति, सपथ यह तीनों जोड़ी के करतब हैं, जिस समय दायां हाथ गति का काम करे अर्थात गत वाकर अँगुलियां में जोड़ी के किनारे और बीच में काम करे और जब दोनों हाथों

77,78, 79,80, *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ. क्रमशः 403, 405, 406, 407, 408, 369, 409

81. *वही,* महला 1, पृ. 838

82. साहिब सिंह (प्रो.) *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दरपण* (पौथी छः), पृ.229

83. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ. 502

की अँगुलिया हरफ निकालें और बायाँ हाथ साथ वाकर खुलासा बजाये तो उसे जति कहते हैं .....। जब दोनों हाथ खुले काम करें तो आवाज भी खुली निकले (जिसे कड़कुट कहते है।) तो उसकी संज्ञा साथ होती है ।[84]

धुनी

गुरमति संगीत के अर्न्तगत वाणी रचना में अन्य शीषर्कों की भाँति 'धुनी' को भी अंकित किया गया है । श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उल्लेखित वारों को मध्यकाल में प्रचलित कुछ विशेष धुनों में गाने का विधान है । इन विशेष धुनों को गुरु साहिबान ने वारों के ऊपर अंकित किया है जिसे 'वार धुनी' कहा जाता है । जिनका श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अंकन रुप निम्नलिखित प्रकार से है :

- वार माझ की तथा सलोक महला १
  मलक मुरीद तथा चन्द्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी ।।[85]
- आसा महला २ वार सलोका नालि सलोक भी महले
  पहले के लिखे टुन्डे असराजे की धुनी ।।[86]
- रामकली की वार महला ५ लला बहलीमा की धुनि गावणी ।।[87]
  सारंग की वार महला ५ राए महमे हसने की धुनि ।।[88]

---

84. वही,
85. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब*, पृ. 137
86. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब*, पृ. 462
87. वही, पृ. 947
88. वही, पृ. 1237

इन शीषर्कों के अंकन रुप के अध्ययन से गुरु साहिबान द्वारा निर्मित संगीत विधान की विशिष्टिता सहज रुप में प्रकट होती हैं। जैसे कि वार एक लोक संगीत अंग की गायन शैली है और उसे लोक अंग की धुनि में गाने का संकेत है उसके साथ ही शास्त्रीय अंग के रागों को भी अंकित किया गया है । जिससे स्पष्ट होता है कि किस विशेष वार को उसकी विशेष धुनी व विशेष राग में गाया जाये । इस निर्धारण प्रक्रिया के अर्न्तगत तीन शीषर्कों को अंकित किया गया है - वार, धुनी व राग । इनका सम्मलित प्रस्तुतिकरण गुरमति संगीत के विशिष्टि प्रबन्ध को दृष्टिमान करता है । जिस प्रकार 'आसा की वार' को उसकी विशेष धुनी टुन्डे असराजे की धुनी और राग आसा में गाया जाता है :

वार - आसा की वार

धुनी - टुन्डे असराजे की धुनी

राग - आसा

'आसा की वार' उसकी धुनी (टुण्डे असराजे की धुनी) और राग आसा की अंतर सम्बन्धिता अपने संगीत स्वरूप की वजह से समरसता की धारणी है ।[89] भारतीय संगीत कोष की परिभाषा के अनुसार आसा की वार और इसकी निर्धारित वार, धुनी और राग आसा में इसकी समरुपता और समस्वरता के सुमेल से वार ऊपर धुनी का शीर्षक सम्भव हो सका है ।[90]

---

89. अमृतपाल कौर, *गुरबाणी अध्ययन : नवपरिपेरख,* पृ. 38

90. चौधरी विमलकांत राये, *संगीत कोष,* पृ. 95

इसी प्रकार अन्य वारों के ऊपर भी 'धुनी' के संकेत मिलते हैं जिनका अंकन भी रागों के नाम उल्लेख के साथ किया गया है । जैसे सारंग की वार को राय महमे हसने की धुनि (लोक अंग की धुनि) और राग सारंग (शास्त्रीय अंग से) में गायन का आदेश है । इस प्रकार गुरु साहिबान ने लोक काव्य व लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत का आधार प्रदान करते हुए जहाँ लोक संगीत व शास्त्रीय संगीत का मेल किया है, वहीं वाणी को विशिष्टता व मौलिकता प्रदान की है । जो अन्य किसी भी प्रकार के संगीत में उपलब्ध नहीं होती । इस प्रकार गुरु साहिबान ने लोक वारों को शास्त्रीय संगीत के तत्वों के शीषर्कों द्वारा अंकित करके गुरमति संगीत के विधि विधान को उत्कृष्टता प्रदान की है ।

गुरमति संगीत के गायन रूप

गुरमति संगीत में वाणी के गायन प्रबन्ध के अर्न्तगत गुरू साहिबान ने विविध गायन रूपों का प्रयोग किया जाता है । वाणी के काव्य रूप को गायन के इन्हीं विविध रूपों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । वाणी में काव्य और गायन आकर्षक बनाने के लिए प्रयुक्त नही किया जाता अपितु वाणी का उद्देश्य खालक के आदेश को सर्व लोकाई तक पहुँचाना है । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु गुरू साहिबान ने सरल सहज एवं विशिष्ट गायन रूपों का प्रयोग वाणी के अर्न्तगत किया है । इन गायन रूपों से यह प्रत्यक्ष है कि वाणी न केवल काव्य रूप में बल्कि विशिष्ट गायन शैलियों के द्वारा भी अद्भुत एवं विलक्ष्ण है । जबकि गुरू साहिबान ने ना तो काव्य को और ना ही गायन शैलियों का सौदर्न्य हेतु प्रयोग किया । काव्य और गायन शैलियों को उन्होंने संचार माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया । काव्य के साथ विभिन्न गायन रूपों का प्रयोग गुरू साहिबान ने अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से किया । जिस प्रकार वाणी के काव्य के अर्न्तगत शब्दों को सरलता एवं सहजता के साथ रचा गया उसी प्रकार गायन में भी काव्य की प्रकृति के साथ मेल खाते उन्हीं गायन रूपों को प्रयुक्त किया गया है । जो मनुष्य को परम सत्य की प्राप्ति के मार्गदर्शन में सहायक हो सकते थे । खालक के आदेश को संचारित करने के लिये गुरू साहिबान ने काव्य और संगीत के उन संयुक्त गायन रूपों का प्रयोग किया जिससे आत्मिक बोध की प्राप्ति हो सके । यह उद्देश्य काव्य और संगीत से उत्पन्न

आनंद से संभव नही हो सकता था । इसलिये काव्य और संगीत के गायन रूपों को अनुशासित नियमों में बाँधा । गायन रूपों के अर्न्तगत गुरू साहिबान ने अपने समकालीन प्रचलित शास्त्रीय अथवा सनातनी और देसी संगीत के गायन रूपों को प्रयुक्त किया । ''सनातनी या शास्त्रीय अनुशासन धारी नियमों वाले संगीत को आपने उसी की कट्टरता से मुक्त करके मौलिक विधान द्वारा प्रस्तुत किया और जन-साधारण में प्रचलित लोक संगीत या देसी संगीत को प्रतिष्ठित, स्थापित और उत्तम किस्म के मौलिक नियम में बाँधा जो कि गुरमति संगीत में अनुशासन का धारणी है''[91]

गुरमति संगीत में गुरू साहिबान ने सनातनी गायन रूपों के अर्न्तगत प्रबन्ध अंग से अष्टपदी, धुप्रद अंग से पद गायन और प्राचीन काल में प्रचलित पंचातालेश्वर से पड़ताल गायन शैलियों एवं रूपों को प्रयुक्त किया है। और देसी संगीत के अर्न्तगत लोक गायन शैलियों के रूप अलाहुणियां, घोडियां, वार, छंत, सोहले, मुंदावणी इत्यादि गायन शैलियों का प्रयोग किया है ।

गुरू साहिबान ने शास्त्रीय गायन शैलियों को जटिल नियमों से मुक्त कर गुरमति संगीत विधान के अर्न्तगत सहज एवं सरल रूप में अपनाया । जिससे जनसाधारण भी वाणी के काव्य एवं संगीत रूप को समझ सके । इसी प्रकार देसी संगीत के गायन रूपों को भी गुरमति संगीत प्रबन्ध के अर्न्तगत रच के उनकी चंचलता पर अंकुश लगाया जिसे वाणी में छिपे गम्भीर संदेश को सर्वजन तक सहजता से पहुँचाया जा सके ।

---

91. अमृतपाल कौर (डा.), *गुरबाणी संचार विज्ञान,* पृ. 184

गुरमति संगीत में प्रयुक्त शास्त्रीय व देसी संगीत के यह अनुशासित गायन रूप गुरमति संगीत प्रबन्ध का अद्‌भुत एवं विलक्षण स्वरूप दर्शाते हैं ।

- सहजै गाविया थाए पावै

  बिनु सहजै कथनी बादि ।।[92]

गुरमति संगीत के अर्न्तगत गायन रूपों को सरल एवं सहज बनाने का उद्‌देश्य अति कलात्मक प्रस्तुतिकरण से उत्पन्न अंहकार को नष्ट करना है ।

- इक गावत रहै मनि सादु न पाई ।।

  हडमे विचि गावहि बिरथा जाई ।।[93]

- गुरमति बाजै सबद अनाहद

  गुरमति मनुआ गावै ।।[94]

गुरमति संगीत की गायन प्रस्तुति के अर्न्तगत शास्त्रीय और देसी संगीत की शैलियों का प्रस्तुतिकरण विशिष्ट एवं मौलिक है । इन शैलियों के विभिन्न गायन रूपों का वर्णन निम्न प्रकार है :-

---

92. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* सिरी राग, महला 3, पृ 68.

93. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* गाऊडी गुआरेरी, महला 3,पृ० 158

94. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* गाऊडी पूर्वी, महला 4,पृ० 172

शास्त्रीय अंग के गायन रूप : - सनातनी संगीत पर आधारित यह गायन रूप भारतीय शास्त्रीय संगीत के ही विभिन्न रूप हैं जिन्हें अंग रूप में गुरमति संगीत में अपनाया गया है । प्राचीन काल से ही ईश्वर की उपासना के लिये संगीत का प्रयोग किया जाता था । ''शास्त्रकारों द्वारा निधार्रित नियमों का पालन कर ईश्वर की आराधना के उद्देश्य से जिस संगीत का प्रयोग किया जाता था, उसे 'मार्गी संगीत' कहा जाता था ।''[95]

मार्गी संगीत को विकसित करने हेतु शास्त्रकारो ने अध्ययन के उपरांत शास्त्रीय नियमों में बद्व किया। शास्त्रों पर आधारित इसी संगीत को शास्त्रीय संगीत कहा जाता है। अत एव शास्त्रीय संगीत प्राचीन काल में प्रचलित मार्गी का ही परिवर्तित रूप है । शास्त्रीय संगीत के अर्न्तगत विभिन्न शैलियां प्रचलित रही हैं । प्राचीन काल में सामगान, स्तोत्र गायन और जाति गायन आदि शैलियां प्रचलित थीं । जो काल परिवर्तन के साथ-साथ रूप परिवर्तित करती रहीं । यह शैलियां बाद में प्रबन्ध, ध्रुपद व ख्याल के रूप में विकसित हुई । गुरू साहिबान ने इन्हीं समकालीन एवं पूर्वकालीन शास्त्रीय संगीत शैलियों को अंग रूप में वाणी में प्रयुक्त किया । जिनमें प्रबन्ध गायन, ध्रुपद गायन व पड़ताल विशेष रूप से प्रयुक्त की गई । इन गायन रूपों में सर्वप्रथम प्रबन्ध अंग में प्रयुक्त अष्टपदी को वर्णित किया गया है :

अष्टपदी : अष्ट पदों से युक्त रचना को अष्टपदी कहा जाता है । इस कावि रूप का कोई खास तोल तुकांत नहीं । इसमें आठ छंद एक ही प्रबन्ध में लिखे जाते

---

95. श्रीपद बन्धोपाध्याय, *संगीत भाष्य*, पृ. 268.

है।[96] अष्टपदी को प्रबन्ध के उदाहरण स्वरूप प्रयुक्त किया गया है । जिसमें आठ छंद होते हैं । 'यह छंद की खास जाति नहीं है । जिस प्रबन्ध में आठ छंद (पद) इकट्ठे होने पर उसकी 'अष्टपदी' संज्ञा है ।[97]

काव्य गायन रूप में अष्टपदी का आदि ग्रन्थ में महत्वपूर्ण स्थान है । ''यह सनातनी कावि के अर्न्तगत आने वाला कावि रूप है । जिसमें दर्शन और धर्म के विभिन्न सिद्धान्तों से सम्बन्धित और गम्भीर किस्म के बौद्धिक विचारों की प्रस्तुति की जाती है ।''[98] गुरमति संगीत में अष्टपदी का गायन प्रबन्ध के अनुरूप ही किया गया है ।

शास्त्रीय संगीत में प्रबन्ध को 'प्रकृष्ट रूपेण बन्ध' कहा गया है अर्थात वह गेय रचना, जिसमें अंगों को भलीभान्ति, सुन्दर रूप से बाँधा गया हो ।[99] प्रबन्ध में उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक और आभोग आदि धातु रहते थे । मध्यकालीन अनेक संतों के पद, प्रबन्ध गायन रूप पर आधारित थे जिन्हें अष्टपदी कहा जाता था । अष्टपदी का प्रयोग लगभग सभी गुरू साहिबान ने अपनी वाणी में किया है । उनसे पूर्व के सन्त भक्त कवियों के द्वारा भी अष्टपदी का प्रयोग किया जाता था । बारहवी शताब्दी में बंगाल के प्रसिद्व भक्त कवि और संगीतकार जयदेव ने प्रबन्ध के इस गायन रूप का प्रयोग अपनी अष्टपदियों में विभिन्न रागों, गुजरी, बंसत, रामकली, करनाट, भैरवी और विभास

96. *पंजाबी साहित कोश,* (भाग प्रथम), प.30
97. काहन सिंह नाभा (भाई), *गुरू छंद दिवाकर,* पृ. 43.
98. अमृत पाल कौर (डा.), *गुरबाणी अध्ययन नवपरिपेख,* पृ.48
99. वसंत, *सगीत विशारद,* संपा लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ.227

आदि में किया । भारतीय संगीत और भारतीय साहित्य में जयदेव कृत अष्टपदियां गीतगोबिन्द उत्कृष्ट रचनायें हैं । यह रचनायें प्रबन्ध गायन के अर्न्तगत गाई जाती हैं । जिनमें प्रबन्ध के दो धातु उदग्राह और ध्रुव विद्यामान रहते हैं । मेलापक और आभोग का प्रयोग इन अष्टपदियों में नहीं मिलता । जयदेव ने जिन अष्टपदियों की रचना की वह निहसरा, यति, एकताल और अष्टतालों में निबद्व थे ।[100] आदि ग्रन्थ में भी जयदेव द्वारा रचित दो शब्द राग गुजरी[101] और राग मारू[102] में मिलते हैं । गीत गोबिन्द में वर्णित जयदेव की एक अष्टपदी का काव्य रूप निम्न प्रकार से है :

- शि्तकमलाकुचमन्डल धृतकुन्डल
  कलितललितवनमाल
  जय जय देव हरे ।। ध्रुव ।। १ ।।
  दिनमणिमन्डल भवखन्डन
  मुनिजनम नसहन्स ।। २ ।।
  कालियविशधरगन्जन जनरन्जन
  यदुकुलनलि न दिनेश ।। ३ ।।
  मधुमुरनरकविनाशन गरूडासन
  सुरकुलकेलिनिदान ।। ४ ।।
  अमल कमल दल लोचन भवमोचन
  त्रिभवनभव निधान ।। ५ ।।

---

100. सुनिती कुमार चटर्जी, *जयदेव,* पृ. 66
101. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* जयदेव, पृ. 526
102. वही, पृ. 1106

जनकसुताक्ि्ताभूषाण जितदूषण

समरशमितदशकन्ठ ।। ६ ।।

अभिनवजलधरसुंदर धृतमन्दर

श्रीमुचन्द्रचकोर ।। ७ ।।

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय

कुरू कुशलम प्रणतेसु ।। ८ ।।

श्री जय देवकवेरिदम कुरुते मुदम

मन्गलमुज्जवल गीतम ।। ।।[103]

गुरमति संगीत में भी अष्टपदियों के अर्न्तगत प्रबन्ध के उदग्राह और ध्रुव प्रयुक्त होते हैं । मेलापक और आभोग का प्रयोग नहीं किया जाता । ''प्रबन्ध गायन अनुसार अष्टपदी का गायन सिक्ख कीर्तनियों में प्रचलित नहीं ।।''[104]

राग गाऊडी बैरागणि के अर्न्तगत अष्टपदी में ध्रुव के रूप में रहाऊ विद्यमान है और (१) का अंकन उदग्राह के रूप में मिलता है । इसमें 'मेलापक' ना होकर बाकी तुकों को अंतरे के रूप में गाया जाता है । इस रचना का संगीतिक रूप निम्न प्रकार से है :

जिऊ गाई कऊ गोयिली राखहि करि सारा ।।

अहनिसि पालहि राखि लेहि आतम सुखु धारा ।। १ ।।

---

103. सुनिती कुमार चटर्जी, *जयदेव*,पृ. 59

104. अमृतपाल कौर (डा.) *गुरबाणी अध्ययन: नव परिपेख*, पृ.100

इत उत राखहु दीन दइियाला ।।

तऊ सरणागति नदरि निहाला ।। १ ।। रहाऊ ।।

जह देखऊ तह रवि रहे रखु राखनहारा ।

तूं दाता मुगता तूं है तूं प्राण आधारा ।। २ ।।[105]

गुरू सहिबान ने विभिन्न रागों में अष्टपदी की रचना की है जैसे : सिरी, माझ, गऊड़ी गुआरेरी, गऊडी बैरागणि, आसा, आसा काफी, गुजरी, सोरठि, सूही, सूही काफी, बिलाबल, रामकली, रामकली दखनी, बसंत, भैरव, सारंग, मलार, प्रभाती विभास और प्रभाती दखनी । राग सिरी में श्री गुरू नानक देव जी द्वारा रचित अष्टपदी निम्न प्रकार से है :

आपे गुण आपे कथै आपे सुणि वीच रू ।

आपे रतनु परखि तू आपे मोलि अपारू ।।[106]

श्री गुरू नानक देव जी, श्री गुरू अमरदास जी, श्री गुरू रामदास जी और श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा रचित 'सुखमणी साहिब' एक उत्कृष्ट काव्यमयी एवं संगीतमयी वाणी रचना है । जिसमें 24 अष्टपदियां है जिन्हें गाऊडी राग के अर्न्तगत रखा गया है । राग गाऊडी में सुखमणी वाणी में चौपाई छंद की रचना निम्न प्रकार से है :-

- सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ।।

कलि कलेस तन माहि मिटावउ ।।[107]

---

105. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 228

106. वही, सिरी राग, महला 1, पृ. 54-55

107. वही, पृ. 262

प्रथम गुरू श्री गुरू नानक देव जी द्वारा 102 अष्टपदियों को भिन्न-भिन्न रागों में अकिंत किया गया है । आपजी द्वारा रचित अष्टपदियों में पद और तुकों को कम या ज्यादा किया गया है । राग मलार में तृतीय अष्टपदी एक तुक की है और 'रहाउ' के बिना इसकी गिणती दस तक पहुँचती है । राग रामकली में नौवीं अष्टपदी में एक-एक तुक पच्चीस तुकों की है । दो-दो तुकों या एक-एक पद की अष्टपदियों में गऊड़ी राग में छठी, आठवीं, सोलहवीं, राग सूही में पहली, राग मारू में दूसरी, गुजरी में पहली, राग रामकली में पहली और सातवीं, राग भैरव में पहली, राग सारंग की दोनो, राग मलार में पहली और दूसरी अष्टपदी । कई बार एक पद तीन-तीन तुकों का भी होता है । आदि ग्रन्थ में उल्लेखित अष्टपदियां भिन्न छदों में प्राप्त होती हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं:

राग मारू की अष्टपदी जो निशानी छंद में है :-

- हुकमु भइआ रहणा नही धुरि फाटे चीरै ।।
  ऐहु मनु अवगणि बाधिआ सहु देह सरीरै ।।[108]

राग गाऊडी की अष्टपदी जो चौपाई छंद में है :

- ना मनु मरे ना कारजु होई ।।
  मन वसि दूता दुरमति दोई ।।[109]

राग मल्हार में रचित अष्टपदी सार छंद में हैं :

---

108. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ० 1012
109. वही, पृ. 22

- चकवी नैन नींद नहि चाहै बिनु पिर नींद न पाई ।।
सूरू चरे प्रिउ देखै नैनी निवि निवि लागै पाई ।। १ ।।[110]

पद में तुकों की विभिन्नता एवं विविधता के इलावा यह अष्टपदियाँ मात्रा पक्ष से भी विलक्ष्ण हैं । अष्टपदी में तुकों और मात्राओं में अन्तर आने के कारण ही कई अष्टपदियों का तोल अन्य कावि रूपों से जा मिलता है । जैसे राग सूही में दूसरी अष्टपदी की तूकें दोहरे का रूप धारण करती प्रतीत होती हैं और अंतिम तीन तुकें अड़िल के रूप से मिलती हैं । राग रामकली में आठवीं और नौवीं अष्टपदी एक-एक तुक में रचित है परन्तु तोल दवईऐ साथ मिलता है ।[111]

इस प्रकार यह कि गुरमति संगीत में अष्टपदी का विशिष्ट स्थान है । गुरमति संगीत में अष्टपदी का प्रयोग गुरू साहिबान द्वारा वाणी सजृना के लिये किये गये विभिन्न प्रयोगों द्वारा न केवल उसे भारतीय सनातनी काव्य से भिन्न करता है अपितु नवीनता एवं मौलिकता भी प्रदान करता है ।

गुरमति संगीत में वर्णित अष्टपदियों की यह विशेषता है कि इसमें केन्द्रीय भावों की पक्तिंयो को रहाऊ के अर्न्तगत अंकित किया गया है और इसमें प्रकट किये गये मूल एवं बुनियादी विचारों पर अष्टपदी में वर्णित शेष पद विचरण करते हैं । श्री गुरू नानक देव जी ने अपनी समकालीन प्रचलित अष्टपदियों के स्वरूप के गुणों को न तो

---

110. वही, पृ. 1273
111. हरबंस सिंह (प्रो.) *गुरू नानक देव दी कावि कला,* पृ. 234-35

अपनी वाणी में निहित किया परन्तु उसका परम्परागत अनुसरण न करते हुये आपने केन्द्रीय विचारों के अनुरूप इसका आकार निर्मित किया है ।

आधुनिक काल में अष्टपदियों के मूल स्त्रोत 'प्रबन्ध' का प्रचार नहीं है परन्तु गुरमति संगीत में अष्टपदी गायन इसी विधि के अनुसार किया जाता है । जिसमें रहाऊ की पक्तियों को स्थाई का रूप दिया जाता है व अन्य पदों को विभिन्न अंतरों के रूप में गाया जाता है ।

पद : भारतीय संगीत में 'पद' काव्य बन्द के रूप में गाया जाता है । जिसे गाने की अपनी ही परम्परा है । गुरमति संगीत में दोपदे, तीपदे, चौपदे और पंचपदे आदि प्रयुक्त किये गये है । इन पदों को मध्यकाल में प्रचलित ध्रुपद अंग से गाया जाता है । ''ध्रुव का अर्थ है अचल एवं चिरस्थायी । ईश्वर की गुणगाथा में ध्रुवपद का व्यवहार प्राचीन काल में होता था''[112]

'अनूपसंगीत-रत्नाकर' में ध्रुवपद की व्याख्या इस प्रकार की है :-

गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम् ।
द्विचतुर्वाक्य संपन्नं नरनारी कथाश्रयम् ।।
श्रृंगार रसभावाद्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतनुप्रास युक्तं पादानयुगकं च वा ।।

---

112. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष*, पृ० 65

प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवका भोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ।।[113]

ध्रुवपद में चार भाग स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग रहते है । पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को ध्रुवपद का आविष्कारक माना जाता है । मध्यकाल में स्वामी हरिदास और उनके शिष्य तानसेन, बैजूबावरा और रामदास के द्वारा ध्रुपद का बहुत प्रचार हुआ । संगीतकारों के इलावा संत कवियों कबीर, सूरदास आदि ने भी ध्रुपद गायन शैली को माध्यम बनाया ।

मध्यकाल में पद गायन को ध्रुवपद अंग या ध्रुवपद शैली में गाये जाने का प्रचलन था ।

''राग प्रकाशक स्वर रचना को 'पद' कहा जाता है । . . . . पद को राग-पद अथवा राग-प्रकाशक-पद अथवा स्वर-शब्द भी कहा जाता है ।''[114] पद की एक अन्य व्याख्या के अनुसार ''जिन विशेष अक्षर या वाक् समूहों से किसी गत या गीत का बोध किया जाता है, उस शब्दावली को 'पद' कहा जाता है । कविता के भिन्न-भिन्न चरण या भाग को भी साहित्य में पद कहा जाता है ।''[115]

गुरमति संगीत के अर्न्तगत लगभग सभी गुरू साहिबान और संत भक्तों के पद गायन शैली के रूप में भी गुरू ग्रन्थ साहिब में विद्यमान है जिसमें पदों को 'शब्द' कहा गया है और पद गायन को 'शब्द' गायन का नाम दिया जाता है । पद को सरोदी

113. उद्धत, *संगीत विशारद, बसंत, लक्ष्मी नारायण गर्ग (संपा)* पृ० 232
114 विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ० 70
115 बन्धोपाध्याय, श्री पद, *संगीत भाष्य,* पृ० 206

कविता का काव्य रूप माना जाता है। पद का अर्थ है कि पंक्तियों का समूह । ''वह छंद जो काव्य, वर्ण, गण और मात्रा के नियम में आ जाये, उसकी पद संज्ञा है । '' [116] पद में पंक्तियों की संख्या के आधार पर इनका नाम रखा गया , जिस प्रकार दो, तीन, चार पाँच और छ: बन्द की पंक्तियों को क्रमश: दुपदे, तीपदे, चौपदे, पंच पदे और छ:पदे कहा गया है ।''[117]

श्री गुरू नानक देव जी की वाणी में तीन दुपदे, नौ तीपदे, सौलह चौपदे, बीस पंचपदे और पाँच छहपदे मिलते है ।

---

116 काहन सिंह नाभा भाई, *महान कोश,* पृ० 740

117. तारन सिंह (ड़ा.), गुरू *नानक चिन्तन ते कला,* पृ० 43

क्रमांक	राग का नाम	राग प्रकार	पृ. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में
1.	सिरी	- - -	14
2.	माझ	- - -	94
3.	गऊड़ी	- - -	151
		1 गऊडी गुआरेरी,	151
		2 गऊडी दखनी	152
		3 गऊडी चेती	154
		4 गऊडी बैरागणि	156
		5 गऊडी पूर्वी दीपकी	157
		6 गऊडी पूर्वी	242
		7 गऊडी दीपकी	12
		8 गऊडी माझ	172
		9 गऊडी मालवा	214
		10 गऊडी माला	214
4.	आसा	- - -	347
		1 आसा - काफी	365
		2 आसावरी	409
5.	गुजरी	- - -	489
6.	देवगंधारी	- - -	527
		1 देवगंधार	531
7.	बिहागड़ा	- - -	537
8.	वडहंस	- - -	557
		1 वडहंस दखनी	580
9.	सोरठि	- - -	595
10.	धनासरी	- - -	13/660
11.	जैतसरी	- - -	696
12.	टोडी	- - -	711
13.	बैराड़ी	- - -	719
14.	तिलंग	- - -	721
		1 तिलंग काफी	726

15.	सूही	- - -	728
		1 सूही काफी	751
16.	बिलावल	- - -	794
		1. बिलावल दखनी	843
17.	गौड़	- - -	859
		1 बिलावल गौड़	874
18.	रामकली	- - -	876
		1 रामकली दखनी	907
19.	नट नारायण	- - -	975
		1 नट	975
20.	मालीगौड़ा	- - -	984
21.	मारू	- - -	989
		1 मारू काफी	1014
		2 मारू दखनी	1033
22.	तुखारी	- - -	1107
23.	केदारा	- - -	1118
24.	भैरउ	- - -	1125
25.	बसंत	- - -	1168
		1 बसंत हिंडोल	1171
26.	सारंग	- - -	1197
27	मल्हार	- - -	1254
28.	कानड़ा	- - -	1294
29.	कल्याण	- - -	1319
		1 कल्याण भोपाली	1321
30.	प्रभाती	- - -	1327
		1 प्रभाती विभास	1327
		2 प्रभाती दखनी	1343
		3 विभास प्रभाती	1347
31.	जैजैवन्ती	- - -	1352

श्री गुरू नानक देव जी ने अपनी वाणी में पद के केन्द्रीय भाव को सदृढ़ करने हेतु यद्यपि पद के भावों को पूर्ण रूप लय प्रदान की परन्तु उनकी मात्राओं को कम या ज्यादा किया है। इसका उदाहरण राग आसा में प्राप्त एक पद से मिलता है :

तितु सरवरडे भईलै निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ।। - 33 मात्रा

पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डुबीअले ।।।।। - 31 मात्रा

मन एक न चेतसि मूड़ मना ।। - 16 मात्रा

हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।।।।। रहाऊ ।। - 16 मात्रा

न हऊ जती सती नहीं पड़िआ मूरख मुगधा जनम भईया ।। - 32 मात्रा

प्रणवति नानक तिन की सरणा जिन तू नाह बिसरीआ ।। - 31 मात्रा[118]

इस पद के प्रथम पंक्ति में 33 मात्राएं व दूसरी में 31 मात्राएं हैं । रहाऊ की पंक्ति में 16 - 16 मात्राएं हैं परन्तु इनकी काव्य लय में कोई अन्तर नही आता ।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में पद के अर्न्तगत संगीतिक संकेत राग, रहाऊ, अंक, घरू दिये गये हैं जिनसे इन पदों को व्यावहारिक रूप में गाया जा सकता है । रहाऊ जिसमें पद का केन्द्रीय भाव मौजूद होता है, स्थाई माना जा सकता है । ध्रुपद में इसे ध्रुव का नाम दिया गया है ।

''गुरबाणी में इस रहाऊ (ध्रुव) रूपी गायक संकेत में अध्यात्मिक अनुभव और बोध की अटल सच्चाई विद्यमान है, जो चिर स्थाई है । इस कारण इसको शब्द रचना

---

118. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* राग आसा, महला 1, पृ० -

के स्थाई धुरे (ध्रुव) के रूप में केन्द्र मान कर बार-बार गाना है ।''[119] श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में सभी गायन रूपों से ज्यादा पद गायन शैली को प्रयुक्त किया गया है । जिनमें गुरू साहिबान ने काव्य सृष्टि हेतु ध्रुपद के शास्त्रीय रूप के नियमों को छोड़ दिया है, जैसे दुपदे और तिपदे आदि में ध्रुपद के सभी अंग विद्यामान नहीं रहते परन्तु इन पदों का गायन ध्रुपद अंग से ही किया जाता है । इस प्रयोग द्वारा यह पद मौलिकता एवं नवीनता के धारणी हैं, जो वाणी प्रबन्ध की विशिष्टता के उदाहरण है ।

---

119. अमृतपाल कौर (डा.), *गुरबाणी अध्ययन : नव परिपेख* , पृ० 49

पड़ताल : पड़ताल को पटताल, पंचताल, परतताल और पड़ततताल भी कहा जाता है । पड़ताल को विभिन्न अर्थों में भी लिया जा सकता है। परन्तु उपयुक्त अर्थ तालों के अर्न्तगत प्रस्तुत किया जाता है। व इसके विभिन्न अर्थों के अनुसार पड़ताल वह काव्य रचना है जिसे विभिन्न विस्तारों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है । पड़ताल में गायन प्रस्तुति के अर्न्तगत विभिन्न पाँच तालों का प्रयोग किया जाता है । ''आधुनिक काल में भारतीय संगीत में पड़ताल प्रचलित नही है परन्तु पुरातन भारतीय संगीत ग्रन्थों में 'पंचतालेश्वर' नामक गायन शैली के साथ इसका अस्पष्ट तौर से सबंध जोड़ा जाता है ।'' [120] जिसे पाँच तालों से युक्त रचना माना जा सकता है । उसी प्रकार पद के विभिन्न बन्दों को विभिन्न तालों में गायन विधि को पड़ताल कहा जाता है ।

जिस प्रकार एक बन्दिश में अलग - अलग रागों के प्रयोग को राग सागर या राग माला कहते हैं इसी तरह एक बन्दिश में अलग - अलग तालों के अर्न्तगत गायन को पड़ताल कहा जाता है । [121] पड़ताल का गायन रूप गुरमति संगीत में विशिष्ट स्थान रखता है । आदि ग्रन्थ में विभिन्न रागों के अर्न्तगत श्री गुरू रामदास जी की उन्नीस पड़तालें दर्ज हैं । बिलाबल राग में आप जी द्वारा रचित पड़ताल इस प्रकार है: -

बोलहु भईआ रामनामु । [122]

---

120. श्री मानवलीकृष्ण कवि, *भरत कोष,* पृ० 344
121. नरूला, दर्शन सिंह (डा.), *गुरबाणी संगीत बारे,* पृ० 76
122. श्री गरू ग्रन्थ साहिब, *महला 4,* प० 800

श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा रचित 36 पड़तालें आदि ग्रन्थ में मिलती हैं । राग धनासरी में आप जी की रचना इस प्रकार है:

- हलति सुखु पलति सुखु ।[123]

''गुरमति संगीत में पड़ताल को पद रचना होने के कारण ध्रुपद अंग से गाये जाने की रीति है । . . . . पड़ताल को भिन्न-भिन्न तालों में निबद्ध करके गाया जाता है । पुरातन कीर्तनियों के विचार अनुसार इसको भिन्न-भिन्न पाँच तालों में निबद्ध किया जाना चाहिए ।''[124] गुरमति संगीत में पड़ताल गायन शैली में प्रयुक्त तालों के विषय में विद्वानों के मतभेद हैं । भाई काहन सिंह नाभा इस विषय में लिखते हैं कि 'यह छंद जाति नही, किन्तु चारताल का भेद पटताल है, इस ताल में गाये जाने वाले पदों की 'पड़ताल' संज्ञा हो गई है, बेशक वह किसी धारणा के हैं ।''[125] परन्तु पड़ताल को चारताल का भेद नही माना जा सकता । क्योंकि यह रचना यदि पड़ताल के अनुसार गाई जाती तो तालों के बदलाव और विभिन्न तालों के प्रयोग से युक्त नहीं होती । पड़ताल की नई और पुरानी रीतियाँ से प्रत्यक्ष होता है कि यह रचना विभिन्न तालों में निबद्ध करके गाई जाती है ।

आदि ग्रन्थ में पड़ताल को तीन प्रकार से वाणी के ऊपर अंकित किया गया है । यह प्रकार निम्न रूप से है:

---

123. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ० 683
124. *अमृतपाल कौर* (डा.) गुरबाणी अध्ययन : नव परिपेख, पृ.105
125. काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ० 747

- आसा महला 5 घरू 15 पड़ताल [126]
- नट पड़ताल महला 5 [127]
- सारंग महला 4 घरू 5 दुपदे पड़ताल [128]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित यह शीर्षक स्पष्ट करते हैं कि राग, घरू, काव्य रूप और पड़ताल भिन्न-भिन्न संकेत है । गुरमति संगीत में घरू को ताल का संकेत माना जाता है । इसलिये पड़ताल को चार ताल के भेद पटताल मान लेना सर्वथा गल्त प्रतीत होता है । पड़ताल के अर्न्तगत घरू 9, 13, 15, 5 इत्यादि प्रयुक्त किये गये हैं जिससे सिद्ध होता है कि पड़ताल में केवल एक ताल का प्रयोग नहीं अपितु विभिन्न तालों का प्रयोग होता था । कीर्तनकारों के अनुसार पड़ताल को पाँच तालों में निबद्ध करना चाहिये । परन्तु कुछ कीर्तनकार यह मानते हैं कि पड़ताल का आरम्भिक गायन ही पाँच तालों से युक्त हो । परन्तु सर्वमान्य मत के अनुसार पड़ताल गायन में तालों का बदलाव और तालों की संख्या पाँच होनी चाहिये ।

पड़ताल का गायन स्वरूप :- पड़ताल को एक ही राग में निबद्ध करके गाया जाता है । पड़ताल की स्थायी (रहाऊ) की तुक को किसी एक ताल में निबद्ध कर लिया जाता है । रहाऊ के गायन में यह ताल स्थायी ही हो जाती है । अन्तरे के तुकों में तालों को बदल दिया जाता है तत्पश्चात् फिर से स्थायी की ताल में गायन किया

---

126. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* पृ. 408
127. वही, पृ. 927
128. वही, पृ. 1200

जाता है । पड़ताल के काव्य-स्वरूप का विशिष्टतम अंकन श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में किया गया है । चतुर्थ गुरू श्री रामदास जी और पंचम गुरू श्री गुरू अर्जुनदेव जी ने पंचवजा पड़तालों की रचना की है । इनका अध्ययन करने से यह पड़तालें सहज रूप में शेष वाणी से भिन्न लगती हैं । कुछ पड़तालों का उल्लेख निम्न प्रकार है :

- हरि गुन गावहु जगदीस ।।
  ऐका जीह कीचै लख बीस ।।
  जपि हरि हरि सबदि जपीस ।।
  हरि हो हो किरपीस ।। १ ।। रहाऊ
  हरि किरपा करि सुआमी हम लाइ हरि सेवा
  हरि जपि जपे हरि जपि जपे जपु जापऊ जगदीह ।।
  तुमरे जन रामु जपहि ते उत्तम तिन कऊ हऊ
  घुमि घुमे घुमि घुमि जीस ।।१।।
  हरि तुम वढ़ वढ़े वढ़े वढ़ ऊचे सो हरहि जितु धु भावीस ।।
  जन नानक अमृत पीआ गुरमती धनु धन्नु
  धनु धन्नु धन्नु गुरू साबीस ।।२।।२।। ८ ।।[129]

पड़ताल के काव्य रूप में शब्द और शब्द जोड़ों को बार-बार दोहराया गया है । इसको काव्य दृष्टि से 'वीपसा' शब्द अलंकार माना जाता है । श्री गुरू गंन्थ साहिब में दीपक अलंकार के अर्न्तगत पदावृती -

---

129. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, *कानडा महला 4*, पृ० 1286

दीपक अलंकार भी पड़ताल के रूप में मिलते हैं जैसे :

- अनिक गिआन अनिक धिआन
  अनिक जाप - जप ताप ।।
  अनिक गुनित धुनित बाज निमख - निमख
  अनिक स्वाद अनिक दोष अनिक रोग
  मिटहि जस सुनी ।। [130]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी में कुछ पड़तालों की संरचना दो या तीन तुकों में भी की गई है । जैसे श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा रचित राग मल्हार में पड़ताल निम्न प्रकार से है: -

- घन गरजत गोबिन्द रूप [131]

गुरमति संगीत में प्रयुक्त पड़ताल गायन को भारतीय संगीत एवं काव्य के छन्द के समान माना जा सकता है । ''छन्द में मृदंग के बोल आते हैं जिन्हें लय और ताल के दृष्टिगत गाया जाता है । इसलिये इनके नाम के साथ संगीत पद जोड़ा गया है ।[132] दशम ग्रन्थ में इसी प्रकार के छन्द प्राप्त होते हैं जिनके शब्दों को ताल व लय में मृदंग के बोलो से बनाया गया है ।

पड़ताल की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इस में शब्दों की लयात्मकता विभिन्न तालों के अनुसार है । इसी विशेषता का ही एक गायन रूप भारतीय संगीत में

---

130. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, *भैरऊ, महला 5, पड़ताल घर 3*, पृ० 1153
131. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, *मल्हार, महला 5, पड़ताल घर 3*,पृ० 1273
132. भाई काहन सिंह नाभा, *गुरू छन्द दिवाकर*, पृ० 82

188

भी प्राप्त होता है जिसे पड़ाल कहा जाता है । भारतीय संगीत कोष के अनुसार ''मृदंगादि के बोलों के विभिन्न शब्द अथवा वाद्य जिस रूप में हाथ से निकाले जाते हैं उसी को 'पड़ाल' कहा जाता है । अन्य अर्थ के अनुसार किसी भी श्लोक की वाणी के छंद के अनुरूप आनद्ध वाद्य पर वादनोपयोगी बोलों को भी श्लोक वाणी का 'पड़ाल' कहा जाता है ।

श्लोक - तद्नेह भूषित अहिरिक फणा

पड़ाल - धेत् धेरे केटेताक द्रेगधेनेताना ।।[133]

उपरोक्त श्लोक और पड़ाल के शब्दों एवं बोलों के लयात्मक सम्बन्ध से स्पष्ट है कि तालमुखी शब्दों की काव्य रचना को 'पड़ाल' कहा जाता था । इसी प्रकार पड़ताल में भी तालों को बार - बार बदलना इसी लयात्मिकता की विभिन्नता पर आधारित है । इसी लिये पड़ताल को पड़ + ताल अर्थात जिसे गायन में शब्द रचना का पाठ ताल की भाँति किया जाये, भी कहा जा सकता है ।

---

133. चौधरी, विमल कांत राये, *भारतीय संगीत कोष,* पृ० 70

देसी अंग के गायन रूप :– गुरमति संगीत में शास्त्रीय गायन रूपों के इलावा देसी अंग से भी गायन रूप उपलब्ध होते हैं । गुरू साहिबान ने अपनी समकालीन प्रचलित देसी संगीत में भी वाणी की रचना की । देसी संगीत से अभिप्राय लोक संगीत अथवा लोगों द्वारा रचित संगीत से है । भारतीय संगीत कोष में उल्लेखित है ''शास्त्रीय संगीत को छोड़कर अन्य समस्त संगीत ही देशी संगीत के अर्न्तगत आता है । प्रान्त-प्रान्त में जो स्थानीय गीत प्रचलित हैं, वह देशी हैं । लोक संगीत, लघु संगीत, रम्य संगीत इत्यादि को देशी संगीत ही कहते हैं । कीर्तन को भी देशी संगीत कहा जाता है यद्यपि उसे शास्त्रीय संगीत के अर्न्तगत लेना युक्तिसंगत है ।''[134]

गुरमति संगीत में देसी अंग से गाये जाने वाले गायन रूप लोक संगीत पर ही आधारित है । जिसमें लोक काव्य, स्वर एवं लय को सम्मिलित रूप में प्रयुक्त किया जाता है । गुरमति संगीत के अर्न्तगत इन देसी गायन रूप शैलियों को उनकी धुनों से सम्बन्धित रागों के अधीन विशिष्ट स्थान दिया गया है । गुरू साहिबान ने वाणी की सृजना के मौलिक गुणों को ध्यान में रखते हुये लोक गायन रूपों पर गुरमति विधान का अंकुश लगा कर इनकी चंचलता और खुलेपन को गम्भीर्य प्रदान किया ।

इस प्रकार यह लोक गायन रूप भाव अभिव्यक्ति और विषय की सहज प्रस्तुति में सहायक बन पड़ते हैं । गुरमति संगीत के अर्न्तगत आने वाले लोक गायन रूपों में सोहिला, वार, अलाहुणियां, छंत, घोडियां, मुंदावणी, अंजुली आदि अपने लोक मन की

---

134. चौधरी विमल कांत राय, *भारतीय संगीत कोष,* पृ० 63

अभिव्यक्ति के मूल गुणों के साथ ही विशिष्ट गीत रूप भी हैं । गुरमति संगीत में इन देसी गायन रूपों को राग, धुनी, रहाऊ, अंक इत्यादि शीर्षकों से अंकित किया गया है इन गायन रूपों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है :

वार :– देसी गायन रूप के अर्न्तगत वार एक प्रसिद्ध लोक काव्य रूप है, जिसमें योद्धाओं की वीरता और बहादुरी का गुण–गान संगीत के द्वारा किया जाता है । वार गायक को 'ढाढी' कहा जाता है । वार की रचना 'पाऊडी' नामक छंद और श्लोकों पर आधारित होती है । यह गायन शैली वीर रस से ओत–प्रोत रहती है जिसे गाने के लिये तार सप्तक के स्वरों को प्रयुक्त किया जाता है ।

गुरमति संगीत में आसा, मल्हार, माझा इत्यादि रागों में वारों की रचनाएं मिलती हैं । इन वारों को निश्चित धुनों में गाने के संकेत है । कुछ वारों की धुनें निम्न प्रकार है :

– टुण्डे असराजे दी धुनी [135]

'टुण्डे असराजे दी धुनी' श्री गुरू नानक देव जी द्वारा रचित है जो राग आसा के अर्न्तगत है । टुण्डे 'असराजे की वार' लगभग हजार वर्ष पुरानी है । यह 'अस' देश के राजे की वीर गाथा है । रागा आसा 'आस' देश की लोक धुनों से विकसित हुआ राग माना जाता है । – इसमें कोई संदेह नही कि 'अस' की प्रचलित और प्रामाणिक

---

135. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,पृ० 462

धुन टुण्डे असराजे की वार धुन ही होगी जो सीना-व-सीना बुजुर्ग ढाढियों और रबाबियों के पास आज भी सुरक्षित है । गुरू नानक वाणी अधीन 'आसा की वार' का गायन गुरमति संगीत में आरम्भ से ही रहा है । इस वार की पाऊडी लगाने का ढ़ंग भी परम्परागत और विशिष्ट है जो टुण्डे असराजे की वार की धुनी ऊपर आधारित है ।[136]

वारों के ऊपर लोक-धुनों के साथ-साथ राग, घरू आदि के संकेत भी अंकित किये गये हैं :

वार माझ की तथा सलोक महला १

मलक मुरीद तथा चन्द्रहडा सोहीआ की

धुनी गावणी ।[137]

गुरमति संगीत में प्रचलित 'वारें' काव्य रूप के साथ-साथ राग और धुनों में भी विशिष्टता धारण करती है ।

छंत :- गुरमति संगीत में 'छंत' का लोक काव्य रूप है । 'छंत' को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है । छंत को संस्कृत भाषा का शब्द माना गया है ।

छंत संस्कृत के छंदस शब्द का विकसित रूप है और इसमें मात्रा, वर्ण, यति आदि के नियम है ।[137] एक अन्य धारणा के अनुसार इसका प्रयोग उन गीतों के लिये होता है जो विवाह के अवसर पर वर अपनी सालियों को सुनाता है ।[138] छंत को छंद

---

136. Gurnam Singh (Dr.) *The Musicological study of Guru Nanak Bani (Thesis)* Punjab University, Chandigarh, Page 227-228
137. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ० 137
137. *बृहत हिन्दी कोश,* पृ० 464
138. *पंजाबी कोश,* (भाग दूसरा), पृ० 433

का ही रूप माना जा सकता है । छन्द की परिभाषा के अनुसार किसी भी वाक्य के पदों की यदि संतुलित शब्द-झंकार एवं यति अथवा प्रस्वन युक्त धारावाहिकता में रचना की जाये तो उस वाक्य को शब्द झंकार और प्रस्वन (ध्वनि) की विशिष्टता को छन्द कहा जाता है ।'[139] भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार 'वह कात्य' जिसमें मात्रा, अक्षर, गण आदि के नियमों की पाबन्दी हो ।'[140] 'पद कवि को छंत कहा जाता है '[141] भाई वीर सिंह जी ने इसको काव्य की कोई रचना, हरि जस का गीत कहा है ।[142]

छंत श्रृंगार रस के काव्य में रचित होते हैं । जिन्हें राग गाऊडी, गाऊडी पूर्वी, आसा, वडहंस, धनासिरी, बिलाबल दखनी और तुखारी रागों में गाया जाता है । श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा राग आसा में छंत निम्न प्रकार से है :

अनदो अनदु घणा मै सो प्रभु डीठा राम,
चाखिअडा चाखिअडा मै हरिरसु मीठा राम,
हरिरस मीठा मन महि वूठा
सतिगुरू तूठा सहजु भईआ ।
ग्रिह वसि आइआ मंगल् गाईआ
पंच दसु ओई भाग गाईआ
सीतल आघाणे अमृतबाणे
साजन संत बसीठा

---

139. चौधरी, विमल कांत राय, *भारतीय संगीत कोश,* पृ० 34
140. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ० 495
141. भाई काहन सिंह नाभा, *गुरू छन्द दिवाकर,* पृ० 187
142. *श्री गुरू ग्रन्थ कोश,* पृ० 333

कहु नानक हरि सिउ मनु

मानिआ सो प्रभु नैणी भीठा ।[143]

राग वडहंस में छंत का काव्य रूप निम्न प्रकार है :

तेरे बंके लोइण दन्त रीसाला ।।

सोहणे नक जिन लम्डे वाला ।।

कंचन काया सुइने की ढाला ।।

सोवंन ढाला कि्सन माला जपहु तुसी सहेली हो ।।[144]

छंत पंजाबी लोक संगीत में प्राय: ख्माज और पीलू रागों में गाये जाते हैं । गुरमति संगीत में छंत आसा, गाऊडी, वडहंस, धनासिरी, तुखारी, बिलाबल और सूही रागों के अर्न्तगत रचे गये हैं । छंत में चार बंद होते है और प्रत्येक बंद में छ: तुक्के होती हैं परन्तु गुरमति संगीत में गाये जाने वाले छंतो के पदों की संख्या सात, आठ, नौ और सत्तरह भी होती है । छंतों में बंदों को क्रमवार गाया जाता है इसलिए स्थाई, अन्तरा नही रहते ।

रात्रिकाल में श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के सुखासन के बाद महाराज की सवारी को विश्राम के लिये ले जाते समय 'जिथे जाई बहै मेरा सतिगुरू' छंत का गायन बिना वाद्य के सामूहिक रूप में किया जाता है । श्री गुरू रामदास जी के छंतों को रोजाना गाया जाता है ।

---

143. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, आसा, महला 5, पृ०

144. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ० 567

अलाहुणी: – अलाहुणी शब्द की उत्पति अलाहना से हुई है, जिसका अर्थ है गुणगान । इस प्रकार अलाहुणी एक ऐसा गीत या कविता है जिसमें किसी व्यक्ति विशेष के गुण-गान अथवा उस्तति की जाये । 'वह गीत जिसमें किसी के गुण गाये जाये, विशेष रूप में दिवंगत प्राणी के गुण कर्म कहकर जो गीत गाया जाता है, उसका नाम अलाहणी है ।[145] अलाहुणी शोकमय काव्य रूप है ; जिसमें मृतक प्राणी के गुणों को शोकपूर्ण स्वरों में गाया जाता है । पंजाब की लोक काव्य परम्परा में इसका प्रचलन आम है ।

गुरमति संगीत में अलाहुणी को काव्य संगीत के रूप में प्रयुक्त किया गया है । जिसके द्वारा मानव को मृत्यु की अटल सच्चाई से अवगत करवाया गया है व उसे जीवन काल में श्रेष्ठ कर्म करने, मृत्यु को याद रखने व भगवान को याद रखने की शिक्षा दी गई है । श्री गुरू नानक देव जी और श्री गुरू अमरदास जी ने अपनी वाणी में इस काव्य रूप को प्रयोग किया है । राग वडहंस में श्री गुरू नानक देव जी द्वारा रचित अलाहुणी निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है :

– धन्नु सिरन्दा सचा पातिसाहु जिनि जगु धन्धे लाइया ।।
मुहलति पुन पाई भरी जालीअडा घति चलाइया ।।
जानी घति चलाईया लिखिआ आइया रुन्ने वीर सबाए ।।

---

145. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष*, पृ० 85

काईआ हंस थीआ वेछोडा जां दिन पुन्ने मेरी माये ।।

जेहा लिखिआ तेहा पाईआ जेहा पुरबि कमाइया ।।

घन्नु सिरन्दा सचा पातिसाहु जिनि जगु धन्धे लाइआ ।। १ ।।[146]

इस अलाहुणी में शोकमयी वातावरण को चित्रित करने के लिये उपयुर्क्त शब्दों को लम्बा करके हेक के साथ संगीतिक विलक्ष्णता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

अलाहुणी छः तुकों का एक बन्द है और एक रचना में चार बन्द होते हैं जिसकी छः छः पंक्तियों की समाप्ति पर 1, 2, 3, 4 अंको को अंकित किया गया है । अलाहुणी में स्थाई व अन्तरा के अनुसार बन्दों को विभाजित नही किया जाता अपितु क्रमवार गाया जाता है ।

परन्तु राग बडहंस के अर्न्तगत दक्षिणी प्रकार की अलाहुणी भिन्न प्रकार की रचना है । इसमें चार -चार तुकों वाले आठ बन्द होते है और इसके अर्न्तगत स्थाई की भाँति रहाऊ का भी उल्लेख मिलता है ।

'गुरमति संगीत में अलाहुणी के गायन की विशेष परम्परा कीर्तन रूप में मौजूद है और इसको प्राणी के अकाल चलाने के उपरांत दाह संस्कार के बाद गाने की परम्परा है ।[147]

---

146. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ० 578

147. चरन सिंह (डा०), *गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज (भाग चतुर्थ)* पृ० 14

अलाहुणी का गायन बिना वाद्य के किया जाता है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में नौ अलाहुणियां मिलती है जिनमें पाँच श्री गुरू नानक देव जी और चार श्री गुरू अमरदास जी द्वारा राग वडहंस में रचित हैं ।

अलाहुणी को भैरवी राग में भी गाने की परम्परा है।[148] 'अलाहुणी' को किसी अन्य अवसर पर गाने को अशुभ माना जाता है क्योंकि यह करूणा रस प्रधान गायन है जिसे मृतक व्यक्ति की बिरादरी की स्त्रियाँ मिलकर गाती हैं ।

'वैण और कीरने भी अलाहुणियों का ही रूप है पर यह दो स्त्रियाँ एक दूसरे के गले मिलकर ही गाती हैं या अकेली भी कुछ मुँह ढ़क कर गाती है । पर अलाहुणी का समूह स्त्रियाँ गायन करती हैं । अलाहुणियाँ की कई वंनगिया मिलती है पर सभी में एक भावना होती है दिली वेदना और अरमानों का प्रगटावा ।'[149]

---

148. गीता पैंतल, *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ० 43

149. बेदी, सोहिन्द्र सिंह नाभा, *पंजाबी लोक धारा विश्व कोष,* पृ० 258

मुंदावणी :- मुंदावणी का अर्थ है कि बुझारत अथवा पहेली, जिसमें छिपे अर्थ को बन्द करके या छिपाकर रखा गया हो, ऐसी बात जो कोई जल्दी से न समझ सके ।[150] मुंदावणी एक ऐसी प्रथा है जिसमें विवाह अवसरों पर बारात जब खाना खाने बैठती हैं तो लड़कियां बुझारतें डालकर थाल बाँध देती है , जब बारात के लोग उसका अर्थ बता देते हैं तभी लड़कियाँ खाना खाने देती हैं । इस रीति को मुंदावणी भी कहा जाता है । इन गीतों में थाल में पड़ी वस्तुओं का जिक्र होता है ।

''मुंदावणी मोहर या छाप लगाने की क्रिया को भी कहा जाता है । मुंदावणी आदि ग्रन्थ के विषय के अनुसार इसकी अन्तिम मोहर है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की समाप्ति पर मुद्रण करके यह उपदेश है कि यहाँ धर्मग्रन्थ के पाठ का भोग है ।''[151] आदि ग्रन्थ के संपादन ने स्पष्ट कर दिया है कि इस महान् ग्रन्थ (थाल) में सति, संतोष और नाम जो कुल काइनात का आसरा है, जो कोई इस नाम को खायेगा, विचार करेगा उसका कल्याण होगा ।[152]

गुरमति संगीत के अर्न्तगत मुंदावणी का गायन श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के पाठ के भोग समय या समाप्ति पर रोज सन्धया के रहिरास पाठ में किया जाता है । इसके बिना वाद्यों के गाने की परम्परा है ।

---

150. भाई वीर सिंह, *श्री गुरू ग्रन्थ कोश,* पृ० 744
151. भाई काहन सिंह नाभा, *महान कोश,* पृ० 986
152. गिल, महिन्द्र कौर, *आदि ग्रन्थ लोक रूप,* पृ० 86

घोड़ियाँ :- घोड़ी लोक काव्य के रूप में गाया जाता है । यह पंजाब का प्रसिद्ध लोक काव्य रूप है । विवाह के अवसर पर वर को घोड़ी पर बिठाते समय उसकी बहनें शगुन मनाने के लिये मंगल गायन करती हैं , जिसे घोड़ी कहा जाता है । घोड़ी गायन में किसी वाद्य को नहीं बजाया जाता अपितु शब्दों को विशेष प्रकार से लम्बा कर और उनपर ठहराव के द्वारा गायन किया जाता है । परन्तु विवाह से कुछ दिन पूर्व शगुन के लिये घोड़ी गायन ढोलक के साथ गाया जाता है ।

गुरमति संगीत के अर्न्तगत घोड़ियों के गायन में उन साधनों का वर्णन किया जाता है जिनसे परमात्मा के प्राप्ति हो सके । श्री गुरू रामदास जी ने अपनी वाणी में इस काव्य रूप का प्रयोग किया है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में आप जी द्वारा रचित दो घोड़ियां राग वडहंस के अर्न्तगत अंकित हैं । 'इसमें' मनुष्य देह को घोड़ी के प्रतीक द्वारा रूपमान किया गया है । उस जीवात्मक को धन्य योग्य बताया गया है, जो देह रूपी घोड़ी पर उस प्रभु की सिफत सलाह की काठी पहन कर, गुरू के ज्ञान को लगाम बना कर, इस संसार के कठिन मार्गों को पार करती हुई लोक परलोक की यात्रा करती है ।'[153]

'श्री गुरू रामदास जी ने गन्दे गीतों की कुरीति को दूर करने के लिये 'घोड़ियां' शीर्षक के अर्न्तगत वडहंस राग में वाणी रची है, जिसमें लोक परलोक में सुख-प्राप्ति का उपदेश है -देह तेजणि जी राम उपाईया' आदि[154]

---

153. हरजस कौर, (डा०) *गुरमति संगीत, परिचायात्मक अध्ययन*,पृ० 80

154. भाई काहन सिंह नाभा, *महान्कोष,* पृ० 447

गुरमति संगीत प्रबन्ध के अर्न्तगत घोड़ियाँ के लिये शास्त्रीय संगीतिक संकेत राग, रहाओ और अंकों का प्रयोग किया गया है । घोड़ियों को स्थाई, अन्तरे में विभाजित किया गया है इसलिये इसको लोक संगीत की भाँति क्रमवार न गा कर अंतरों सहित गाया जाता है । श्री गुरू रामदास जी द्वारा रचित राग वडहंस में घोड़ी का काव्य रूप निम्न प्रकार से है :

- देह तेजणि जी रामि उपाईआ राम
धनु माणस जनमु पुन्नि पाईआ राम
माणस जनमु वढपुन्ने देह सु कन्चन चंगडीआ
गुरमखि रंग चलूला पावै हरि हरि नवरंगडीआ

.....

हरि हरि काजु रचाईआ पूरे मिलि सन्तजना जन्ज आई
जन नानक हरि वरू पाईआ मंगल मिलि संत जना वधाई ।।[155]

अंजुली :– वह क्रिया जो प्रणाम के लिये की जाती है, अंजुली कहलाती है, 'करि साधू अंजुली पुनु बढा ।''[156] अजुंली (हाथ में) पानी भरके देवता एवं पित्रों को अर्पित करने की रीति के साथ सम्बन्धित, काव्य रूप को कहा जाता है । धार्मिक विश्वास के अनुसार यह पानी मृतकों को अगले लोक में प्राप्त होता है ।

---

155. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* राग वडहंस, महला 4, घोड़ियां, पृ० 575
156. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ० 113

गुरमति संगीत के अर्न्तगत भी गुरू नानक देव जी की दो अंजुलियां दर्ज हैं जो राग मारू के अधीन हैं । इन दोनों काव्य रचनाओं में आठ - आठ बंद हैं और प्रत्येक बंद की पहली दो तुकें छोटी हैं और तीसरी तुक लम्बी है । इसमें रहाओं की तुक का प्रयोग नहीं होता । इन रचनाओं में संसार की नाशमानता का जिक्र मिलता है । श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा रचित राग मारू में अंजुली का काव्य रूप निम्नप्रकार से है :

बिरखै हेठि सभि जन्त इकट्ठे ।।
इकि तते इक बोलनि मिठे ।।
असतु उदोतु भईआ उठि चले ।
जिऊ जिऊ अऊध विहाणिआ ।।।।
पाप करेदड सरपर मुठे
अजराईलि फडे फडि कुठे ।।
दोजकि पाये सिर जणहारै लेखा मन्गे बाणिआ ।।२।।[157]

कीर्तन चौकी – परम्परा : गुरमति संगीत में वाणी के गायन की सम्पूर्ण प्रस्तुति को शब्द कीर्तन चौकी कहा जाता है । जब कीर्तनकार गुरमति संगीत विधान के अनुसार प्रमाणित वाणी का गायन करते है तो उसे कीर्तन चौकी कहा जाता है । सिक्खों के धर्म स्थान गुरद्वारा साहिबान में कीर्तन परम्परा का निरन्तर विकास होता रहा है । जहाँ पर प्रस्तुत की जाने वाली वाणी गायन के कीर्तन प्रस्तुतिकरण को भिन्न-भिन्न

157. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* राग मारू, महला 5, पृ० 1019 - 20

चौकियों का नाम दिया जाता है । कीर्तन की यह प्रथा गुरू साहिबान से लेकर अब तक निरंतर विकासशील है । गुरमति संगीत के अर्न्तगत श्री गुरू हरिमन्दिर साहिब में कीर्तन चौकी परम्परा विशेष रूप में वर्णनीय है ।

गुरमति संगीत में चार कीर्तनकारों के सामूहिक रूप में गान क्रिया को चौकी कहा जाता है । कीर्तन करने वालों के समूह (जत्थे) को चौकी कहते हैं । 6 चौकी में कम से कम चार कीर्तनकार अवश्य होने चाहियें, जिनमें से एक महन्त, दो रागी, एक पखावज या तबला वादक हो ।'[158] भाई वीर सिंह जी के अनुसार कीर्तनकारों के जत्थे को 'चौकी' कहते हैं । चौकी कम से कम चार व्यक्तियों की होती है । जिसमें से एक महन्त, दो साथी स्वर रचाने वाला तथा एक जोड़ीवाला (पखावजी) रहता है इससे कम नहीं, अधिक चाहे कितने ही लोग हों, 'चौकी' में गा सकते हैं, जैसे कि वार के समय श्री हरिमन्दिर साहिब के अन्दर विद्यमान है ।[159] भाई काहन सिंह नाभा जी के अनुसार, 'चार रागियों की मंडली, 'गावत चऊकी शब्द प्रकाश', भजन मन्डली, जो परिक्रमा करती हुई शब्द गाये ।[160] कीर्तन चौकी में चार प्रमुख अंगो का वहन होने के कारण भी इस 'चौकी' कहा जाता है यह चार अंग निम्नलिखित प्रकार से है :

1. शान या लहिरा, 2. मंगलाचरण, 3. शब्द गायन, 4. पाऊडी ।

---

158. चरण सिंह, गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज, भाग प्रथम, पृ० 33
159. भाई वीर सिंह, *गुरू ग्रन्थकोष,* पृ० 882
160. भाई काहन सिंह नाभा, *महान कोष,* पृ० 449
(चार रागियों की मन्डली ''गावत चौकी सबद प्रकाश'')

1. **शान या लहिरा** : कीर्तन चौकियों में कीर्तन प्रारम्भ करने से पूर्व संगीतमय माहौल बनाने के लिये स्वर वाद्य बजाने वाले साजिन्दे शान या लहिरा बजाते हैं जिसे भारतीय संगीत में 'नगमा' कहा जाता है । इसके साथ ताल वादक ताल के साथ संगति करता है व अपनी महारत का प्रदर्शन कर श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर देता है । शान या लहिरा बजाने की परम्परा पुरातन कीर्तनकारों से अब तक चली आ रही है।

2. **मंगलाचरण** : शान या लहिरा की प्रस्तुति के उपरांत गुरू साहिबान की वंदना में वाणी या श्लोक का गायन कियाजाता है । यह प्रस्तुति भारतीय शास्त्रीय संगीत के बड़े ख्याल की तरह होती है । इसे डंडऊत या वंदना भी कहा जाता है । इस रचना को ताल के साथ गाया जाता है । जिसमें एक ताल चार ताल, आडा चारताल इत्यादि तालों के विलम्बित ठेके को बजाया जाता है । मंगलाचरण की यह परम्परा भारतीय संगीत में भी प्राचीन काल से प्रचलित है ।

शब्द गायन : ताल के साथ उच्चारित श्लोक या मंगलाचरण के बाद ध्रुपद, पडताल आदि गायन रूपों को ताल के अर्न्तगत व समय के अनुसार, रागों में विषय के अनुसार एवं विधि विधान से गाया जाता है । इसमें आदि ग्रन्थ में दर्ज वाणी का शब्द गायन होता है ।

पाऊडी लगाना : कीर्तन समाप्ति पर चौकी के साथ समय से सम्बन्धित राग में कोई श्लोक गा कर वार की पाऊडी लगाई जाती है । प्रत्येक चौकी के पश्चात् अरदास की जाती है ।

श्री गुरू नानक देव जी से चली आ रही चौकियों के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं । भाई काहन सिंह नाभा जी के अनुसार 'गुरू अर्जुन देव जी ने चार समय कीर्तन करने की रीति बनाई । प्रथम अमृत समय आसा की वार की चौकी, द्वितीय सवा पहर दिन चढे चरनकवल की चौकी ''चरनकवल प्रभ के नित ध्याये'', तृतीय साँझ समय रहिरास से पहले सोदर की चौकी ''सोदर केहा सो घर केहा'', चतुर्थ चार घड़ी रात बीतने पर कल्याण की चौकी, जिसमें कल्याण राग के शब्द गाये जाते हैं ।[161] श्री गुरू नानक देव जी ने आसा की वार, सोदरू और आरती की चौकी का प्रचलन किया। परन्तु समय के साथ कीर्तन चौकियों की संख्या बढती गई । श्री गुरू ग्रन्थ कोष में भी पाँच चौकियों का वर्णन मिलता है ।[162] ज्ञान कृपाल सिंह जी, साबका (मुख ग्रन्थी) भी पाँच प्रकार की चौकियों का वर्णन करते हैं :- 1. पिछली रात, पहर रात रही से ''आसा दी वार''। दूसरी चौकी 'आनन्द' की जो 11 से 12 बजे के बीच होती है । तीसरे त्रिपहरे, डेढ से तीन बजे तक 'चरन कवल की चौकी'' । चौथी साँझ को सोदरू की चौकी । पाँचवीं सवा पहर रात गई, कीर्तन सोहिले की चौकी । आजकल सोदर और सोहले की चौकी के बीच एक और कीर्तन की चौकी होती हे जिसको आरती की चौकी कहते हैं ।''[163]

---

161. भाई काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ० 463
162. भाई वीर सिंह, *गुरू ग्रन्थ कोष,* पृ० 882
163. ज्ञानी कृपाल सिंह, अदूती गुरमति संगीत सम्मेलन, पृ० 17

आजकल कीर्तन चौकियों की संख्या आठ और पन्द्रह भी मानी जाती है । 'दस्तूर - उल - अमल' श्री दरबार साहिब नाम की पुस्तक में 15 चौकियों का वर्णन हैं जिन से आठ चौकिया रागियों की और सात चौकियाँ रबाबी कीर्तनकारों की मानी गई हैं ।[164] वर्तमान समय में प्रचलित चौकियों को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया जा सकता है ।

1. **तीन पहरे की चौकी** : यह चौकी रात्रि के तीसरे पहर में लगाई जाती है । इस चौकी में प्रभु दर्शन, गुरू दर्शन आदि के विषय के साथ सम्बन्धित शब्दों का गायन किया जाता है । 'बह्या ज्ञानी बाबा शाम सिंह जी (125 वर्ष की उम्र थी) 78 वर्ष इस कीर्तन चौकी में सारिंदे साज के साथ हाजरी भरते रहे ।'[165]

2. **आसा दी वार की चौकी** : यह चौकी राग आसा पर आधारित है । इस चौकी को रात्रि के करीब दो बजे आरम्भ किया जाता है अथवा इसका समय अमृत बेला है।

'आसा दी वार' का गायन करने की प्रथा श्री गुरू अंगद देव जी ने आरम्भ की।[166]

आसा दी वार चौकी में आसा, सोरठि, रामकली, भैरवी, प्रभाती, गौड़ी, देवगन्धारी रागों के अर्न्तगत कीर्तन किया जाता है । आसा दी वार में श्लोक और पाऊडियों के साथ श्री गुरू रामदास जी द्वारा रचित छंत भी गाये जसते हैं । आसा की वार में पहले

---

164. ज्ञानी कृपाल सिंह, अदूती गुरमति संगीत सम्मेलन, पृ० 18
165. हरजस कौर (डा०) *गुरमति संगीत परिचयात्मक अध्ययन,* पृ० 90
166. भाई कानह सिंह नाभा (डा०) *गुरूशब्द रत्नाकर महान् कोश,* पृ० 91

छंत का गायन राग आसा में किया जाता है तत्पश्चात श्लोक का गायन रागी द्वारा ताल से रहित हो कर राग आसा में किया जाता है । जिसके बाद रागी द्वारा राग का स्वरूप श्रोताओं के समक्ष स्पष्ट किया जाता है । श्लोक के बाद पाऊडी का गायन मध्य लय तार सप्तक में तीनों रागियों के द्वारा किया जाता है । पाऊडी के लिये विशेष ताल प्रयुक्त होती है जिसके ठेके के बोल हैं गे तिट, ता गेता । गे पर सम रहता है ।

3. **बिलाबल की चौकी :** राग बिलाबल में शब्द और पाऊडी लगाने या गायन करने की चौकी को बिलाबल की चौकी कहा जाता है ।

4. **आनन्द की चौकी :** आंनद की चौकी में एक लम्बा शब्द 'राग रामकली' में गाया जाता है, जो 'आनन्दु साहिब' के नाम से प्रसिद्व है । रामकली के अतिरिक्त अन्य रागों में भी गायन होता है जैसे गुजरी, तोड़ी, सूही, तुरवारी, बिलाबल आदि । अंत में सम्बन्धित राग की पाऊडी लगा कर चौकी की समाप्ति की जाती है । इसे 'सारंग की चौकी' भी कहते हैं ।

5. **चरण कंवल की चौकी :** चरणकंवल की चौकी में दोपहर के बाद गाये जाने वाले रागों में कीर्तन किया जाता है । इसे तिलंग की चौकी भी कहते हैं ।

6. **सौदरू की चौकी** : संध्याकालीन रागों में गायन करने के पश्चात् समय के साथ सम्बन्धित अन्य शब्दों को गाने के बाद सोदरू का राग आसा में पाऊडी शैली में

गायन किया जाता है । इसमें पाऊडी ताल (गे, तिट, ता, गे ता) प्रयुक्त किया जाता है। संध्या काल में रहिरास साहिब के पाठ का गायन भी सोदरू के गायन के बाद प्रारम्भ होता है ।

7. **आरती की चौकी** : आरती विधि के साथ गायन करके आरती की चौकी लगाई जाती है । भारतीय हिन्दु धर्मों में आरती की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित है जिसमें आरती की थाली में धूप, दीप, चवर और फूलों को रखकर अपने आराध्य की स्तुति गान किया जाता है । गुरमति संगीत के अर्न्तगत श्री गुरू नानक देव जी, रविदास, धन्ना और सैन जी द्वारा राग धनसिरी में आरती अंकित है । भक्त कबीर जी ने राग प्रभाती के अधीन आरती की रचना की । गुरमति संगीत के अर्न्तगत आरती में दुनियावी वस्तुओं के स्थान पर प्रभु नाम का वर्णन है जिस से यह बाकी धर्मों में प्रचलित आरती परम्परा से भिन्न हो जाती है ।

''1510-20'' ईस्वी में जगन्नाथपुरी के मन्दिर में हो रही आरती को पांखड मानते हुए गुरू नानक देव जी ने आरती की रचना की ।''[167]

8. **कान्हडे या कल्याण की चौकी** : इस चौकी में रात के दूसरे पहर के रागों में शब्द और पाउडी लगाई जाती है । कल्याण की चौकी के विषय में सिक्ख कीर्तनकारों के विभिन्न मत हैं । कुछ कीर्तनकार आरती की चौकी और कान्हडे या

---

167. प्यारा सिंह पदम, *आदि ग्रन्थ का संगीत प्रबंध,* पृ०

कल्याण की चौकी को एक ही मानते हैं परन्तु कुछ कीर्तनकार इन्हे अलग-अलग चौकियां मानते हैं ।

9. **कीर्तन सोहिले की चौकी :** इस चौकी का समय सवा पहर रात गये माना जाता हैं । उस समय के अनुसार रागों के अर्न्तगत शब्द गायन के पश्चात् 'सोहिले' का पाठ किया जाता है । तत्पश्चात अरदास की जाती है ।

विशेष अवसरों से सम्बन्धित कीर्तन चौकियां : सिक्ख धर्म में कीर्तन को विशेष महत्व प्राप्त है क्योंकि गुरू साहिबान ने वाणी की रचना इस प्रकार की है कि उसमें जीवन की प्रत्येक सच्चाई व्यापत है । इसलिये प्रत्येक अवसर पर प्रभु का सिमरण करने का आदेश मानव को दिया गया है । जिससे गुरू साहिबान ने समाजिक जीवन के साथ-साथ अध्यात्मिकता को भी वाणी के द्वारा साधारण जन के मन मस्तिक पर उतारा है । जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन के विभिन्न पडावों के अनुसार वाणी की रचना की गई है । इसलिये जीवन में घटित प्रत्येक घटना और अवसरों के व्यवहार के सम्बन्ध में शब्द, गुरबाणी में प्राप्त होते हैं। जिनको विधि विधान एवं गुरमति संगीत परम्परा के अनुसार गाया जाता है । गुरमति संगीत परम्परा के अनुसार प्रत्येक रस्म अथवा अवसर, चाहे वह खुशी का हो या गम का, शब्द कीर्तन द्वारा सम्पन्न किया जाता है । यह कीर्तन शास्तीय व लोक अंग की गायन शैलियों पर गुरमति संगीत विधान के अर्न्तगत किया जाता है ।

ऋतुओं से सम्बनिधत कीर्तन चौकियां : प्रकृति के नियमों के अनुसार ऋतुएं बदलती रहती हैं और ऋतुओं के साथ ही मानव मन के भाव व स्वाभाव में परिर्वतन आना स्वाभाविक है । इन्हीं परिर्वतनों के दृष्टिगत गुरू साहिबान ने प्रत्येक ऋतु के प्राकृतिक मूल स्वाभाव के अनुसार वाणी की रचना की है । इसलिये ऋतु विशेष वाणी को उसी ऋतु या मौसम में गाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

आदि ग्रन्थ में अंकित 'बारहमाह' को प्रत्येक सकृान्ति के दिन गाया जाता है। 'बारहमाह' ऋतु परिवर्तन पर आधारित काव्य रचना है । 'बारहमाह' कोई छन्द नहीं यह किसी भी छन्द में उच्चारित किया जा सका है । बारह महीनों के वर्णन के कारण इसके 'बारहमाह' कहा जाता है ।[168] श्री गुरू नानक देव जी ने राग तुखारी में और श्री गुरू अर्जुन देव जी ने राग माझ में बारहमाह की रचना की है । राग तुखारी के अधीन बारहमाह में परमात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा का वर्णन किया गया है और अन्त में प्रभु मिलाप से प्राप्त हुई खुशी को महीनों के अर्न्तगत रखके चित्रित किया गया है । माझ राग के अधीन बारहमाह में अध्यात्मिक चिन्तन के लक्ष्य की प्राप्ति को दर्शाया गया है । यह दोनों बारहमाह रहाओं जैसे संकेतो से रहित हैं । कीर्तनकार प्रथा के अनुसार इन का कीर्तन करते हैं । श्री गुरू नानक देव जी द्वारा रचित बारहमाह छंत रूप में प्राप्त होती है ।

---

168. भाई काहन सिंह नाभा, *गुरू छन्द दिवाकर*,पृ. 160

बसन्त ऋतु के आगमन पर गुरमति संगीत में राग बसन्त का गायन किया जाता है । मकर सक्रान्ति के दिन श्री हरिमन्दिर साहिब में मुख्य ग्रन्थी साहिब रागी कीर्तनकारों को पुष्प भेट करके बसंत राग खोलने के लिये कहते हैं । इस दिन से लेकर सभी दिनों पर बसंत राग में वाणी का गायन किया जाता है। बसंत राग उल्लास व हर्ष के भावों को व्यक्त करने वाला राग है । इस राग में शब्द गायन के पश्चात् पाऊडी लगाने की प्रथा है । राग बसन्त में एक शब्द रचना 'ताल चंचल' के अर्न्तगत निम्नलिखित प्रकार से उपलब्ध है :

- गुरू सेवऊ करि नमसकार ।। आजु हमारे मंगलचार
  आजु हमारै महा आनन्द ।। चिंत लथी भेटे गोविन्द ।।
  आजु हमारै ग्रिहि बंसत ।। गुन गाये प्रभ तुम बेअंत ।। १ ।। रहाऊ।।
  आजु हमारै बने फाग ।। प्रभ संगी मिलि खेलन लाग ।।
  होली कीनी सन्त सेव ।। रंगु लागा अति लाल देव ।।[169]

बंसत राग में शब्द गायन होले महल्ले तक निरंतर चलता रहता है । आनंदपुर साहिब में होले महल्ले दिवस पर बंसत राग की पाऊडी लगा कर 'आसा दी वार' व बंसत राग की समाप्ति के लिये अरदास की जाती है । इस तरह बंसत राग का गायन अगले वर्ष तक बंद कर दिया जाता है । तत्पश्चात गुलाल खेलते हुए होले महल्ले का जलूस निकाला जाता है और होली के शब्दों का गायन प्रारंभ हो जाता है ।

---

169. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* राग बंसत, महला 4, घरू 1, पृ. 1180

बंसत ऋतु की भाँति ही सावन का महीना आने पर मल्हार राग का गायन होता है, जिसे सावन ऋतु का राग माना जाता है । इस राग के गायन का आरम्भ सावन की सक्रान्ति के दिन किया जाता है । सावन ऋतु के प्रत्येक दिन कीर्तन चौंकी में मल्हार राग में शब्द गायन व पाउडी लगाई जाती है । आदि ग्रन्थ में अंकित मल्हार राग का स्वरूप इस प्रकार है :

गुरमुखि मलार रागु जो करहि तिन मनु तनु सीतल होइ ।।
गुर सबदी एकु पछाणिआ एको सचा सोइ ।।[170]

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि गुरू साहिबान ने गुरमति संगीत को व्यवहार में लाने के लिये कीर्तन चौंकी परम्परा की स्थापना की । इन कीर्तन चौंकीयों को गुरमति संगीत प्रबन्ध के विधि विधान के अर्न्तगत सिद्धान्तिक आधार देकर मौलिकता प्रदान की । यह चौंकीयां विभिन्न रागों पर आधारित थीं, जिनमें भारतीय संगीत के शास्त्र के तत्वों को भी प्रयुक्त किया गया । जिसमें से एक राग के समयानुसार गायन पद्धति को भी प्रयुक्त किया गया । इसलिये कीर्तन चौंकीयों के समय और राग के समय की एक साथ प्रयुक्तता वैज्ञानिक आधार स्पष्ट करती है । पहले कीर्तनकार चौंकीयों को गुरमति संगीत विधान के अनुसार लगाते थे । परन्तु वर्तमान समय के पुरातन रीतियों में थोडा बदलाव अवश्य आया है । 'पुरातन समय में हर चौंकी के आरम्भ में पहले शब्द गहरे राग में आलाप सहित गाया जाता था । बाकी के शब्द

---

170. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब*, पृ. 1285

रागी सिंह पर आजकल रागी सिंह इस मर्यादा को पूरा नहीं कर रहे । पुरातन समय रागी सिंह हर राग को उसके समय अनुसार गाते थे जैसे आसा दी वार अमृत समय और शाम के समय को सोदर के आरम्भ में ''सोदरू तेरा केहा सो घरू केहा'' वाला शब्द आसा राग में गाया जाता था । आजकल के कुछ नये रागी सिंह इस मर्यादा का पालन नहीं कर रहे ।''[171]

इसके इलावा कीर्तन चौंकीयों में तन्त्री वाद्यों का प्रयोग भी पहले से काफी कम हो गया है । पुरातन काल में रबाब इत्यादि तन्त्री वाद्यों का प्रयोग चौंकीयों में आवश्यक समझा जाता था । ''पुरातन समय श्री हरिमन्दिर साहिब के रागी और रबाबी संगीत के महान् आचार्य होते थे । बुजुर्गों के अनुसार भारत भर के संगीतकार भी हरिमन्दिर साहिब के रागीयों या रबाबियों से मुकाबला करने से झिझकते थे परन्तु आजकल ऐसा नहीं है ।[172]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कीर्तन चौंकीयों गुरमति संगीत की अमूल्य निधि है जिनसे संगीतात्मक व काव्यात्मक वाणी की उत्कृष्टता स्पष्ट झलकती है ।

गुरमति संगीत प्रबन्ध के अध्ययन से प्रत्यक्ष है कि गुरमति संगीत विशाल इतिहासिक परम्परा रखता है परन्तु इस का मूल स्रोत्र और आधार ग्रन्थ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब ही है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब वाणी और दर्शन के विषय पर जहाँ सिक्ख धर्म का आधार ग्रन्थ है वहीं शब्द कीर्तन पर एक निशचित संगीत प्रबन्ध भी हमें इसी से प्राप्त

---

171. *ज्ञानी कृपाल सिंह,* साबका मुख्य ग्रन्थी, *श्री हरिमन्दिर साहिब दिआं कीर्तन चौंकीया,* अदूति गूरमति संगीत सम्मेलन, 1991, पृ. 18

172. वही

हुआ है श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की इसी वाणी में शब्द और संगीत का सिद्धान्तिक और व्यवहारिक सुमेल किया गया है जोकि गुरमति संगीत की शब्द कीर्तन परम्परा पर परम्परा द्वारा निर्मत विशाल गुरमति संगीत की भिन्न भिन्न गायन शैलियों, गुरमति संगीत के भिन्न भिन्न संगीतिक संकेत शब्द कीर्तन की व्यवहारिक पेशकारी के लिये विशेष अर्थ रखते है और इन की सम्पूर्ण रूप में संम्मलित समाहित कार्यशीलता एक निश्चित संगीत प्रबन्ध का उदभव करते हैं। गुरमति संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में विशेष रूप में तंत्री वाद्य गुरमति संगीत को रागात्मकता परम्परा को कायम रखने में सहायक होते हैं। इसी कारण श्री गुरू नानक देव जी से ले कर भिन्न भिन्न गुय साहिबान ने भिन्न भिन्न वाद्यों को शब्द कीर्तन के लिये अपनाया विकसित किया और सरपरस्ती दी। इस से पहले कि इन के इन तन्त्री वाद्यों का संगीतिक विशलेषण किया जाये, इन वाद्यों का बुनियादी अध्ययन और गुरमति संगीत में विकास सम्बन्धी जान लेना आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय

4. चतुर्थ अध्याय

गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्य

4.1 गुरमति संगीत : वाद्य वर्गीकरण

तत वाद्य

वितत वाद्य

धन वाद्य

मुखर वाद्य

सुखर वाद्य

4.2 गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्य

1) रबाब : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

2) सारिन्दा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

3) ताउस : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

4) दिलरूबा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

5) इसराज : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

6) तानपुरा : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

7) सितार : उत्पत्ति, स्वरूप एवं वादन विधि

गुरमति संगीत वाद्य वर्गीकरण

गुरमति संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों को विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है । यह वर्ग हिन्दुस्तानी संगीत के वाद्य वर्गीकरण से ही मिलते जुलते है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में वाद्यों के लिये 'वाजे' शब्द भी प्रयुक्त किया गया है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में कुछ वाद्यों का केवल वर्णन ही मिलता है, वह गुरमति संगीत अथवा कीर्तन में प्रयुक्त नहीं किये गये । जैसे 'तूर' नामक एक वाद्य का प्रयोग गुरमति संगीत में कभी नही हुआ है परन्तु उसका वर्णन आदि ग्रन्थ में किया गया है:

तनु जलि बलि माटी भइया मनु माइआ मोहि मनुरू ।।
आऊगण फिरि लागु कूरि वजावै तूरू ।।
बिनु सबदै भरमाइऐ दुबिधा डोबे पूर ।।[1]

इससे स्पष्ट होता है कि गुरू साहिबान ने अपने काल में प्रचलित और अप्रचलित वाद्यों का वर्णन अपनी वाणी में किया है । परन्तु वाणी गायन में उन्हीं वाद्यों को संगीत वाद्य में रूप में अपनाया जिनसे वाणी के मूल विचारों को सहज रूप में प्रस्तुत किया जा सके । इस प्रकार गुरमति संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य और प्रयुक्त न होने वाले वाद्य (जिनका केवल वर्णन आदि ग्रन्थ में मिलता है) को पाँच वर्गों में बाँटा गया है । अनेक स्थानों पर 'वाजे पंच'[2] अर्थात पाँच प्रकार के वाद्य कहा गया है । इन

---

1. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* सिरी राग, महला, पृ. 19
2. *गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज,* भाग पाँच, पृ० 35

वाद्यों के वर्गों का उल्लेख इस दोहे में मिलता है :

तत तंती बित चरमका, घन कांशी को जान ।
घटह मुखर, स्वासन सुखर, वाद्यय पंच पहचान ।।[3]

तत - तारों से युक्त वाद्यों को तत वाद्य कहा गया है । जैसे :-रबाब, सितार, संरदा, ताऊस, दिलरूबा । गुरमति संगीत में तत वाद्यों को विशेष महत्व प्राप्त है । श्री गुरू नानक देव जी ने अपनी वाणी की गायन प्रस्तुति के लिये तत वाद्य 'रबाब' को उपयुक्त समझा । ताकि तत वाद्यों के साथ स्वरों की शुद्धता के साथ-साथ वाणी के शब्दों को प्रभावशाली एवं सहजता से प्रस्तुत किया जा सके । श्री गुरू नानक देव जी के बाद सभी गुरू साहिबान ने अपनी वाणी गायन में तत वाद्यों को प्रमुखता दी ।

तेरा जनु निरति करे गुन गावै ।।
रबाब परवावज ताल घुंघरू अनहद सबद बजावै ।[4]

इस तुक में श्री गुरू अर्जुन देव जी ने तत वाद्य 'रबाब' के साथ अन्य वाद्यों, परवावज (बित), घुंघरू (घन) वाद्यों का भी उल्लेख किया है ।

- तूटी तंत न बजै रबाब ।।
भूलि बिगारिऊ अपना काजु ।।[5]

---

3. *गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज,*भाग पाँच, पृ. 35
4. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 5,पृ. 381
5. वही, आसा, पृ. 478

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तत वाद्यों के इलावा अन्य तत वाद्यों का उल्लेख भी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में मिलता है । जैसे वीणा को वाणी गायन में कभी भी प्रयुक्त नहीं किया गया । परन्तु श्री गुरू नानक देव जी ने उदाहरण स्वरूप वीणा का उल्लेख अपनी वाणी में किया है :

- वीणा सबदु वजावै जोगी दरसनि रूपि अपारा ।।
  सबदि अनाहदि सो सहु राता नानकु कहै विचारा ।।[6]

कबीर जी ने भी अपनी वाणी में किंगुरी (वीणा) का उल्लेख किया है :

- मनु पवनु दुई तूम्बा करी है जुग जुग सारद साजी ।।
  थिरू भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ।।[7]
- किंगुरी अनूप वाजै ।
  जोगिया मतवारो रे ।। रहाऊ।।[8]

गुरमति संगीत में तंती वाद्यों की वाणी गायन के साथ प्रयुक्तता गुरू साहिबान के काल से ही आवश्यक रही है । काल परिवर्तन के साथ विभिन्न प्रकार के तन्त्री वाद्यों का प्रयोग किया जाता रहा जिनमें रबाब, सरंदा, ताऊस, दिलरूबा, इसराज का विशिष्ट स्थान रहा । आधुनिक काल में यह वाद्य कई कारणों से अप्रचलित हो गये हैं । इनका स्थान सितार ने ले लिया है जो उत्तरी भारत में अपनी लोकप्रियता कायम कर चुका

---

6. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 1, पृ. 351.
7. वही, गऊडी, कबीर जी, पृ. 334, 335
8. वही, राग रामकली, महला 5, घरू 2, पृ. 886

है । गुरमति संगीत में भी वाणी गायन के साथ तंत्री वाद्यों में से सितार का प्रयोग किया जाता है ।

बित – जो वाद्य चमड़े से मढ़े जाते हैं, उन्हें बित कहा जाता है । इस श्रेणी में मृदंग, पखावज, तबला इत्यादि वाद्य आते हैं । मंदल या ढोल भी इसी श्रेणी का वाद्य है । हिन्दुस्तानी संगीत में इस वर्ग को अवनद्ध या वितत कहा जाता है । इस वर्ग के वाद्यों को ताल या लय दर्शाने के लिये प्रयुक्त किया जाता है :

– वाजा मति पखावज भाऊ ।।
होई आनन्दु सदा मनि चाऊ ।।[9]

इस तुक से स्पष्ट है कि श्री गुरू नानक देव जी के काल में पखावज एक प्रसिद्ध वाद्य था । परन्तु यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अपनी वाणी प्रस्तुति में रबाब के साथ-साथ इस ताल वाद्य का प्रयोग किया था अथवा नहीं ।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण, में पखावज का अर्थ 'जोड़ी' लिखा गया है ।[10] पखावज को चमड़े से मढ़ा जाता है । इसको मृदंग या मृदंगम भी कहते हैं । इसका वादन धुपद और धमार गायन शैलियों के साथ किया जाता है । आजकल गुरमति संगीत में पखावज प्रयुक्त नहीं किया जाता परन्तु इसके खुले ताल और बोल तबले पर बजाये जाते है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में पखावज को उदाहरण देने के लिये भी वाणी में प्रयुक्त किया गया है जैसे :

---

9. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 1, पृ. 350.
10. साहिब सिंह, *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* पौथी तीसरी, पृ. 17

- फीलु रबाबी बलदु पखावज कऊआ ताल बजावै ।।
  पहिरि चोलना गदहा नाचै भैंसा भगति करावै ।।[11]

इस तुक में हाथी, बलद, कौआ, गधा और भैंसे को रबाब, पखावज, ताल वादक व नर्तक कह कर उदाहरण हेतु प्रयुक्त किया गया है ।

मन्दल नामक अवनद्ध वाद्य का भी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में वर्णन मिलता है ।

- मन्दलु ना बाजै नटु पै सूता ।।[12]

मन्दल चर्म मण्डित वाद्य है जिसका वादन दोनों हाथों से होता है । यह नेपाल देश का लोकप्रिय वाद्य है । पहले नट जाति के द्वारा इसका प्रयोग किया जाता था ।

अणमडिआ मन्दलु बाजै ।। बिन सावन घनहरू गाजै ।।[13]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण में मन्दल को 'ढोल' कहा गया है ।[14] परन्तु ढोल को डण्डियों के साथ और मन्दल को हाथों के साथ बजाया जाता है । ढोल अथवा ढोलक के विषय में आदि ग्रन्थ में उल्लेखित है :

- ताल मदीरे घट के घाट ।।
  ढोलक दुनिआ वाजहि वाज।।[15]

---

11. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* आसा, पृ. 477
12. वही, आसा, पृ. 478
13. वही, राग सोरठि, भगत नामदेव जी की , घरू 3, पृ. 657
14. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* पौथी पाँचवीं, पृ 358.
15. *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 1, पृ. 349.

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में मृदंग नामक अवनद्ध वाद्य का भी वर्णन प्राप्त होता है । जिसे दक्षिणी भारत में मृदंगम कहा जाता है । उत्तरी भारत में वाद्य को मृदंगम या पखावज कहा जाता है । 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण में मृदंग को 'ढोल' कहा गया है ।[16] परन्तु मृदंग ढोल से अधिक विकसित एवं शास्त्रीय वाद्य है जबकि ढोल लोक अंग शैलियों के साथ बजाया जाता है । यद्यपि मृदंग और परवावज इत्यादि वाद्यों को ढोल अथवा ढोलकी की श्रेणी में रखा जा सकता है । कीर्तन में मृदंग अथवा पखावज का प्रयोग ध्रुपद धमार आदि शैलियों के साथ किया जाता था । परन्तु इन शैलियों का प्रयोग कम होने के साथ ही यह वाद्य भी कीर्तन में से अब विलुप्त हो गये । मृदंग के खुले बोलों को अब तबले पर बजाया जाता है ।

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने मृंदग का वर्णन इस प्रकार किया है :

- बाजे बजहि मिंदृग अनाहद कोकिन ही राम
  नामु बोलै मधुर बैन अति सुहीआ ।। १।।[17]

इन सभी अवनद्ध वाद्यों के इलावा श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में 'दमामा' नामक एक अन्य अवनद्ध वाद्य का भी उल्लेख मिलता है :-

- गगन दमामा बाजिऊ परिऊ निसानै घाऊ ।।

---

16. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* पौथी नवमीं, पृ. 228
17. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* राग मलार, महला 5, पड़ताल, घह 3, पृ. 1271

खेत जु मांडिऊ सूरमा अब जूझन को दाऊ ।।[18]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण में दमामें का अर्थ 'धोंसा' बताया गया है ।[19] फारसी भाषा में दमामा को दमामह कहा जाता है । दमामा को नगारा या धोंसा भी कहा जाता है । 'दमाम' ढोलन बजाई डंकत दमाम ।[20]

दमाम के अतिरिक्त डंक नामक एक अन्य वाद्य अवनद्ध वाद्य का भी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में उल्लेख मिलता है ।

- बाजीगर डंक बजाई ।।
  सभ खलक तमासे आई ।।[21]

इस तुक में डंक का अर्थ डुगडुगी से लिया जा सकता है । डुगडुगी प्राचीन काल से प्रचलित 'डमरू' श्रेणी का वाद्य है । डमरू को अवनद्ध ताल वाद्यों का पितामह कहा जाता है । शिवजी के द्वारा डमरू की उत्पति मानी गई है ।

घन वाद्य :– घन वाद्य धातु निर्मित होते हैं और परस्पर टकराने से ध्वनि उत्पन्न करते हैं ।

कैंसीआ आदि पीतल के तालों की 'घन' संज्ञा है ।[22]

---

18. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* राग मारू, बाणी कबीर जी की, पृ. 1105
19. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* पौथी पाँचवी, पृ. 625, 627
20. काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ 563.
21.
22. *गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज,* पृ. 35

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में ताल मदीरे इत्यादि घन वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है:

- ताल मदीरे घट के घाट ।।
  ढोलक दुनीआ बाजहि वाज ।।[23]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण में ताल के अर्थ 'छैने' लिखा गया है ।[24] करताल, चिमटा और खंजरी भी इसी श्रेणी के वाद्य हैं । घन श्रेणी के वाद्यों को सहायक ताल वाद्य भी कहा जाता है । यह किसी स्वर को उत्पन्न नहीं करते । इनकी ध्वनि गूँजरहित परस्पर टकराने से उत्पन्न होती है । मदीरे एक अन्य घन वाद्य है जिसे संस्कृति में मंजीर कहा गया है जिसका अर्थ है पैरों के घुँघरू ।[25] मदीरे को घुँघरू या झांझर कहा गया है ।[26] घुँघरू भी इन घन वाद्यों की श्रेणी में आता है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में घुँघरू का उल्लेख उदाहरण देने के लिये किया गया है :

- घुँघरू वाजे जे मनु लागै ।।
  तऊ जमु कहा करो मो सिऊ आगै ।।[27]
- तेरा जनु निरति करे गुन गावै ।।
  रबाब पखावज ताल घुँघरू अनहद सबदु वजावै ।।[28]

---

23. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा, महला 1, पृ. 349
24. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* पौथी तीसरी, पृ. 14
25. काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ. 604
26. वही
27. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 1 चऊपदे, पृ. 356
28. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा महला 5, पृ 381

घुँघरू का प्रयोग नृत्य में किया जाता है । यद्यपि गुरमति संगीत विधान के अनुसार नृत्य को वर्जित किया गया है । परन्तु गुरू साहिबान ने प्रभु सिमरण की प्राकाष्ठा में काल्पनिक नृत्य का वर्णन किया गया है ।

संभवतया: घुँघरूओं का उपयोग सहायक वाद्य के रूप में किया जाता रहा हो । यदि दोनों हाथों में घुँघरूओं के गुच्छे पकड़ कर परस्पर टकराये जायें तो ताल देने वाले घन वाद्य कहलाते हैं ।

मजीरा भी इसी श्रेणी का वाद्य है । जिसे घंटिआ या कैसींआ भी कहा जाता है । इन वाद्यों की ध्वनि गूँज उत्पन्न करती है । मजीरे को अन्य वाद्यों के स्वरों के साथ नही मिलाया जा सकता परन्तु दोनों मजीरों के स्वरों को तारता के आधार पर ऊँचा नीचा मिलाया जा सकता है । कीर्तन में मजीरा, चिमटा, करताल अथवा खडताल का प्रयोग किया जाता है ।

इस श्रेणी के वाद्यों को लोक संगीत के वाद्य माना जाता है । गुरमति संगीत में जिस प्रकार लोक काव्य रूप, लोक गायन रूप, प्रयुक्त किये जाते हैं, उसी प्रकार वाद्यों में भी लोक वाद्यों को काव्य एवं गायन रूप अथवा शैली के अनुसार प्रयुक्त किया जाता है ।

4. **मुखर वाद्य** :- वायु से भरे वाद्यों पर हाथ के द्वारा ताडित करके शब्द उत्पन्न करने वाले वाद्यों की संज्ञा मुखर है जैसे घड़ा ।[29]

5. **सुखर वाद्य** :- बाँस या खोखली लकडी या धातु के खोखले वाद्य जो मुँह के श्वास या बाहर की वायु के द्वारा बजाये जाये उनको 'सुखर' कहा जाता है जैसे बाँसुरी ।[30] हिन्दुस्तानी संगीत में इस वर्ग के वाद्यों को सुषिर वाद्य कहा जाता है । गुरमति संगीत में इस श्रेणी के वाद्यों को सुखर या सुखिर कहा गया है । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में शंख नामक एक सुषिर वाद्य का उल्लेख मिलता है :

- घरि घरि मुसरी मंगलु गावहि कछुआ संखु वजावै ।।[31]

गुरमति संगीत में शंख वाद्य को प्रयुक्त नहीं किया जाता परन्तु नगर कीर्तन के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम शंख बजाया जाता था । आजकल इसका प्रचार समाप्त हो गया है ।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में बाँसुरी नामक सुषिर वाद्य का भी उल्लेख उदाहरण देने के लिये किया गया है ।

- कर करिताल परवावजु नैनहु माथै वजहि रबाबा ।।
  करनहु मधु बासुरी बाजै जिहवा धुनि आगाजा ।।
  निरति करे करि मनुआ नाचै आये घूघर साजा ।।[32]

---

29. *गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज,* पृ. 35
30. वही
31. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* आसा, पृ. 477

महान् कोष में बाँसुरी का अर्थ इस प्रकार लिखा गया है : बाँस की नलकी में आठ छिद्र करके जो वाद्य बनाया जाता है, उसे मुरली या बाँसुरी कहते हैं, 'ललित धनासरी बजावै संग बांसरी ' (कृष्ण अवतार की कथा, दशम् ग्रन्थ), 'सुतनंद बजावत है मुरली' (कृष्ण अवतार की कथा, दशम् ग्रन्थ), 'मुरली मनोहर हरि रंगा '(मारू सोहले महला 5)[33]

किंगरी के लिये 'फ्लयुट' शब्द का प्रयोग किया गया है ।[34] परन्तु किंगुरी एक तत वाद्य है । इसलिये किंगुरी को वीणा भी लिखा गया है ।[35] इससे स्पष्ट होता है कि किंगरी सुषिर वाद्य न होकर तत वाद्य है ।

- ऐसी किंगुरी बजाई जोगी ।। जितु किंगुरी अनहदु वाजै ।।[36]

गुरमति संगीत में बाँसुरी का प्रयोग नही किया जाता । इसका कारण संभवतया एक तो ये हो सकता है कि बाँसुरी मानव श्वास से बजने वाला वाद्य है जिस कारण बाँसुरी वादक वाणी का गायन नहीं कर सकता । दूसरा कारण यह है कि बाँसुरी की ध्वनि गायन के अनुगामी होते हुये भी ऊँचापन लिये होती है जिस कारण वाणी के गायन के साथ बाँसुरी वादन अनउपयुक्त समझा गया ।

---

33. काहन सिंह नाभा, *महान् कोष,* पृ. 563
34. वही
35. वही
36. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* रामकली महला 3, अष्टपादियां, पृ. 908

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्य

रबाब –

गुरमति संगीत परम्परा में रबाब को प्रथम साज कहा जाता है । श्री गुरू नानक देव जी के साथ मरदाना, जो कि गुरू जी के कीर्तन के साथी थे रबाब बजाया करते थे । ऐसा मत प्रचलित है कि रबाब का आविष्कार श्री गुरू नानक देव जी ने किया और उन्होंने ही मरदाने को रबाब बजाना सिखाया ।[37]

परन्तु रबाब नामक वाद्य का उल्लेख गुरू जी से पहले लिखे गये फारसी ग्रन्थों में भी मिलता है । यह संभव है कि श्री गुरू नानक देव जी ने उस काल में प्रचलित विदेशी रबाब में कुछ परिवर्तन करके इसे भारतीय राग गायन के लिये अनुकूल बना दिया हो । कानून् मौसीकी के लेखक सादिक अली खाँ ने इस विषय में लिखा है कि ''बाज का कौल है कि यह रबाब ईजाद किया हुआ गुरू शाह नानक फकीर का है । यह ईलम उनको निहायत दखल था । अपनी जिदत तबाय से रबाब ईजाद किया था ।[38] 'बाज का कौल' का अर्थ है कई लोगों का मत है । इसीलिये सादिक अली खाँ ने अन्य लोगों के मत के हवाले से ही यह बात लिखी है निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा।

---

37. तारा सिंह (प्रो0), *वादन कला,* पृ0 270
38. सादिक अली खाँ, *कानूने मौसिकी की,* पृ0 309

रेबेक, योरूप में किसी समय लोकप्रिय था 'जो रबाब का ही एक प्रकार था और मूर जाति के द्वारा स्पेन लाया गया था, जिन्होंने अपने लिये इसे फारस और अरब से प्राप्त किया था । यहाँ फिर इसका मूलतया आर्य वाद्य होना प्रमाणित होता है, रबाब पुराने ग्रन्थों के अनुसार वीणा का ही एक प्रकार है । यह आज भी उत्तरी भारत और अफ़गानिस्तान में लोकप्रिय है ।[37]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रबाब आर्यों का वाद्य था । जिसमें शायद गुरू नानक देव जी ने सुधारात्मक परिवर्तन किये होंगें । यह परिवर्तन भारतीय राग गायन के विशेष तत्त्वों की दृष्टिगत किये गये होंगें क्योंकि सिक्ख कीर्तन शास्त्रीय संगीत पर आधारित था ।[38] अपने विदेश भ्रमणों के दौरान श्री गुरू नानक देव जी मरदाने को सदैव अपने साथ रखते । गुरू जी कीर्तन करते तब मरदाना रबाब पर संगति करता था । कुछ विद्वानों के अनुसार रबाब का निर्माण श्री गुरू नानक देव जी ने ही किया है ।[39] कैप्टन डे ने रबाब को पंजाब से सम्बधित मानते हुए लिखा है कि भारतीय रबाब प्रमुख रूप में पंजाब और उत्तरी भारत में बजाया जाता है । दूसरे भागों में इसका प्रयोग मुस्लिमों तक सीमित है ।[40]

---

37. The rebec, one in Europe, was a form of the Rabab, brought to Spain by the Moors, who in turn had derived it form Peria and Arebia. Here, again, the Aryan origin is evident. The Rabab being accordingly to old works a form of vina. And it is popular in the North of India and Afganistan."
38. गीता पेन्तल, *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ. 292
39. The Rabab Le played on seems to have been designed from an older kind, by Guru Nanak himself. *The mirror,* may 1980, P. 95
40. "The Indian Rabab is principally used in Punjab and upper India, its use in other parts is confined to mohemmdans." C.R. Day, *The Music and Musical instruments of Southern India and the Decan."* Page 127

कुछ विद्वानों के अनुसार तानसेन रबाब बजाने में दक्ष थे ।

''तानसेन का जन्म ग्वालियर में हुआ और वो प्रख्यात संगीतकार थे जिन्हें अकबर (1556-1605) ने अपने दरबार में नियुक्त किया । वे अपनी रबाब वादन क्षमता के लिये प्रसिद्ध थे ।[41] ''यह कहा जाता है कि भारतीय रबाब मध्य पूर्व में उत्पन्न हुआ और भारत में सर्वप्रथम अकबर के दरबार के तानसेन द्वारा बजाया गया ।[42] यह भी हो सकता है कि मियां तानसेन रबाब बजाने में तो निपुण हों पर उन्होंने इसका आविष्कार न किया हो । बी. चैतन्य देव मानते है कि तानसेन ने रबाब का आविष्कार नहीं किया है । तानसेन के जन्म सम्बन्धी खोज कार्य को आचार्य बृहस्पति ने काफी लम्बे समय तक किया परन्तु वे किसी अन्तिम परिणाम पर नहीं पहुँच पाये । उनकी पुस्तकों के अध्ययन से पता चलता है कि तानसेन का जन्म पद्रहवीं शताब्दी के आरम्भ के बीच किसी समय हुआ । परन्तु रबाब का वर्णन तो श्री गुरू नानक देव जी से पहले हुए भक्त कबीर जी ने भी अपनी वाणी में किया है । भक्त कवि कबीर जी का जन्म 15 संवत् 1455 ई० को हुआ । इसलिये यह निश्चित रूप

---

41. "Tansen was born at Gwalior and was famous composer and musician who was summoned to Mughal Court by the emperor Akbar (1556-1605). He was renowned for his performance on the Rabab." - *The Mirror, May 1980,* Page 95

42. It is said that the Indian Rabab originated in the Middle East and was played in India, first of all, by Tansen of Akbar's Court."
Ram Avtar Vir, *Musical Instruments of India - History and development*, Page 61

से कहा जा सकता है कि रबाब का आविष्कार तानसेन से पूर्व हो चुका था । यह संभव है कि रबाब के प्रचलन में तानसेन और उनके वंशजों का योगदान रहा हो । परन्तु रबाब को सबसे अधिक भाई मरदाना के साथ सम्बन्धित माना जाता है । वे गुरू नानक के साथी थे जो पन्द्रहवीं शताब्दी के थे । कहा जाता है कि भाई मरदाना अरब से आये हुये एक परिवार के वंशज थे और रबाब बजाने में उनकी दक्षता एक कहावत बन चुकी है । जो रबाब वे बजाते थे उसे नया रूप श्री गुरू नानक देव जी ने स्वयँ दिया था । 19 वीं शताब्दी के सादिक अली खाँ कहते है कि रबाब में पाँच मुख्य तारें और बाईस तरब की तारें प्रतिध्वनि उत्पन्न करने के लिये होती हैं । एक अन्य रबाब जिसमें छः तारें होती हैं परन्तु ताँत के बजाय इसमें रेशम के तार हैं । कुछ मतों के अनुसार यह रबाब श्री गुरू नानक शाह फकीर ने बनाई । श्री गुरू नानक इस कला का उच्च ज्ञान रखते थे और यह आविष्कार उनकी अपूर्व बुद्धि का परिणाम है । जब श्री गुरू नानक गहरे चिन्तन में बैठ जाते थे तब मरदाना रबाब बजाता था और तारों से ध्वनि निकलती थी ''निरनकार, धन निरनकार''43

---

43. "But the closet, association, perhaps of the Rabab is with Mardana the inseperable companion to Guru Nanak who lived in the Fifteenth Century. Bhai Mardana is said to have been descended from Arabian srock and his prowess of the lute has become legendary. The Rabab, he played on seems to have been redesigned from an older type by Nanak himself. Sadiq Ali Khan of the Nineteenth Century says,"The rabab had five main strings and twenty two metallic one belwo, for resonance. It has come to our knowledof that there is another rabab which has six main strings, but these are of silk insteadog goat gut. Some authorities affirm that this rabab is the invention of Guru Nanak Shah Fakir. The Guru possesed superior knowledge of this art as well, and the invention is the result of his genius." While the Guru sat in deep meditation, Mardana would play and the strings sounded "Nirankar... Dhan Nirankar....."-Formless..Hail Formless."

B.C.Deva, *Musical Instruments,* Page 129

कहा जाता है कि रबाब वीणा की प्रकृति का ही वाद्य है । रबाब को नया रूप देने का श्रेय भी श्री गुरू नानक देव जी को जाता है । श्री गुरू नानक देव जी ने पुराने रबाब में कुछ परिवर्तन करके उसे नया रूप प्रदान किया । निस्संदेह यह परिवर्तन वाद्य की ध्वनि बढ़ाने के लिये और इस सुदंर वाद्य की ध्वनि को मधुर बनाने के लिये किये गये होंगें ।[44]

श्री गुरू नानक देव जी के साथ मरदाने के जितने भी चित्र है, उनमें वह रबाब पर आघात के द्वारा स्वर बजाते दिखाये गये हैं । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में रबाब का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है जैसे :

- कब को भालै घुँघरू ताला कब को बजावै रबाब ।
  आवत जात बार खिन लागै हओ तब लगु समराउ नाम ।[45]
- तूटी तुंत न बजै रबाब । भूलि बिगारिओ अपना काज ।[46]

---

44. These major alterations were no doubt aimed at increasing the range, and further mellowing the tone of this handsome instrument. The strings of the rabab were vibrated with a plectrom. Its deep dignified tone blended admirably with devotional singing. But in time it gave way to string instruments played with a bow. Mainly because the bow helped to sustain the notes in an endless stream without causing breaks., The Guru's were rather senstive to the use of only such appartus for worship, which would not affect the sacred atmosphere of the Gurudwaras."-
Sikh Secred Music, Sikh Sacred Music Society, New Delhi Page 59-61
45. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, आसा महला 4, पृ० 368
46. वही, आसा, पृ० 478

– फीलु रबाबी बलदु परवावज कउया ताल बजावै ।

पहिरि चोलना गदहा नाचै भैंसा भगति करावै ।[47]

रबाब का स्वरूप :– रबाब एक तन्त्री वाद्य है । इसका आकार प्रकार सरोद से मिलता है । इसकी डाँड एक लम्बी खोखली लकड़ी से बनाई जाती है । डाँड के नीचे की ओर एक तूम्बा लगा होता है, जो डाँड का ही एक हिस्सा होता है । तूम्बा कुछ चौड़ा और ऊपर से कुछ चपटा होता है तथा खूँटियों वाले दूसरे छोर की ओर सिकुड़ता चला जाता है । तूम्बे के उपरी हिस्से को भेड़ की खाल से मढ़ा जाता है, इसे माँद कहते हैं । माँद के ऊपर लकड़ी की घोड़ी रखी जाती है जिसे घुडच–घनी कहा जाता है । डाँड के दूसरी ओर जो घुडच होती है, उसे तार घनी कहते हैं । घुडच घनी और तार घनी से रबाब के तार संभाले रहते हैं । रबाब में छः तार लगाए जाते हैं जो ताँत के बने होते हैं । पहले तार को ज़ीर भी कहा जाता है । इसे मध्य सप्तक के पंचम से मिलाया जाता है । दूसरे तार को म्यान भी कहा जाता है । इसे मध्य सप्तक के ऋषभ से मिलाया जाता है । तीसरे तार को सुर कहा जाता है इसे मध्य सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है । चौथा तार मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाया जाता है । इसे मन्द्र कहा जाता है । पाँचवें तार को घोर कहा जाता है । इसे मन्द्र सप्तक के मध्यम से मिलाया जाता है । छठे तार को खरज कहते हैं। इसे मन्द्र सप्तक के षडज़ से मिलाया जाता है । इसे मन्द्र सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है । डाँड के जिस भाग पर तार दबाये जाते हैं, उसे स्थान कहा जाता है । रबाब को लकड़ी या हाथी दाँत के टुकड़े से बजाया जाता है, इसको

---

47. वही, आसा, पृ० 477

जवा या जरब कहते है । दायें हाथ के अंगूठे और पहली ओर दूसरी अंगुली से जरब को पकड़ कर तारों पर प्रहार किया जाता है और बायें हाथ की अंगुलियों से तार को डाँड पर दबा कर स्वर उत्पन्न किये जाते हैं । पहले रबाब को गज के द्वारा भी बजाया जाता था परन्तु बाद में आघात से बजाया जाने लगा। श्री गुरू नानक देव जी के साथ सभी चित्रों में मरदाने को आघात के द्वारा रबाब बजाते दर्शाया गया है ।

एच. ए. पोपले रबाब के स्वरूप के विषय में लिखते हैं कि रबाब लकड़ी के खोखले खोल से बनाया हुआ होता है जिसे उपर से चमड़े द्वारा मढ़ दिया जाता है ।

यह सितार की भाँति होता है जिसे चपटा और छोटा कर दिया गया हो परन्तु उसमें पर्दे न हों । इसकी चार तारें होती हैं, एक या दो तारें पीतल की और दो तारें ताँत की लगाई जाती हैं जिनके साथ धातु की चिकारी की तारें एक तरफ लगाई जाती हैं। इस वाद्य को घोड़े के बाल की कमान से बजाया जाता है । तारों को इन स्वरों से मिलाया जाता है :- स, प, म, स या स, स, प, म, स ।[48]

यह एक सुंदर वाद्य है जिसकी ध्वनि बहुत मधुर होती है । इसकी ध्वनि सारंगी से अच्छी होती है ।[49]

---

48. "The Rabab is a fine Mohammaden instrument, with a shallow bowl made of wood covered with parchment. It is something like a flattened and shortened sitar, but has not frets. It has four strings, one or two of brass and two of gut, with symathetic metel strings at the side. Sometimes the two upper strings are doubted. All the six strings may be of gut. The instrument is played with a bow of horse hair. The strings are tuned of the following ways:- Sa, Pa, Ma, Sa (C'GFC) or Sa, Sa, Pa, Ma, Sa (C'C G.C.E.) - H.A. Poplay, *The Music of India,* Page 115

49. "Sometimes it has a few cat gut frets placed at diatonic intervals. It is a handsome instrument and has a very pleasing tone, some what fuller than that of the Sarangi. It lends it self to the groces better than the sitar, as it has no frets. -H.A. Popley, *The Music of India,* Page 115-119

एन. डब्लयू. एफ. देश में रहने वाले एक ऑफिसर के अनुसार उस देश में रबाब को त्रिकोण या अंगुलियों से बजाया जाता था । कभी भी कमान से नही बजाया जाता था । कुछ रबाबों के पर्दे लगे होते थे परन्तु वे चार से अधिक नहीं होते थे । रबाब अक्सर मलबरी लकड़ी से बनाया जाता था और काबूल से आने वाला सबसे बढ़िया वाद्य था ।[50] कि आजकल कश्मीर में प्रचलित रबाब खोखली लकड़ी का होता है ।[51]

दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व में अरब के एल फाराबी ने एक रबाब का वर्णन किया है, जो गज़ द्वारा बजने वाला वाद्य था, परन्तु कश्मीर और अफ़गानिस्तान वाला रबाब जवे आदि से बजने वाला था और यही उत्तरी भारत में पाँच सौ सालों से अब तक प्रचलित रहा ।[52]

रबाब की वादन शैली : श्री गुरू नानक देव जी काल में रबाब की वादन शैली के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । संगीत बोध में श्री धर शरच्चन्द्र

---

50. "An officer living in the N.W. F. province writes that in that province the Rabab is usually played with a plactrum or the fingers and never with the bow. Many of them also have frets, but never more than four. The Rabab is usually made from mulberry wood and the best instrument came from Kabul." - H.A.Popley, The Music of India, Page 115-119

51. "The Rabab now in use in Kashmir has a hollow wooden body with a waist. The resonator is covered with skin and the finger board with a wooden planks. On the bide cover there is a thin bridge over which go six strings of gut tightened by pegs; besides them main strings there are eleven metallic ones acting as resonators. One interesting fact is that there are no frets as such but there gut are tied across the dandi at its farther end to indicate note positions. The contrivance could wall have developed into the metallic frets of later instruments. " - B.C. Deva, *Musical Instruments,* Page 129

52. In the tenth century A.D. Al Farabi of Arabia described a Rabab which could have bowed instrument. But the Rabab of Kashmir and Afganistan is plucked one and has been known to Northern India for over 500 years now.
The Mirror, (May 1980) Page 95

परांजये रबाब की वादन शैली की विषय में लिखते है कि ''रबाब का बाज मध्य लय की आलापचारी का है । इसकी वादन शैली में गमक, जोड़, छूट, छपक तथा तार-परन जैसे अलंकार बजाये जाते हैं । तार-परन के अर्न्तगत तबले के आघातों की ध्वनि रबाब पर निकाली जाती है । छपक को निकालने के लिये बायें हाथ की अंगुलियों से तारों पर हल्का सा आघात किया जाता है । ताल की गति को स्पष्ट करने के लिये मांद पर बाई हथेली से प्रहार किया जाता है । रबाब में चिकारी न होने के कारण उसका काम सुर के तार से ही लेना पड़ता है । रबाब में विलम्बित मींड का काम अधिकतर नही किया जाता । सरोद को रबाब का विकसित रूप माना जाता है।[53]

रबाब के ताँत के तार लगे रहने से स्वरों का श्वास कम रहता है जिस कारण इस पर अत्यंत विलम्बित लय में आलाप संभव नहीं हो पाता । इस कारण रबाब का आलाप भी बीन के आलाप से भिन्न है । रबाब में जोड़ के अंग का काम एवं तारपरण ही होता है । तारपरण के लिये रबाब की खाल पर बायें एवं दायें हाथ की चाँटी के द्वारा कुछ बोल बजाये जाते है । बायें हाथ के रबाब के डाँड के उपर भी चाँटी के द्वारा कुछ बोल बजाये जाते हैं, इस प्रकार चाँटी को चपक कहा जाता है । सरोद में भी इसी पद्धति का अनुकरण किया जाता है ।[54]

प्रमुख रबाबी कीर्तनकार :- रबाब वादको को 'रबाबी' कहा जाता है । सिक्ख कीर्तन में रबाब वादकों में प्रथम रबाबी मरदाना थे । वे मिरासी जाति के थे । मिरासी

---

54. परांजये शरच्चन्द्र श्रीधर, *संगीत बोध,* पृ० 149
55. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ० ?

जाति के लोग मूलतया: हिन्दु थे जिन्होंने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया था । एक विद्वान के मतानुसार ढाढी, मिरासी मूलतया: हिन्दु थे परन्तु मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था । गायकों, वादकों के सारे वर्ग को ढाढी मिरासी कहा जाता था ।[55]

रबाब बजाने के कारण ही शायद मिरासियों को रबाबी कहा गया । हो सकता है कि भाई मरदाने को ही सर्वप्रथम रबाबी कहा गया हो । भाई मरदाने के पुत्र शाहजादा भी रबाब वादक थे । वह अपने पिता के स्वर्गवास के पश्चात् श्री गुरू नानक जी के साथ कुछ समय तक रहे ।[56]

सत्ता और बलवंड भी रबाबी थे । रबाबी वंश में अनेक सुप्रसिद्ध संगीतकार हुए जो ध्रुपद, धमार, ख्याल, कव्वाली, गज़ल गाने में भी निपुण थे । प्रसिद्ध रबाबी कीर्तनकारों में से कुछ नाम इस प्रकार है :- भाई अतरा, भाई बूझा, भाई चाँद, भाई धन्ना, भाई खेरा, भाई लाल, भाई मोती, भाई साई दित्ता, भाई सुन्दर, भाई ताबा, भाई देसा, भाई मुख्तियार, भाई अरूड़ा, भाई बूड़ा, भाई इनायत, भाई आगा फैयाज़, भाई नासीरा, भाई हामद बख्श आदि ।[57]

सारिन्दा :- सारिन्दा सारंगी के प्रकार का ही एक वाद्य है । इसे सिक्ख कीर्तन में बजाया जाता है । शुरु में कीर्तन के साथ सारंगी का प्रयोग किया जाता था । परन्तु

---

55. Dhandhi Mirashi were originally Hindus, but became Muslims by conversation. The whole class of singers and players was called Dhandhi-Mirashis."-Jainti Lal S. Daruwala, Abdul Karim-*The man of time,* Page 5

56. He too, was a skilled Rabab player, and Guru Nanak appointed him as the successor of Mardana. He often accompanied the Guru duing the latter's travels.-Dr. A.S. Paintal, *The Nature and place at Music,* Page 354

सारंगी का सबन्ध वेश्याओं से होने के कारण इसे एक निम्न वाद्य समझा जाता था । श्री गुरु अर्जुन देव जी ने सारंगी से मिलते जुलते वाद्य का अविष्कार किया और इसका नाम सारिन्दा रखा । एक अन्य मतानुसार गुरु अर्जुन देव जी ने सारिन्दा हाथ में लेकर कीर्तन करने का हुक्म दिया ।[58] भाई काहन सिंह नाभा ने भी श्री गुरु अर्जुन देव जी को सारिन्दा का अविष्कारक माना है ।[59] यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि श्री गुरु अर्जुन देव जी ने इसके प्रचार में योगदान अवश्य दिया है । सारिन्दा को गुरुओं के द्वारा प्रयुक्त किये जाने पर इसकी प्रतिष्ठा निश्चय ही बढ़ गई थी । वर्तमान काल में सारिन्दा लुप्त हो चुका है । दरबार साहिब में इस वाद्य के साथ कीर्तन करने वाले अन्तिम सिक्ख रागी महन्त शाम थे । उन्होंने सत्तर वर्ष तक कीर्तन किया ।[60]

इस वाद्य के अन्य वादको में भाई करम सिंह, भाई लाभ सिंह, भाई मंगल सिंह अपने समय के प्रसिद्ध सारिन्दा वादक हुए है ।[61] श्री हरिमन्दिर साहिब के अजायब घर में एक पुराना सारन्दा रखा हुआ है जो श्री गुरु अर्जुन देव जी के द्वारा बजाया जाता था ।

श्री मति शाहिन्दा बेगम के मतानुसार साजिन्दा देखने में विचित्र वाद्य अमृतसर के गुरु अमरदास जी द्वारा अविष्कृत है, जिन का उस नगर में मन्दिर भलीभांति प्रसिद्ध है ।[62] लेखिका ने इस वाद्य का नाम साजिन्दा लिखा है परन्तु आगे दिये गये उसके स्वरूप का विवरण सारिन्दे की भांति ही है । हो सकता है कि इस वाद्य का नाम साजिन्दा ही हो या फिर पुस्तक छापते समय आर के सथ पर जैड छप गया हो ।

---

58. ए. एस. गोयल, *सिक्ख धर्म और संगीत,* पृ० 64
59. काहन सिंह नाभा, *गुरु शब्द रत्नाकर महान कोष,* पृ० 128
60. ए. एस. गोसल, *सिक्ख धर्म और संगीत,* पृ० 62
61. गीता पेंतल, *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ० 289

इस वाद्य का प्रयोग जन साधारण की अपेक्षा सिक्ख कीर्तन में अधिक हुआ है । यह अनुमान लगाना कि यह श्री गुरु अमरदास जी द्वारा अविष्कृत वाद्य है, उचित लगता है ।

हरिमन्दिर साहिब अमृतसर के अजायब घर में एक पुराना सारिन्दा रखा हुआ है, जो श्री गुरु अर्जुन देव जी द्वारा बजाया जाता था । इस इतिहासिक वाद्य के विषय में कहा जाता है कि जब श्री गुरु अर्जुन देव जी अपने पूर्वजों की वाणी की पोथियाँ प्राप्त करने के लिये गोइन्दवाल में बाबा मोहन जी के पास गये तो बाबा जी उस समय समाधि में लीन थे । गुरु जी ने उनके निवास स्थान के सामने इस वाद्य के साथ शब्द गायन आरम्भ कर दिया, जिस से बाबा मोहन जी ने मंत्र मुग्ध हो कर सभी पोथियाँ उनके हवाले कर दीं । इस घटना का एक चित्र भी गुरुद्वारा गोइंदवाल साहिब में लगा हुआ है ।

केप्टन डे. के अनुसार सारिन्दा ऊँचे स्तर का वाद्य नहीं है परन्तु यह निम्न श्रेणियों में अत्यन्त लोकप्रिय है । सारिन्दे की मुख्य विशेषता इसका पेट चमड़े की झिल्ली के साथ मढ़ने में निहित है । यह केवल इसके अधोभाग के नीचे के हिस्से को ही ढकता है और ऊपर का आधा भाग बिल्कुल खुला रहता है ।[63]

---

63. "The Sadinda is not a very high class instrument but it is very popular with the lower classes. The chief pecularity of the sarinda consists in the way that the belly, which is of parchment is put on. It is made to cover only the lower part of body; leaving the upper half guite open." - *C.R. Day, The Music and musical instruments of southern India and the Deccan, Page 126*

सारिन्दा का सिक्ख गुरुओं के द्वारा प्रयोग किये जाने से इसकी प्रतिष्ठा निश्चय ही बढ़ गई थी और केप्टन डे का यह कहना कि मुख्यत: रुप में यह निम्न श्रेणी का वाद्य है, वस्तुत: ठीक नहीं जंचता । यह बात दूसरी है कि इस समय यह वाद्य दीन-हीन अवस्था में है लेकिन यह भी स्मरण करने योग्य है कि किसी समय सिक्ख गुरुओं के हाथों के स्पर्श से इसने अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी ।[64] पंजाब के मंडी शहर के गुरुद्वारे में गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा बजाया गया सारिन्दा आज भी मौजूद है ।[65] आजकल पंजाब में इस वाद्य का कोई वादक नहीं है । यह वाद्य पूरी तरह लुप्त हो चुका है और इसके फिर से प्रचलित हो पाने की सम्भावना क्षीण है ।

सारिन्दा का स्वरुप :-

सारिन्दा के खोल की आकृति इसराज के समान होते हुए भी उसकी तुलना में भिन्न है । यह पर्दा विहीन ग्राम्य वाद्य है । जिसे गज के द्वारा बजाया जाता है ।[66]

लोक वाद्य सारिन्दा जिस कमान से बजाया जाता है उस पर घुँघरु बँधे रहते हैं । इसमें दो मुख्य तार लोहे के तथा तीसरा तार ताँत का होता है । यह तार षड्ज और पंचम में मिलाये जाते है। । इसे रोहिदा की लकड़ी से बनाया जाता है । तूम्बा जो विशिष्ट रुप से झूका रहता है उसके एक छोटे से भाग पर झिल्ली चढ़ी रहती है । घोड़ी और समतल मेरु का प्रयोग होता है । इसमें पाँच तरबे होती हैं । जो सा, रे, ग, म,प में मिलायी जाती हैं। केवल दो बड़ी तरफ स, रे में मिलाई जाती हैं ।

---

64. गीता पेंतल, (डा०) *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ० 290.
65. ए. एस. गोसल, *सिक्ख धर्म अते संगीत* पृ० 62
66. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ.

यह पूर्णतया लकड़ी का बना होता है और नीचे के भाग में अंडाकार खोखला होता है और एक लकड़ी की डण्डी होती है, जिस पर तार चढ़े होते हैं । यह सारंगी की स्थिति में रख के गज से बजाया जाता है और स्वर निर्माण के लिये अँगुलियों से तार को दबाया जाता है ।[67]

तार वाद्य के ऊपर के हिस्से में लगाये जाते हैं । सारिन्दा में वादन कें लिये तारों को दबाया नहीं जाता बल्कि साधारण रुप से अँगुली के आगे के भाग से स्पर्श किया जाता है । कमान को लय के साथ घुमाया जाता है ।[68]

ताऊस : ताऊस भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पंजाब में अधिक लोकप्रिय था । इस वाद्य को सिक्ख कीर्तन में विशेष तौर पर संगति वाद्य के रुप में प्रयुक्त किया जाता था । पटियाला दरबार के भाई काहन सिंह रागी को ताऊस का निर्माता और प्रचारक बताया गया है ।[69] परन्तु यह प्रमाणिक नहीं लगता । सिक्ख कीर्तन के सुप्रसिद्ध संगीतकार महन्त गज्जा सिंह जी ताऊस बजाने में निपुण थे । वह पटियाला के महाराज भूपिन्द्र सिंह के संगीत गुरु भी थे ।[70] परन्तु ताऊस के निर्माण में या उसे नवीन रूप देने में उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

---

66. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ०
67. It is made entirely of wood and has an oval hollow from beneath and a strip of wood across on which wires are strung. It is placed in the same position as the sarangi and played with a bow. The fingers are pressed on the wires to form notes." F.R. Shahinda Begum, *Indian Music,* Page 77
68. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ० 181.
69. गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज, *(प्रथम भाग),* पृ. 31
70. मुहम्मद अफजल खां, *तफसीले-ए-मौसीकी,* पृ० 85

भारत में यह वाद्य विदेश से आया अथवा यहीं पर आविष्कृत हुआ, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन ताऊस नाम का आधार लेकर यह कल्पना की जा सकती है कि इसका संबंध मुस्लिम सभ्यता से अत्यन्त समीप का है । संभवत: अरब अथवा ईरान में इसकी आकृति का कोई वाद्य प्रचार में रहा हो । भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पंजाब में यह अधिक लोकप्रिय था और सिक्ख कीर्तन में विशेषकर संगत वाद्य के रुप में प्रयुक्त होता रहा था ।[71]

ताऊस अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'म्यर' । इस वाद्य का आधा भाग म्यूर आकृति का होने के कारण इसे यह विशेष नाम दिया गया है ।

ताऊस में मुख्य चार तार और अठारह तरब की तारें होती थी जो राग के स्वरों के अनुसार मिलाई जाती थीं । इसकी डाँड पर आधुनिक दिलरुबा या इसराज की भाँति पर्दे बंधे होते थे और बायें हाथ की अगुँली से तार दबा कर दायें हाथ से गज का परिचालन करके ध्वनि उप्पन्न की जाती थी ।[72]

ताऊस की बनावट दिलरुबा जैसी ही होती है । केवल इसका पेट ही म्यूर की आकृति जैसा होता है । इस लिये इसको ताऊस कहते हैं । पटियाला के सरदार हरनाम सिंह जी ताऊस बजाने में प्रसिद्ध थे ।[73] महन्त गज्जा सिंह ने ताऊस वाद्य में किंचित्

---

71. गीता पेंतल (डा.), *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ० 288
72. वही
73. *समाजिक विज्ञान दर्पण,* मार्च 1972, पृ० 72

परिवर्तन उपस्थित कर दिलरुबा नामक वाद्य को अस्तित्व प्रदान किया ।[74] ताऊस को दिलरुबा की भाँति ही बैठ कर बजाया जाता है । ताऊस के वादकों में जालन्धर के भाई चतुर सिंह भी ताऊस बजाते थे ।

ताऊस और म्यूरी वीणा के नाम 'सरमाये अशरात' मादुनल मौसीकी, म्यूजिक आफ इंडिया (आतिया बेगम) आदि में भी प्राप्त होते हैं ।

इसराज :–

इसराज वाद्य सारंगी और सितार का ही मिला जुला रुप है । क्योंकि इसराज का पेट सारंगी के समान और घड़ सितार की तरह है । इसका दण्ड और पर्दों की व्यवस्था सितार की तरह ही होती है । केवल सितार की तबली की बजाय इस पर खाल मढ़ी जाती है । परन्तु मिजराब की बजाये इसका वादन सारंगी के वादन की तरह गज से किया जाता है । इसीलिये इसके पेट की बनावट और घोड़ी रखने की व्यवस्था सारंगी की तरह होती है ।

''सामान्य सितार की तुम्बी यदि चपटी लगायी जाती तो उसे कच्छपी वीणा कहा जाता । उसी प्रकार इसराज के निचले छोर का आकार यदि मोर के समान बना दिया जाता तो उसे मयूरी वीणा अथवा ताऊस कहा जाता । यों सामान्य इसराज तथा इस मयूरी–वीणा में कोई अन्तर नहीं होता ।[75]

---

74. गीता पेंतल (डा.), *पंजाब की संगीत परम्परा,* पृ.288

75. लाल मणि मिश्र (डा.) *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ० 17

मयूर का भारतीय संस्कृति में विशेष स्थान है । इसे राष्ट्रीय पक्षी का सम्मान प्राप्त है । मध्य काल में संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में 'मयूर' शब्द प्रयुक्त किया जाता था और उर्दू, फारसी और अरबी भाषाओं में इसे ताऊस कहा जाता था । मयूर की आकृति की एक राजगद्दी भी प्रसिद्ध रही । जिसे तख्ते-ताऊस कहा गया । शायद इसराज वाद्य ही पहले बन चुका हो और उसे सुंदरता प्रदान करने हेतु मयूर की आकृति देकर ताऊस कहा जाने लगा हो । जो भी हो इसराज का निर्माण अवश्य दो सौ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा और इसका अविष्कार सितार और सारंगी के बाद किया गया होगा । क्योंकि इन दोनों वाद्यों की विशेषताएँ इसराज में नजर आती हैं ।

''सम्भवत: सारंगी का प्रतिष्ठित समाज में स्थान देने के लिये सितार के पर्दो को जोड़ कर एक नया रुप दिया गया है ।''[76]

गुरमति संगीत में वाणी के गायन के साथ इसराज संगति वाद्य के तौर पर प्रयुक्त किया जाता रहा । सिक्ख धर्म के पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी का प्रिय वाद्य 'इसराज' था और कहा जाता है कि यह वाद्य बजाने में उन्हें विशेष महारत हासिल थी ।[77] हो सकता है कि इसराज का अधिक प्रचार श्री गुरु अर्जुन देव जी के काल में ही हुआ हो । धीरे-धीरे यह वाद्य अत्यन्त लोकप्रिय होता गया । कीर्तन में इसकी लोकप्रियता का कारण शायद यह भी रहा होगा कि यह गायन का अनुगामी वाद्य है । इसकी ध्वनि अत्यन्त मुधर है । इस वाद्य के प्रचार के समय में इसके बहुत कुशल

---

76. शरचन्द्र श्रीधर परांजपे (डा.) *संगीत बोध,* पृ. 148

77. *विस्माद नाद,* प्रीत इन्दरकौर (प्रो.) अक्तूबर 1992, पृ० 57

वादक हो चुके है । परन्तु वर्तमान समय में इसराज के कुशल वादक बहुत कम रह गये हैं ।

इसका एक कारण अंग्रेजी वाद्य वायलिन का अधिक प्रचार पा लेना है जो गज के साथ बजाया जाता है और आकार में भी छोटा है । दूसरा कारण शायद यह है कि 'इसराज' प्रारम्भ में सरल होते हुए भी विशेष कुशलता प्राप्त करने वालों के लिये कष्ट-साध्य हो जाता है जो किसी भी शास्त्रीय संगीत के वाद्य के लिये एक अनिवार्य शर्त है ।[78]

हो सकता है कि इन्हीं कारणों से वादकों ने अपेक्षाकृत सीखने में आसान सितार और सारंगी वाद्यों को अपनाया । वर्तमान काल में गुरमति संगीत के अर्न्तगत इस वाद्य का प्रचार ना के बराबर है । यदि इस वाद्य के प्रचलन हेतु विशेष प्रयन्त नहीं किये गये तो रबाब, सारंदा की भाँति इसके भी लुप्त हो जाने का भय है ।

इसराज का स्वरुप : इसराज की डाँड की बनावट सितार के समान होती है । सितार के डाँड के ऊपरी भाग की तरह ही इसराज में भी मुख्य तारों की चार खूँटियां रहती हैं । इस आगे के भाग को चपटा एवं ठोस लकड़ी का बना दिया जाता है । लकड़ी के एक कुन्दे को भीतर से खोखला करने के पश्चात् डाँड के साथ जोड़ दिया जाता है । इसको खोल कहा जाता है । इस खोल के ऊपर खाल मढ़ कर तबली बनाई जाती है। इसराज के एक अन्य भेद मयूरी में इस खोल को सादा न बना कर मयूर की आकृति

---

78. लालमणि मिश्र (डा.), *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 116

का बना दिया जाता है । चमड़े की एक ओर पट्टी बना कर तबली के चमड़े के ऊपर रखी जाती है उसके ऊपर घोड़ी को रखा जाता है और खोल की लकड़ी से दोनों सिरों पर जड़ दिया जाता है जिस कारण घोड़ी का दबाब तबली के चमड़े को फाड़ नहीं पाता। एक और चमड़े की छोटी पट्टी उस सिरे पर भी लगाई जाती है जहाँ घोड़ी से तार होता हुआ लँगोट की ओर जाता है और चमड़े से जुड़ता है । इसराज के डाँड पर चार खूँटियाँ लगाई जाती हैं । जिन पर मुख्य चार तार बाँधे जाते हैं । इन मुख्य चार खूँटियों के अतिरिक्त इस में पन्द्रह तरब के तारों की छोटी खूँटियां लगाई जाती है । डाण्ड के दक्षिणी भाग की तरफ लकड़ी की एक अतिरिक्त पट्टी लगाई जाती है जिस पर तरब के तारों की खूँटियों को लगाया जाता है । यह खूँटियां ऊपर को उठी रहती हैं । मुख्य तारों के लिये एक तार गहन लगाया जाता है जिस के ऊपर से खूँटियों पर बंधे तार दण्ड के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । यह चारों तार दण्ड के ऊपर से होते हुए घोड़ी को स्पर्श करते हैं और आगे जा कर लँगोट से बांधे जाते हैं । गज द्वारा बजाये जाने वाले सभी वाद्यों में घोड़ी की व्यवस्था के अनुसार ही इसराज की घोड़ी भी पतली हड्डी के एक ही टुकड़े से बनाई जाती है । यह सवा दो इंच लम्बी और सवा इंच ऊपर उठी होती है । इसका ऊपरी भाग जहाँ से तार गुजरते हैं, चन्द्रकार होता है । जिसका बीच का भाग ऊपर उठा हुआ होता है और दोनों किनारे नीचे की आरे झुके रहते हैं जिससे गज के द्वारा वांछित तार को बजाना संभव हो पाता है । घोड़ी पर मुख्य तारों को रखे जाने वाले

स्थान से लगभग दो सूत नीचे तरब के तारों के गुजरने के लिये छोटे - छोटे छिद्र होते हैं । तरब के तार इन्हीं छिद्रों में से प्रवेश करते हुए लँगोट से बँधे रहते हैं ।

पर्दे बाँधने की परिक्रिया लगभग सितार के समान ही है इसमें सामान्यता उन्नीस पर्दे बँधे रहते हैं । इसराज में भी सितार के पर्दे की तरह परिवर्तन होता रहा है । इसमें पहले सोलह पर्दे बँधे रहते थे । परन्तु अब इसमें उन्नीस पर्दे बाँधे जाते हैं । पर्दो का झुकाव और कसाव सितार की भांति होता है ।

इसमें चार तार मुख्य रहते हैं । पहला तार बाज का होता है जो दो या तीन नम्बर का इसपात का तार होता है । इसे मन्द्र सप्तक के मध्यम से मिलाया जाता है । दूसरा तार षड्ज का होता है । यह पीतल का छब्बीस नम्बर का तार होता है जिसे मन्द्र सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है । तीसरा तार पीतल का होता है जो चौबीस न. का होता है । इसे 'अति मन्द्र पंचम' का तार कहते हैं । इसे मन्द्र पंचम से मिलाते हैं । चौथा तार इसपात या फिर पीतल का होता है । इसे मन्द्र सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है । इसे वादन में प्रयोग नहीं किया जाता । बल्कि छेड़ा जाता है इसलिये इसे झंकार का तार कह सकते हैं । कई वाद्यों में इस तार को पीतल के बाईस अथवा बीस नम्बर का लगाया जाता है और वादन के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है । तरब के तारों की संख्या पन्द्रह होती है जो डाण्ड के दक्षिणी भाग से होकर गुजरते हैं । यह तार पीतल के होते हैं और अठाईस नम्बर के लगाये जाते हैं । कई लोग इनमें

से कुछ तार इसपात के भी लगाते हैं । इन तारों को राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के अनुसार मन्द्र सप्त के पंचम से तार सप्तक के मध्यम तक मिला लिया जाता है । तरब के तार खूँटी से चल कर घोड़ी के छिद्रों में प्रवेश करते हैं । ये तार दण्ड के दक्षिणी भाग में पर्दो के ऊपर से हो कर गुजरते हैं । इसराज में दाढ़ अथवा अटक की व्यवस्था नहीं होती । इसराज में सुन्दरता के लिये अधिक सजावट का काम नहीं किया जाता । बाकी के हिस्सों में कोई विशेष काम नहीं किया जाता । दण्ड के ऊपर के भाग पर हड्डी या फिर गटापारचा के बेल-बूटे बना कर जोड़ दिये जाते हैं । इसराज को दाहिने हाथ से गज के द्वारा बजाया जाता है । जिस तार को बजाना हो उसी पर गज को रगड़ा जाता है । गज की लम्बाई लगभग सवा दो फुट और वृत की मोटाई सवा दो इंच होती है । गज में लगे हुए बालों की लम्बाई पौने दो फुट के लगभग होती है । इसमें घोड़े के काले बाल लगाये जाते जो वायलिन के गज से अधिक घने होते हैं । गज को पकड़ने के लिये मूठ लगाई जाती है ताकि पकड़ने के स्थान पर गज़ और उसके बालों के मध्य इतनी दूरी हो जाये जिससे दाहिने हाथ की मध्यमा तथा अनामिका बाहर से प्रवेश कर अँगूठे के पास आ कर बँध सके । तर्जनी को बाहर की तरफ निकाल कर अगूँठे की तरफ मोड़ लेते हैं । इस तरह की 'पकड़' से गज़ को कम और अधिक दबाव से चला कर ध्वनि-भेद उत्पन्न किया जा सकता है ।

वादन विधि :- इसराज में गत या गायन शैली को प्रयुक्त किया जाता है । गायन कला की बारीकियाँ गमक, मींड़, मुर्की आदि का प्रदर्शन इस वाद्य पर किया जा सकता

है । बायें हाथ की पहली दूसरी या फिर कई बार तीसरी अगुंली के द्वारा निर्धारित पर्दो पर तार को दबा कर भिन्न-भिन्न स्वरों की उत्त्पति की जाती है । यह गज से बजाया जाता है जिसे स्वर या स्वर समूह उत्पन्न किये जाते हैं । स्वर में अधिक से अधिक सुन्दरता, गज की विशेष और कुशल विधि पर निर्भर करती है । बायें और दायें हाथ के विशेष मेल के द्वारा ही वादन शैली को कलात्मक और प्रभावशाली बनाया जाता है ।[79]

दिलरुबा :

ताऊस वाद्य के लुप्त हो जाने के पश्चात् पंजाब में इस वाद्य को सिक्ख कीर्तन के साथ बजाया जाता रहा । लगभग दो सदीयों से दिलरुबा को कीर्तन के साथ बजाया जाता रहा है । परन्तु अब यह वाद्य भी अप्रचलित हो चुका है । श्री ओम प्रकाश मोहन दिल्ली वाले शर्गिद मास्टर, रत्न चतुर सिंह जालन्धर से और भगत सिंह जालन्धर से कुछ दिलरुबा के प्रसिद्ध वादक हुए हैं । भाई बतन सिंह जो फगवाड़े के निकट मेहली निवासी थे । दिलरुबा के महान् वादक थे । उन्होंनें विशेष प्रकार की दिलरुबा बनाई हुई थी जिसमें साधारण दिलरुबा की अपेक्षा अधिक मुख्य तार और तरबें लगी हुई थी जिससे ध्वनि अधिक बढ़ जाती थी ।[80] भाई प्यारा सिंह और भाई ज्ञान सिंह अैबटावादी भी अच्छे तार शहनाई वादक थे । भाई बलजीत सिंह नामधारी वर्तमान समय में तार शहनाई बजा रहे हैं । पंजाब के कुछ गज़ल गायक भी अपने गायन के साथ दिलरुबा वाद्य की संगति करवाते हैं।

---

79. प्रीतइन्द्र कौर, *विस्माद नाद* - (अक्टूबर 1992) पृ० 51

80. गीता पेंतल (डा.), *पंजाब की संगीत परम्परा*, पृ० 288, 289

दिलरुबा पंजाब का लोकप्रिय वाद्य था जो अपने नाम को सार्थक करता था । यह फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है प्रिय, प्रियतमा अथवा माशूक होता है ।[81] पंजाब के कुछ गज़ल गायको द्वारा भी दिलरुबा की संगति करवाई जाती है । दबाबा के बिहारीलाल सूद भी अच्छे दिलरुबा वादक थे । श्री भगत सिंह सोगड़ा आकाशवाणी जालन्धर के पूर्व कर्मचारी उन्हीं के शिष्य थे ।

गुरु रामसिंह जी के सुपुत्र गुरु प्रताप सिंह ही 'दिलरुबा' और ताऊस बजाने में कुशल थे । आधुनिक काल में सतिगुरु जगजीत सिंह जी भी 'दिलरुबा' बजाते हैं । इसके साथ कीर्तन भी करते हैं ।

इस वाद्य में पर्दे लगे होते है और सारंगी की भाँति गज़ के साथ रगड़ने से ध्वनि उप्पन्न की जाती है । सितार की आकृति जैसा होने के कारण इस वाद्य को भारतीय वाद्य कहा जाता है । यद्यपि अपने नाम के कारण दिलरुबा विदेशी, विशेषतया फारसी वाद्य होना का संकेत देता है । परन्तु आकृति वादन विधि और अपनी ध्वनि विशेषताओं की वजह से दिलरुबा को भारतीय वाद्य मानना अधिक उपयुक्त लगता है ।

दिलरुबा एक उत्तरी भारत का वाद्य है जिसमें पर्दे लगे रहते हैं और जिसे कमान से बजाया जाता है । यह मनुष्य की आवाज के नजदीक की ध्वनि रखता है और अक्सर संगति वाद्य के रूप में बजाया जाता है । इसमें उन्नीस पर्दे लगे रहते है जिन्हें हिलाया जा सकता है । इसमें मुख्य चार तारें और बाईस तरब की तारें लगी होती है ।

---

81. मुहम्मद मुस्तफा खां, *उर्दु-हिन्दी शब्द कोष*, पृ० 320

वाद्य को मध्यम तार पर बजाया जाता है । तारों को सा, पा, सा और मा पर मिलाया जाता है ।[82]

दिलरुबा क्योंकि एक तंत्री वाद्य है इस लिये एक वर्गीकरण के अनुसार इसे तत्त वाद्यों के वर्ग के अर्न्तगत रखा जाता है । यह क्योंकि गज़ के साथ बजाया जाता है इसलिये दूसरे वर्गीकरण के अनुसार इसे गज़ वाले वाद्यों के अर्न्तगत रखा जाता है । ताऊस, दिलरुबा और इसराज तीनो वाद्य गज़ के साथ बजाये जाते हैं । मयूर की आकृति न बनी हो तो उस ताऊस को दिलरुबा ही कहा जायेगा । पंजाब का इसराज, दिलरुबा ही है । बंगाल का इसराज भी पंजाब के दिलरुबा जैसा ही है ।

दिलरुबा का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता । वास्तव में दिलरुबा इसराज के कुछ समय पश्चात् निर्मित हुआ । सिद्धान्तिक रुप में इन दोनों वाद्यो के रुप आकार, वादन विधि आदि में बहुत कम अन्तर है । वस्तुत: इसराज का दंड जितना लम्बा होता है, दिलरुबा का दंड उस से थोड़ा सा छोटा होता है । तरब की तारें इसराज से ज्यादा होती हैं । इस प्रकार एक ही वाद्य के तीन रुप बहुत साधारण अंतर के साथ इसराज, मयूरी वीणा (ताऊस) और दिलरुबा का प्रचार लगभग दो सौ वर्ष से रहा है । परन्तु वायलन के भारत में प्रचलित होने से इन तीनों वाद्यों का प्रचार कम हो गया । इसराज की बनावट में साधारण परिवर्तन के पश्चात् दिलरुबा वाद्य बनाया गया । ऊपरी तौर पर यह परिवर्तन अत्यन्त साधारण हैं परन्तु सिद्धान्तिक तौर पर यह परिवर्तन

82. "Dilruba is a north Indian musical instrument with frets played with a bow. It has a near soprano human voice and is often used as an acompaniment. It has nineteen frets which can be moved for mintue adjustments. It has four main playing strings and twenty two sympathetic strings. The instrument is played on the madhyama string and the instrument is tuned to *Music,* Page 48.

काफी विशेष हैं । दिलरुबा के दंड की लम्बाई इसराज के दण्ड से कुछ कम होती है । काठ के खोल की बनावट इसराज की बजाये कुछ चौड़ी होती है । दिलरुबा में तरब की तारों की संख्या भी इसराज से अधिक होती है । जिस कारण इसमें घोड़ी भी इसराज से बड़ी लगाई जाती है । इन थोड़े से परिवर्तनों के कारण इसराज और दिलरुबा की ध्वनि में परिवर्तन आ जाता है ।

दिलरुबा का स्वरुप :–

इसराज के आकार में कुछ परिवर्तन करके दिलरुबा वाद्य बनाया गया है । दिलरुबा का दंड एक फुट आठ इंच के लगभग होता है । ऊपर का भाग छः इंच का होता है । इस भाग में खूंटियां लगाई जाती है। । आजकल मुख्य तारों के लिये लकड़ी की खूँटियों के स्थान पर तार कसने की इंगलिश चाबियां लगाई जाती है। । इसलिये ऊपरी भाग जो दंड की लकड़ी का होता है, को दण्ड की अपेक्षा चपटा और ठोस लकड़ी का बनाया जाता है । इस ठोस लकड़ी पर ही इंगलिश चाबियाँ लगाई जाती हैं । दण्ड का भाग तरफदार सितार की तरह खोखला बनाया जाता है । इस दण्ड को काठ के बने हुए खोल में प्रवेश करवा कर जोड़ दिया जाता है । खोल को ऊपर से चमड़े से मढ़ दिया जाता है । दिलरुबा मे मुख्य चार तार होते हैं जिनकी खूँटियों की व्यवस्था मुख्य तारों के समान ही होती है । इसके इलावा पन्द्रह से सतरह तक तरफ के तारों की खूँटियां दण्ड के दक्षिण भाग में लगाई जाती है । यह तार जीरो नम्बर के

लगाये जाते हैं और राग में लगने वाले स्वरों के अनुसार मिलाये जाते हैं । मुख्य तार तारगहन के ऊपर रखे रहते है जो पर्दों के ऊपर से घोड़ी की ओर जाते है और उसी तारगहन के नीचे की तरफ बायें भाग में बिन्दु की तरह छिद्र बना कर मुख्य तरफ के तारों को प्रवेश करवाते हैं । दिलरुबा के तरफ के तार पर्दे के नीचे रहते है । दक्षिण भाग से आने वाले तारों के लिये मुख्य दंड में छोटी हड्डी की दाढ़े लगा दी जाती हैं । तरफ के तारों की संख्या अधिक होने के कारण इसकी घोड़ी इसराज की अपेक्षा कुछ बड़ी लगायी जाती है, परन्तु बनावट वैसी ही होती है । यह लगभग पौने तीन इंच लम्बी और पौने दो इंच ऊपर उठी होती है । दिलरुबा में लँगोट साढ़े चार इंच लम्बी तथा पौने इंच मोटी लकड़ी का होता है यह अलग से नहीं लगाया जाता बल्कि यह लकड़ी के खोल की लकड़ी का ही बना होता है । दिलरुबा में उन्नीस या बीस पर्दे सितार की तरह ही बाँधे जाते हैं । उन्नीस पर्दों में से निम्न प्रकार से स्वर निकलते हैं । मे़ प़ ध़ ध नी़ नी स रे ग़ ग म मे प ध नी़ नी सं रें गं । ''बीस पर्दों वाले दिलरुबा में तार मध्यम का पर्दा अलग से लगाया जाता है । दिलरुबा को दाहिने हाथ में गज़ से बजाते हैं ।''[83]

दिलरुबा की ध्वनि मन्द्र और आलाप के लिये उपयोगी है ।[84]

दिलरुबा में सजावट के लिये दण्ड के ऊपरी भाग के किनारों में और लकड़ी के खोल के ऊपर हड्डी अथवा गटापारचा के बेल-बूटे बनाये जाते हैं ।

---

83. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 128

84. विमलकांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष*, पृ० 127

सितार :–

सितार वर्तमान काल में काफी प्रचलित वाद्य है । पिछले कुछ वर्षों से यह वाद्य उत्तरी भारत में काफी लोकप्रिय हो रहा है । इसके निर्माण का समय मध्यकाल माना जाता है ।

''सितार फारसी शब्द है और इसका अर्थ है तीन तार । शास्त्र में त्रिवन्त्री वीणा और कच्छपी वीणा का उल्लेख मिलता है । कप्छपी वीणा से कछुआ–सितार का नामकरण हुआ । ऐसा पंडितो का अभिमत है । भारत में त्रितन्त्री वीणा का प्रचलन शायद काफी था एवं तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से चौदहवीं शताब्दी के प्रथम दशक के बीच अमीर खुसरो ने त्रितन्त्री वीणा को सितार का नाम देकर प्रचारित किया । उस समय से त्रितन्त्री वीणा सितार के नाम से प्रचलित है, अमीर खुसरो सितार के मूल अविष्कर्ता नहीं ।''[85] धीरे–धीरे जैसे ही सितार का विकास होता रहा इसमें तारों की संख्य बढ़ती रही । तीन तारों के स्थान पर बाद में पाँच तार लगाये जाने लगे और अब वर्तमान काल में तारों की संख्या बढ़कर सात हो चुकी है । ''इस यन्त्र के अत्याधिक लोकप्रिय होने के कारण क्रमिक उन्नति हुई एवं तीन तारों के स्थान पर पाँच तार लगाये गये ।''[86]

गुरमति संगीत के अर्न्तगत सितार का प्रयोग संगति वाद्य के रुप में किया जाता है । गुरु साहिबान ने वाणी गायन के साथ तंत्री वाद्यों की वादन संगति को प्रमुखता दी थी । उसी श्रृंखला के अर्न्तगत सितार का भी स्थान है । रबाब, सारंदा, ताऊस, इसराज

---

85. विमलकांत राय चौधरी, *संगीत कोष,* पृ० 138

86. वही

जैसे वाद्यों के लुप्त हो जाने के पश्चात् वर्तमान काल में तंत्री वाद्य की कमी को सिक्ख कीर्तन में सितार के द्वारा पूरा किया जाता है । आदि ग्रन्थ में सितार का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता परन्तु विद्वानों के अनुसार कीर्तन में पहले तीन तारों वाले वाद्य का प्रयोग होता था ।

सिक्ख कीर्तन में सर्वप्रथम गायन के साथ तीन तारों वाले सितार का प्रयोग किया जाता था । पहला तार लोहे का होता था जिसे 'मध्यम' से मिलाया जाता था । अन्य दो पीतल के तार होते थे जिन्हें षड्ज में मिलाया जाता था । कभी-कभी तीनों तार ही पीतल निर्मित होते थे । परन्तु स्वरों में मिलाने की विधि समान थी । पहला तार मध्यम में मिलाये जाने के कारण पंजाब में सितार को 'मध्यम' कहा जाता था ।[87]

यह निश्चय ही काफी पुरानी बात है क्योंकि वर्तमान काल में पंजाब में सात तारों वाले सितार का ही प्रचलन है । पंजाब में सितार का प्रचार हमेशा से ही काफी कम रहा है । सिक्ख कीर्तन में भी सितार का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है । कीर्तनकार सिक्ख भी सितार बजाने वाले काफी कम गिनती में हुए है । कीर्तन में सितार की उपस्थिति वाणी गायन करने वाले गायक की पसंद पर निर्भर करती है । उत्तरी भारत में सितार की शिक्षा विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों में दी जाने लगी है । जिससे सितार के प्रति सामान्य जन में भी झुकाव बढ़ रहा है । गुरमति संगीत में क्योंकि तंत्री वाद्यों

---

87. A.S. Paintel (Dr.), *The Nature and place of music in sikh Devotional music and its affinity with Indian music,* Page 322.

का स्थान एक अकेले हारमोनियम ने ले लिया है । परन्तु गुणी वाणी गायक तंत्री वाद्य के तौर पर सितार की संगति को अधिमान देते हैं ।

सिक्ख टकसालों, गुरमति संगीत केन्द्रों और गुरद्वारों में सितार की शिक्षा नहीं दी जाती । शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर ने वर्ष 1991 ई० में गुरमति कीर्तन में प्रयुक्त किये जाते रहे परन्तु लुप्त हो रहे प्राचीन तंत्री वाद्यों को पुर्नजागृति करने हेतु जो कार्य आरम्भ किये थे उनमें सितार को शामिल नहीं किया गया । यद्यपि बीसवीं सदी में ऐसे कीर्तनकार रागी काफी कम संख्या में मौजूद थे जो सितार पर शब्द की धुन बजाकर साथ-साथ गा सकते थे ।

वर्तमान समय में प्रो० दर्शन सिंह ने भाई निर्मल सिंह को अपने कीर्तन जत्थे में सितार वादक के तौर पर कुछ सालों के लिये शामिल किया था ।

डा० गुरनाम सिंह द्वारा 62 रागों में वाणी गायन के संकलन को एच. एम. वी. कम्पनी ने सन् 2000 में जारी किया है, उसमें उन्होंने अन्य तंत्री वाद्यों के साथ सितार की संगति भी अपने वाणी गायन के साथ अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से की है । वर्तमान काल में गुरमति संगीत में सितार वाद्य अपने उन्नति पथ पर अग्रसर है ।

सितार का स्वरूप :–

वर्तमान काल में प्रचलित सितार थोड़ा बहुत परिवर्तन करने के पश्चात् तीन प्रकार से बनाये जाते हैं । इनमें से एकल सितार में ऊपरी भाग में चिकारी सहित सात तारें होती है । यह सितार सीखने वाले के लिये उपयुक्त रहता है । युग्म सितार मे ऊपर की ओर सात तारें होती हैं । इनके इलावा ग्यारह तरबें होती है । सामान्यत सितार वादक इसी सितार का प्रयोग करते हैं । और दो तूम्बों वाली सितार में भी युग्म सितार की भाँति उसके ऊपरी भाग पर सात तारें और तरबें होती हैं । इसके इलावा ध्वनि में गुँजार उत्पन्न करने के लिये तारदान के पीछे एक तूम्बा और लगाया जाता है । इस सितार को उच्च श्रेणी के वादक प्रयोग में लाते हैं ।[88]

सितार के पहले दो रुप अत्यधिक प्रचार में है । पहली प्रकार के सितार में मुख्य तारों के अतिरिक्त तरब के तार नहीं होते । इस प्रकार के सितार को सादा सितार कहते हैं । यह सितार अधिक मंहगे नहीं होते । दूसरी प्रकार के सितार में मुख्य तारों के इलावा 'तरब' के तार भी लगे होते हैं । इस प्रकार को तरफदार सितार कहते है । अधिकतर देखा जाता है कि सितार सीखने वाले विद्यार्थी सादे सितार पर रियाज करते है और शिक्षक या कलाकार तरबदार सितार बजाते हैं । सादे सितार की अपेक्षा तरबदार सितार आकार में थोड़ा बड़ा होता है । उसमें सजावट का काम अधिक रहता है । इस सितार को काफी सावधानी से बनाया जाता है । जिस कारण सादे सितार की अपेक्षा तरबदार सितार की ध्वनि अपेक्षाकृत अधिक कर्णप्रिय, आसदार तथा मींड,

---

88. राम अवतार वीर, *भारतीय संगीत,* पृ० 92

खटका, मुरकी आदि के लिये अधिक उपयुक्त होती है । सितार का सम्पूर्ण ढाँचा दण्ड, तबली, तूम्बा, गुलू, खूँटी आदि से बनता है जिनका विवरण निम्नलिखित प्रकार से है

दंड सितार का वह भाग होता है जिसमें पर्दे बाँधे जाते हैं तथा तारों को बाँधने के लिये खूँटियां लगाई जाती है । दंड बनाने के लिये विभिन्न प्रकार की लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है । परन्तु अन्य लकड़ियों की अपेक्षा शीशम को अच्छा समझा जाता है । शीशम से अधिक अच्छा 'तुन' है किन्तु सबसे अच्छा लकड़ी टीक, विशेष रुप से बरमा टीक समझा जाता है । सम्पूर्ण दण्ड की लम्बाई चौंतीस इंच होती है । किसी सितार में दंड की लम्बाई एक-दो इंच छोटी या बड़ी भी हो सकती है । इसकी चौड़ाई साढ़े तीन इंच के लगभग होती है । दंड के ऊपरी भाग, जिस तरफ पर्दे लगे होते हैं तथा उसके पीछे के भाग, जिस और ताँत अथवा धागे का बँधाव रहता है, दोनों ही लकड़ी के अलग-अलग हिस्से होते हैं । इन दोनों हिस्सों को आवश्यकतानुसार तराश कर जोड़ दिया जाता है । उपर्युक्त लकड़ी के निचले भाग को इस प्रकार तराशते है कि उस का बाहरी भाग अर्धचन्द्राकार बन जाये और अन्दर के भाग को नाली के रुप में तराशा जाता है जिस कारण दंड खोखला हो जाता है । दण्ड के ऊपरी भाग की लकड़ी जिसे उक्त नाली को ढकने वाली साढ़े तीन इंच चौड़ी लकड़ी की पट्टी कहा जा सकता है, दो प्रकर से बनाई जाती है । सादे सितार के लिये यह पट्टी सीधी तथा सपाट होती है जबकि तरबदार सितार में इसे भी तराशा जाता है जिस के कारण दोनों किनारों पर तीन-तीन सूत मुँडेर छोड़ कर, जिसके ऊपर पर्दा रख कर बाँधा जा सके, भीतरी भाग को लगभग तीन सूत गहरा कर दिया जाता है ताकि तरब के तार पर्दो के नीचे से बिना किसी बाधा के लग सकें तथा अनुसरण कर सकें । इस तरह दण्ड के

दोनों भागों को जोड़ दिया जाता है । ऊपर की आरे से देखने पर दण्ड के तीन भाग दिखाई देते है, दूसरा भाग जो तार गहन और पचीसा के बीच का होता है, लगभग पौन इंच का होता है तथा तीसरा भाग जिसमें पर्दे लगे होते हैं । लगभग साढ़े पचीस इंच का होता है ।

''सितार के डाँड के ऊपर की काष्ठ पट्टी को पटरी कहा जाता है और तूम्बे को आच्छादित करने वाली काष्ठफल को तबली कहा जाता है ।[89]

दण्ड के नीचे ऊपरी भाग में तबली तथा नीचे के भाग में गुलू और तूम्बा लगा होता है । तबली प्राय: साढ़े बारह इंच से चौदह इंच तक चौड़ी होती है । यह तबली जो उस के नीचे के तूम्बे का एक प्रकार से ढक्कन होती है, कभी तूम्बे के खुले भाग की नाप के अनुरुप बनाई जाती है और तबली के आकार के अनुरुप तूम्बा काटा जाता है । सितार के इस भाग में स्थित तबली का बड़ा महत्त्व है । इसे भीतर से काफी सावधानी से तराशना पड़ता है, क्योंकि सितार की अच्छी ध्वनि बहुत कुछ तबली पर ही निर्भर है । तबली की भी वहीं लकड़ी होती है जो दण्ड की होती है । इसे भीतर की ओर तराशा जाता है और उसकी मोटाई जितनी हो सके उतनी कम रखी जाती है । इस बात का ध्यान अवश्य रखना पड़ता है कि अमुक तबली अमुक आकार की है और उसी के अनुसार तबली के लगभग मध्य में रखी गई घुड़च के ऊपर से सभी तार भिन्न-भिन्न धातुओं तथा भिन्न-भिन्न मोटाइयों के गुजरते हैं । तारों के कसे जाने पर उन सब के सम्मलित दबाव के कारण तबली अंदर की ओर दबनी नहीं चाहिये । कभी-कभी तबली की मोटाई कम हो जाने के कारण और सितार के तारों का दबाब

---

89. विमल कांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष,* पृ०

उनके अधिक कसाव से बढ़ जाने के कारण तबली घुड़च के स्थान पर अंदर की ओर धंस जाती है । इसे तबली का बैठ जाना कहते हैं, जिससे सितार की झंकार में कमी आ जाती है जिस कारण तबली को बदलना पड़ता है । कुछ कारीगरों ने सितार की गूंज बढ़ाने के लिये घुड़च के सामने तबली में एक अण्डाकार सुराख बनाना शुरु कर दिया । उन्होंने सोचा शायद ऐसा करने से तूम्बे के भीतर की गूँज को बाहर निकलने का रास्ता मिलेगा और सितार की ध्वनि अधिक अच्छी होगी परन्तु कई सितारों की तुलना के फलस्वरूप यह नया प्रयोग लाभकर सिद्ध न हो सका ।[90]

तबली के ऊपर के भाग में तबली की लकड़ी को तराश कर भिन्न-भिन्न प्रकार की पत्तियाँ अथवा बेलें बनाई जाती हैं । यदि यह काम अधिक हो जाता है तो तबली भारी हो जाती है जिससे सितार की गूँज पर बुरा प्रभाव पड़ता है । इस कारण तबली के ऊपर इस प्रकार की पत्तियों अथवा बेल का काम अधिक नहीं किया जाता । तबली के पीछे तूम्बा के ऊपर गुल् होता है । गुलू लकड़ी का वह मोड़दार हिस्सा है जो तबली और तूम्बे को परस्पर जोड़ता है । यह गुलू तूम्बे के उस छोर में चिपकाया जाता है जिधर से उस का सम्बन्ध दंड से होता है । गुलू को पहले तूम्बे से जोड़ते है तथा फिर उसमें दण्ड का लगभग दो से ढाई इंच तक भाग डाल कर ऊपर से तबली जोड़ देते हैं । सितार का यह जोड़ अपना एक विशेष महत्त्व रखता है । जिस प्रकार तारों के दबाव के कारण तबली के बैठ जाने का भय रहता है उसी प्रकार तारों के अधिक खिंचाव के कारण दण्ड उसी जोड़ के स्थान से आगे की ओर झुक जाता है । इस खराबी को दण्ड का टेढा हो जाना कहते है । तथा इसके परिणाम भी बहुत बुरे होते हैं । ऐसा सितार कलाकारों के वादन योग्य नहीं रहता । इस तरह के अनेक

---

90. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 133

ढाँचे कारीगर बना कर तैयार रखते हैं जिन्हें देख कर कलाकार अपनी पसन्द निश्चित करता है । जब सितार पूरा बनाना होता है तब ऊपर बताये हुए गुलू के साथ जोड़ते हुए तूम्बे के ऊपर महराबदार लकड़ी के भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्तों का काम बना कर चिपका देते हैं जो देखने में बहुत सुन्दर लगता है ।[91]

इस प्रकार सितार का ढाँचा तैयार हो जाने पर उसकी सजावट के लिये सेलोलाइट, हड्डी अथवा हाथी दाँत पर भिन्न-भिन्न प्रकार के फूल-पत्तियों की बेलें बना कर सितार की लकड़ी में चिपका देते हैं । वैसे इस सजावट के काम में कारीगरों ने अपनी कला के बहुत सुन्दर नमूने दिखाये हैं परन्तु सजावट का काम यदि जरुरत से ज्यादा हो जाये तो सितार की गूँज नष्ट होने का डर रहता है । इसलिये धनी लोग अपने सितार की सुन्दरता के लिये चाहे सजावट का काम अधिक करवायें परन्तु कलाकार कभी ऐसा पसन्द नहीं करते । सामान्य रुप से सजावट काम जितना काम जरुरी हो सकता है जिससे सितार की गूँज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता इस प्रकार है :

तबली तथा तूम्बे के जोड़ को छिपाने के लिये उसके चारों तरफ लगभग चार सूत की नक्काशी की हुई पट्टी लगाते हैं । लगोंट के पास केवल उतने स्थान पर जहाँ सभी तार तबली से स्पर्श करते हुए लंगोट तक जाते हैं, सजावट का एक टुकड़ा, जो सुन्दरता के साथ-साथ तबली को तारों की रगड़ से बचाता है, लगाते है । घुड़च से थोड़ा आगे हट कर तबली में दोनों और छोटी-छोटी चिडियाँ बनाई जाती है । तबली तथा दण्ड के जोड़ के स्थान पर इस प्रकार की सजावट का एक पत्ता बनाया जाता है जिसके फलस्वरुप जोड़ का स्थान ढक जाता है तथा यदि वादक के मिज़राब की चोट तबली पर पड़ती है तो इस पत्ते के कारण तबली की लकड़ी खराब नहीं होती । तबली

---

91. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 134

के पीछे, जहाँ गुलमू और मेहराबदार पत्तों का जोड़ होता है, उसे छिपाने के लिये नक्काशी की हुई पट्टी लगाई जाती है ।[92]

लकड़ी की पत्तियों पर सजावट का काम होता है । दण्ड के ऊपर की ओर दोनों किनारों पर नक्काशीदार पट्टियाँ लगाई जाती हैं तथा दण्ड के ऊपरी भाग में, जहाँ खूँटियां रहती हैं, इसी प्रकार नक़्क़ाशीदार पट्टियां लगाई जाती है ।[93]

पिछले चालीस पचास वर्षों में बड़े तरबदार सितार के दो तूम्बे लगाने की रीति प्रचलित हुई है, जयपुरी सितार में पहले तीन तूम्बे व्यवहृत होते थे । वर्तमान सितार के दो तूम्बों के अलावा प्रधान तूम्बे से एकदम संलग्न पीछे ही तृतीय तूम्बा लगता था । यह प्रचलन आजकल लुप्त है ।[94]

सितार में 'रुद्र-वीणा' और 'सुर-बहार' की तरह मुख्य खूँटियों के पास दण्ड के पीछे एक तूम्बा और लगाया जाता है । इस तूम्बे का आकार मुख्य तूम्बे से अपेक्षाकृत छोटा होता है । इस का व्यास लगभग बीस इंच से छब्बीस इंच तक होता है । दण्ड में जिस स्थान पर तार गहन तथा पचीसा होता है, ठीक उसके मध्य भाग में एक छिद्र बनाते हैं । उस छिद्र के ऊपर लगभग एक इंच चौड़ा तथा तीन इंच लम्बा लकड़ी का एक टुकड़ा नौका के समान बना कर उसमें छिद्र बना कर एक पेंचदार कड़ा लगा देते हैं जिससे आवश्यकतानुसार तूम्बे को दण्ड में कस देते हैं या निकाल लेते हैं । इस तूम्बे को पीछे की ओर से भी काट कर एक बड़ा छिद्र बना देते हैं जिससे

---

92. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*,पृ० 134

93. विमलकांत राय चौधरी, *भारतीय संगीत कोष*, पृ०

94. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पा. 135

दण्ड के भीतर की गूँज को निकलने का रास्ता मिलता है । इस तूम्बे में भी गुलू के नीचे मुख्य तूम्बे की भाँति लकड़ी के पत्ते बने रहते है। और कभी-कभी उस में सजावट की वृद्धि के लिये हड्डी का काम भी बना देते है। । इस दूसरे तूम्बे के द्वारा सितार की सुन्दरता के साथ ही स्वर की गूँज में भी सामान्य वृद्धि होती है । इसलिये प्राय: सभी अच्छे सितारों में इस तूम्बे की व्यवस्था होती है ।

सितार में तारों को बाँधने और कसने के लिये खूँटियां लगाई जाती हैं । साधारण रुप से सितार के मुख्य सात तारों के लिये सात बड़ी खूँटियां होती हैं जिनमें से दो खूँटियां दण्ड की खूँटियों के निर्धारित क्षेत्र में सामने की और लगाई जाती है और तीन खूँटियां दण्ड के उस किनारे पर लगाई जाती हैं जो सितार बजाते समय ऊपर की ओर रहता है । शेष दो मुख्य खूँटियां दण्ड के किनारे उस स्थान पर लगाई जाती हैं जहाँ पर्दे बंधे होते हैं । तरबदार सितार में इन सात बड़ी खूँटियों के इलावा ग्यारह छोटी खूँटियां तरब के तारों को बांधने के लिये लगाई जाती हैं । ये छोटी खूँटियां दण्ड के उसी किनारे पर लगाई जाती हैं जिधर बड़ी खूँटियां लगी होती हैं । इन तरब की खूँटियों को लगाने के लिये उनका स्थान निर्धारित करने से पहले इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक होता है कि आवश्यकता पड़ने पर सितार के जो पर्दे आगे-पीछे खिसकाये जाते हैं उनमें यह खूँटियां बाधा उप्पन्न ना करें । बड़ी खूँटियों के मूठ पर लकड़ी की नक़्क़ाशी बना दी जाती है और छोटी खूँटियों की मूठ को चिपटा बना दिया

जाता है ताकि हाथ की चुटकी से उसे सरलता से घुमाया जा सके । सभी खूँटियां इतनी लम्बी बनाई जाती हैं कि जिस ओर वे छिद्र में डाली जाती हैं उसके दूसरे किनारे की लकड़ी में बने छिद्र में प्रवेश कर सकें । इस प्रकार खूँटियां स्थिर हो जाती हैं और तार के कसाव से विचलित नहीं होती । तारों को फँसाने के लिये खूँटी में एक छोटा सा छिद्र बना दिया जाता है । मुख्य सात खूँटियों में ये छिद्र दिखाई देते हैं क्योंकि ये तार सितार के ऊपर से हो कर गुजरते हैं, किन्तु तरब की खूँटियों में ये छिद्र बाहर से नहीं दिखते । इन खूँटियों के उस भाग में, जो दण्ड के भीतर छिपा रहता है, छिद्र बनाये जाते हैं । क्योंकि तरब के तार सितार के पर्दो के नीचे से होकर गुजरते हैं इसलिये उन्हें बाहर से बाँधना सम्भव नहीं है । इसलिये प्रत्येक तार अपनी सीध में आता हुआ दण्ड के भीतर प्रवेश कर जाता है और उसे खूँटी पर बांध कर खूँटी को दण्ड में डाल कर कस दिया जाता है । जिस प्रकार तार को कसाने के लिये खूँटियों में छिद्र होते हैं उसी प्रकार तरब के तारों को गर्भ में ले जाने के लिये दण्ड में आवश्यकतानुसार छिद्र बनाये जाते हैं और इन छिद्रों पर हड्डी निर्मित मोहर लगा दी जाती है जिस से तार को कसने पर वह लकड़ी को स्पर्श नहीं कर पाता और वह हड्डी एक प्रकार से तार गहन का काम भी कर देती हैं ।[94] एक छोर पर तार खूँटी से बांधा जाता है तथा दूसरे छोर पर उन तारों को जिस स्थान पर बाँधा जाता है उसे लंगोट कहते हैं । अलग - अलग स्थानों से चल कर सभी तार घुड़च अथवा घोड़ी से हो कर ही गुजरते है । उस के बाद सभी

---

94. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 135

तार एक - दूसरे के पास सिमटते हुए लँगोट में आ कर फँस जाते हैं । यह लँगोट घुड़च के सामने तबली के किनारे उस स्थान पर बनाया जाता है जहाँ तबली और तूम्बा मिलते हैं । लगभग ढाई इंच लम्बा लकड़ी का एक त्रिकोण हिस्सा उस स्थान पर तूम्बे से जोड़ दे हैं और उस के मध्य मजबूत हड्डी की एक कील (खूँटी के समान) ठोंक देते है तथा इसी कील में सभी तार फँसा देते हैं । यदि लकड़ी का वह अतिरिक्त टुकड़ा उस तूम्बे में न जोड़ा जाए तो उस कील के खिंचाव को सहन करने की शक्ति उस तुम्बे में नहीं हो सकती । अच्छे स्तर के सितारों में लँगोट की व्यवस्था इस से कुछ और अधिक सुन्दर एवं सुदृढ़ होती है । इन में लकड़ी के स्थान पर वह समस्त टुकड़ा हड्डी का बनाते हैं । तार गहन, पचीसा तथा दाढ़ का मुख्य कार्य घुड़च के स्तर पर तार को उठाये रखना तथा उसे स्थिर रखना होता है ।

पचीसा हड्डी का बना वह टुकड़ा है जिस के मध्य मुख्य पाँच खूँटियों के तारों को प्रवेश कराने के लिए छिद्र रहता है । यह टुकड़ा दण्ड की चौड़ाई के नाप का होता है तथा लगभग एक इंच ऊँचा होता है । पचीसा से लगभग पौन इंच आगे तार गहन होता है । यह भी उसी प्रकार की हड्डी होती है जैसी कि पचीसा । अन्तर इतना ही है कि तार का प्रवेश पचीसा के मध्य बनायें गये छिद्रों से होता है और तार गहन के ऊपर से । यही तार गहन सितार में 'मेरु' का काम करता है तथा यदि खुला हुआ तार छेड़ा जाये तो प्रत्येक तार का मूल स्वर इसी स्थान से बोलता है ।

चिकारी की दो खूँटियों के, जो दण्ड के उस क्षेत्र में होती हैं, जहाँ पर्दे बँधे होते हैं, तारों को घुड़च के स्तर पर लाने के लिए दो अलग-अलग हड्डियों की कीलें उन से कुछ आगे दण्ड के किनारे खड़ी की जाती है । इन्हीं को 'दाढ़' कहते है। । इन के ऊपर भी साधारण खांचा बना देते है ताकि तार उस में फँसा रहे । इस प्रकार तार गहन, पचीसा तथा दाढ़ की व्यवस्था कर के तबली पर घुड़च रखी जाती है ।

तबली के ऊपर घुड़च रखने का स्थान आवश्यकतानुसार कारीगर निश्चित करते है । सामान्य रूप से घुड़च तबली के मध्यक्षेत्र से कुछ लँगोट की ओर हटा कर रखी जाती है । लँगोट के स्थान से घुड़च की दूरी लगभग चार इंच तथा दण्ड की ओर तबली के जोड़ स्थान से लगभग नौ इंच अथवा दस इंच पर रखी जाती है । घोड़ी अथवा घुड़च का ढाँचा लकड़ी का होता है किन्तु उस के ऊपर लगभग दो सूत मोटे दल की हड्डी का टुकड़ा चिपका दिया जाता है । घोड़ी आम तौर पर पौन तीन इंच लम्बी तथा लगभग एक से सवा इंच तक चौड़ी होती है । यह ऊपर से सपाट होती है जिस के ऊपर से मुख्य सात तार गुजरते हैं । इस घोड़ी की हड्डी में लँगोट की और साधारण सी मुड़ेर होती है जिस में खांचे बने होते हैं । इन्हीं खाँचों में तार फँसे रहते है । घुड़च पर रखे गये तारों का परस्पर अन्तर समान नहीं होता । बाज तथा जोड़ी के तारों का अन्तराल सर्वाधिक होता है जो लगभग आधा इंच होता है । जोड़ी के बाद चिकारी तक के तारों में यह अन्तर घटता जाता है। बाज का तार बजाते हुए अन्य तारों में अनावश्यक झंकार

न हो इसी लिए जोड़ी तथा बाज के तार में सर्वाधिक अन्तर रखा जाता है । इस घुड़च का ऊपरी सपाट भाग जवारी कहलाता है । इस के ऊपर तारों को रखने की ऐसी व्यवस्था की जाती है जिस से तार की ध्वनि में मधुर झंकार उप्पन्न हो तथा उसे बाने के बाद उस की ध्वनि में कोई झटका, उतार-चढ़ाव एवं कर्कशता न रह जाये । सितार में सब से महत्त्वपूर्ण कार्य जवारी खोलना ही माना जाता है क्योंकि, वाद्य चाहे जितना अच्छा हो, यदि उस की जवारी अच्छी खुली हुई न हो तो उसे कोई कलाकार बजाना पसन्द नहीं करेगा । जवारी खोलने का कार्य सभी कारीगर ठीक-ठीक नहीं कर पाते । इस के लिए कारीगर को अच्छा स्वर-ज्ञान होना आवश्यक होता है । आजकल हमारे देश में कुछ उेसे कारीगर है जो जवारी खोलने की कला का बहुत अच्छा ज्ञान रखते है । यदि जवारी अच्छी खुली हो तो वाद्य से मिलाने में कठिनाई नहीं होती तथा मीड़, मुर्की, कृन्तन आदि स्पष्ट और मधुर सुनाई पड़ते है ।

प्राचीन काल में जिन्हें 'सारिका' कहते थे, मध्य काल में कलाकार उन्हें 'सुन्दरियाँ' कहने लगे, उन्हीं को आजकल 'परदा' कहते है । इन्हीं परदों पर तार दबा कर भिन्न-भिन्न स्वर निकाले जाते है । पीतल के लगभग दो सूत मोटे तार को जिन में कोई-कोई कलई करवा देते है, दण्ड की चौड़ाई की नाप से काट लेते है तथा उस के दोनों छोरों पर गहरा खाँचा कर देते है। । दण्ड के ऊपर परदे को रख कर पतली ताँत से उसे के दोनों छोरों को कस कर बाँध देते हैं । आजकल ताँत के स्थान

पर मछली पकड़ने वाले रेशमी अथवा नायलॉन के पतले धागे से परदा बाँधने लगे हैं। ताँत की अपेक्षा यह अधिक मजबूत तथा देखने में सुन्दर होता है । अर्धचन्द्राकार रूप से परदे ऊपर की ओर मुड़े रहते हैं । यह उठाव इस ढंग से बनाया जाता है जिस से किसी विशेष परदे से तार का स्पर्श होने तक 'उस के आगे के परदे का उस से स्पर्श न हो । तार गहन से घोड़ी कुछ ऊपर उठी हुई होती है जिस से तार का उठाव तार गहन से घोड़ी की ओर स्पष्ट दिखाई पड़ता है । परदों का उठाव भी इस उठाव के अनुसार मन्द्र सप्तक की अपेक्षा तार सप्तक की ओर बढ़ता जाता है । परदों के उठाव का यह अन्तर इतना सूक्ष्म होता है कि सामान्यत: उस की ओर ध्यान ही नहीं जाता। परदों की ऐसी व्यवस्था 'सुरबहार' तथा 'दिलरुबा' आदि वाद्यों के अतिरिक्त और कहीं देखने को नहीं मिलती । परदों के इस मोड़ द्वारा 'बाज' के तार को खींच कर विभिन्न स्वर निकालने में तथा द्रुत-गति की तानों को बजाने में सुविधा होती है । मिज़राब अथवा जवा से बजाये जाने वाले जितने उत्तर तथा दक्षिण भारतीय वाद्य हैं, उन सब से तानों अथवा तोड़ों को सितार के समान द्रुत गति से नहीं बजाया जा सकता । इस विशेषता के कई कारणों में से परदों का अर्ध-चन्द्राकार होना भी एक कारण है । परदों की संख्या के आधार पर सितार दो प्रकार के माने जाते है : अचल ठाट के सितार तथा चल ठाट के सितार ।

अचल ठाट के सितार में चौबीस परदे बँधे होते हैं। जो इन स्वरों के हैं :

म प ध ध नी नी स रे रे ग ग म म प ध ध

नी नी स रें रें गं गं मं

चौबीस परदों के इन सितारों में किसी ठाट के राग-वादन के लिये परदों को आगे-पीछे हटाने की आवश्यकता नहीं होती । किन्तु इस व्यवस्था में द्रुत-गति की तानों को बजाते समय परदों की समान दूरी भ्रमात्मक होने लगती है । विशेष रूप से फेंक तथा छूट की तानों में राग के वर्जित स्वरों के परदों पर भी उँगली पड़ जाने का भय रहता है । अतएव धीरे-धीरे इस का प्रचार कम होता गया । इन दिनों वैसा सितार देखने को भी कम मिलता है ।

चल ठाट के सितार में परदों की संख्या कुछ वर्षो पूर्व तक १६ थी जिन में निम्नलिखित स्वरों का आविर्भाव होता था :

म प ध नी नी स रे ग म म प ध नी सं रे गं

उपर्युक्त सितारों में बीच-बीच के स्वर छूट जाने से परदों को परस्पर दूरी भिन्न होने के कारण स्वर स्थान स्पष्ट समझ में आते हैं इसलिए अधिक प्रचार चल ठाट के सितारों का रहा । जब वाद्य संगीत में तोड़ों के स्थान पर तानों का प्रयोग बढ़ने लगा । तब सोलह परदों के सितारों में भी कठिनाई आई । सोलह परदों के सितारों में

भिन्न-भिन्न ठाट के अनुसार परदों को आगे-पीछे सरकाना पड़ता है । ऐसे कई उत्तर भारतीय राग हैं जिन के आरोह में स्वर का जो रूप लगता है वह अवरोह में नहीं लगता । उदाहरण के लिए सारंग, देस, खमाज आदि के आरोह में शुद्ध निषाद का प्रयोग होता है तथा अवरोह में कोमल निषाद का । सोलह परदों के सितारों में निषाद का एक ही परदा होता है । यदि उसे शुद्ध निषाद में मिलायें तो में मिलायें तो कोमल निषाद तार को खींच कर निकालना होगा और यदि कोमल निषाद में परदा रखें तो शुद्ध निषाद के लिए तार खींचना पड़ेगा । तान के विभिन्न स्वर समुदायों के अन्तर्गत प्रत्येक बार किसी एक स्वर को तार खींच कर निकालना बहुत कठिन कार्य है तथा इस से स्वर-समूहों के स्वाभाविक बहाव में भी बाधा उत्पन्न होती है, अतएव कलाकारों ने तीन नये परदों को और बाँधना प्रारम्भ किया जिस से परदों की कुल संख्या 19 हो गयी, जिन में निम्नाकिंत स्वर उत्पन्न होते हैं :

म प ध़ ध नी़ नी स रे ग़ ग म म प ध नी़ नी सं रें गं

इस नई व्यवस्था में कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत का परदा न होने से परदों की पहचान भी बनी रही साथ ही दो निषाद तथ दो गान्धार लगने वाले रागों को सरलतापूर्वक परदा पर बजा लेने की सुविधा भी प्राप्त हो गई । अब प्राय: सभी सितार उन्नीस परदों वाले होते हैं । कुछ लोग तार सप्तक के मध्यम का परदा भी लगवा देते है जिस से उन के सितार के पदों की संख्या बीस हो जाती है । अच्छे कलाकार तार

सप्तक के मध्यम के इस परदे से तार खींच कर अति तार सप्तक के षड्ज तक सभी स्वर बजा लेते हैं ।

आधुनिक सितार में सात मुख्य तार होते हैं जिनमें से बाज के तार को मन्द्र मध्यम में, जोड़ी के तार को मन्द्र षड्ज में,जोड़ी के तार को मन्द्र षड्ज में,पंचम के तार को अति मन्द्र पंचम में, पंचम के तार को मन्द्र पंचम में, पपीहा के तार को मध्यम षड्ज में, चिकारी के तार को तार षड्ज में मिलाया जाता है।

स्वर मिलाने की उक्त व्यवस्था में गत लगभग 20 वर्षो से कुछ परिवर्तन हो गया है । इन नवीन परिवर्तनों से सितार का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ है । इस से अन्य वाद्यों में सितार का स्थान भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है । बाज का तार इसपात का होता है जिसे प्राचीन तथा नवीन दोनों पद्धति के अनुसार मन्द्र मध्यम में मिलाया जाता है । प्राचीन पद्धति के अनुसार मन्द्र मध्यम में मिलाया जाता है । प्राचीन पद्धति में यह नं. १ अथवा नं. २ की मोटाई का होता था, अब अधिकांश कलाकार नं. ३ की मोटाई का प्रयोग में ला रहें हैं । इस परिवर्तन के कारण एक तो सितार के मुख्य 'स' की ध्वनि पहले की अपेक्षा कुछ उतर गई, दूसरे मिज़राब के कड़े प्रहार पर भी तार की ध्वनि नहीं फटती । फलत: तीव्रता एवं मृदुता का क्षेत्र विस्तृत हो गया । जोड़ी के तार जोड़ा होता इसलिये इस के स्वर, धातु और मोटाई में कोई अन्तर नहीं होता है, किन्तु आधुनिक पद्धति में इस तार को अति मन्द्र पंचम में मिलाते हैं । यह पीतल अथवा

ताँबे का नं. २३ मोटाई का होता है । पंचम का तार पीतल का २३ नं. की मोटाई वाला होता था जिसे अति मन्द्र पंचम में मिलाते थे किन्तु नवीन पद्धति में यह पीतल का २४ नं. की मोटाई वाला होता है । और इसे अति मन्द्र षड्ज में मिलाते है । कुछ लोग इसे 'लरज का तार' भी कहते है । पंचम का तार यह तार इसपात का होता है। यह तार नं. २ अथवा नं. ३ की मोटाई का होता है जिसे मन्द्र पंचम में मिलाते हैं । इस के स्वर, धातु तथा मोटाई में कोई अन्तर नहीं पड़ा है । पपीहा का तार नं. १ अथवा नं २ का होता है तथा इसे मध्य षड्ज में मिलाते है । इस की व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं पड़ा है । चिकारी का तार, यह तार इसपात का होता है । प्राचीन काल में इस की मोटाई नं. १ की होती थी तथा इसे मध्य सप्तक के पंचम में मिलाते थे किन्तु नवीन पद्धति में इसे एक अथवा दो शून्य (सिंगल अथवा डबल जोरो) की मोटाई को लगाते और तार षड्ज में मिलाते हैं ।

नवीन प्रयोगों से सितार का विस्तार-क्षेत्र तथा उस की महत्ता में बड़ा परितर्वन हुआ है । आज से कुछ वर्षो पूर्व तक सितार में केवल 'बाज का तार' ही वादन योग्य था । शेष तार छेड़ने के काम आते थे किन्तु इन नवीन प्रयोगों से बाज के तार पर मन्द्र मध्यम तक जा कर मन्द्र ग, रे, स का वादन जोड़ी के तार पर अति मन्द्र के नी, ध, प का अति मन्द्र पंचम के तार पर तथा अति मन्द्र के म, ग, रे, स का वादन अति मन्द्र षड्ज के तार पर होने लगा है । इस प्रकार अब सितार में पूरे-पूरे चार सप्तकों

का प्रयोग होता है । मन्द्र षड्ज से नीचे के स्वरों का प्रयोग आलाप के समय ही किया जाता है जिन्हें प्राय: तार खींच कर निकालते हैं किन्तु कुछ ऐसे कलाकार भी है जो अति तार षड्ज से मन्द्र षड्ज तक की सपाट तान ले लेते हैं । तीन सप्तक की ऐसी सपाट तान कण्ठ संगीत में भी बहुत कम सुनी जाती है ।[95]

इन तारों के इलावा तरफ के तार लगाये जाते है। तरफ़ के सभी तार जो इसपात के होते हैं, स्वरों की ऊँचाई-नीचाई के अनुसार एक शून्य अथवा दो शून्य की मोटाई के चढ़ाये जाते हैं । कुछ लोग नं. १ की मोटाई के भी कुछ तार लगाते हैं ।

प्राचीन पद्धति के अनुसार तरफ़ के तारों को ध़ नी़ स रे ग म प ध नी सं रें में मिलाते थे।

इन स्वरों में राग के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता था । तरफ़ का प्रथम स्वर मन्द्र धैवत अथवा मन्द्र पंचम में मिलाया जाता था । तरफ़ें स्वत: झंकृत होती थीं, उन्हें छेड़ा नहीं जाता था । नवीन पद्धति में तरफ़ें यदा-कदा छेड़ी भी जाती हैं इसलिए तरफ़ का प्रथम स्वर मध्य सप्तक का 'स' होता है शेष स्वरों को राग के अनुसार मन्द्र निषाद अथवा मन्द्र धैवत से मिलाना प्रारम्भ करते है ।[96] अनुमान है कि तीस वर्ष पहले भी जयपुरी सितार पर चिकारी के तार का व्यवहार नहीं होता था, केवल पाँच तारों का ही व्यवहार होता था । मियां तानसेन के पुत्र-वंश के प्यार खां और दौहित वंश के अमराव

---

95. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 137.

96. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* पृ. 138

खाँ इन लोगों के शिष्य गुलाम मुहम्मद खां ने प्राय: 125 वर्ष पूर्व आलाप वादनोपयोगी वाद्य सुरबहार की सृष्टि की, और इस पर तरब और चिकारी के तार जोड़ दिये । इसके बाद सितार में भी चिकारी के तार लगाये गये । जयपुर के सेनिया संगीतकारों ने तब भी चिकारी का व्यवहार नहीं किया । गुलाम मुहम्मद खां साहब के पुत्र सज्जाद मुहम्मद खां कलकत्ता के विख्यात सुरबहार एवं सितारवादक थे । इमदाद खां को कई वर्षो तक सज्जाद मुहम्मद की सुर-साधना सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था ।

वर्तमान समय में अधिकांश स्थानों पर तड़पदार सितार का ही व्यवहार किया जाता है, तरब विहीन सितार शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में अब और दिखाई नहीं पड़ते। सितार मुख्यत: औचार, आलाप और गत बजाने का बाजन है । किन्तु इस पर मन्द्र षड्ज का तार लगाकार आलाप भी बजाया जा सकता है । आलाप-अंग ठीक होन पर भी खरजमन्द्र तार के लिये गत बजाने में इस वाद्य का व्यवहार असुविधाजनक है । चिकारी का प्रधान काम 'झाला' खरजमन्द्र तार-युक्त सितार में संतोषजनक नहीं होता ।[97]

वादन विधि : सितार पर मिज़राब के द्वारा विभिन्न बोलों द्वारा राग के स्वरों की ताल बद्ध रचना की जाती है । इस पद्धति को ''बाज'' कहते है। । बाज का अर्थ है बजाने का ढंग, रीति या प्रणाली । मध्य काल से वर्तमान काल तक बाज के कई प्रकार प्रचार में आये जिनमें से दो मुख्य हैं । मसीत खानी, रजाखानी ।

---

97. लाल मणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य*, पृ० 135

मसीत खानी में राग के स्वरों के अनुसार जब मिज़राब के बोलों को दिर दा दिर दा रा दा दा रा को दो बार बजाया जाता है ता उस गत को मसीतखानी गत कहते है। यह तीन ताल में निबद्ध होती है । इसमें स्थाई व अन्तरा दो चरण रहते हैं । मसीतखानी गत को ठाह, दिगुण, तिगुण, चौगुण, आड, कुआड, आठ गुण, सोलह गुण, गमक, सूत, तान और मिजराब के अनेक बोलों से सजा कर बजाया जाता है । आधुनिक काल में प्रत्येक वादक आलाप, जोड़ आलाप और झाला बजाने के पश्चात् मसीतखानी गत अवश्य बजाता है । रजाखानी गत का तानसेन के घराने के रजा खां द्वारा अविष्कार हुआ । इस गत की रचना तीन ताल में होती है । इसमें मध्य और द्रुत लय की प्रध ानता है । रजाखानी गत के बोलो की रचना निश्चित नहीं होती । इसमें तोड़ो का प्रयोग दुगुण लय में किया जाता है । इसमें गमक का काम सुन्दरता से दिखाया जाता है । रजाखानी गत के अन्त में झाले का काम दिखाया जाता है ।

तानपूरा : तानपूरा पारम्पिरिक गायन संगति का वाद्य है । आदि ग्रन्थ में तानपूरे का उल्लेख नहीं मिलता । यद्यपि तानपूरा एक प्राचीन वाद्य है जिसे पहले तंबूरा कहा जाता था । यह कहा जा सकता है कि गुरु साहिबान ने तानपूरे को कीर्तन उपयोगी न माना हो । क्योंकि तानपूरा गायन के साथ एक ही प्रकार के स्वर उत्पन्न करने वाला वाद्य है और गायन की शैली को तानपूरे पर नहीं निकाला जा सकता । गुरु साहिबान ने कीर्तन में उन्हें वाद्यों को प्रयुक्त किया है जो गायन के अनुगामी थे । या गायन की विशेषता उन वाद्यों से स्पष्ट झलकती थी जैसे रबाब, सारिन्दा, इसराज आदि ।

सिक्ख कीर्तन में केवल भाई चेला राज आदि सिन्धी कीर्तनकारों ने बीसवीं सदी में तंबूरे का प्रयोग किया ।

वादन विधि :- तानपूरे को दायें हाथ की बीच वाली दो अँगुलियों से बजाया जाता है । चार तारों में पहली तार मन्द्र पंचम में या मन्द्र मध्यम में दूसरे व तीसरे तार को मध्य षड्ज और चौथे तार को मन्द्र षड्ज से बजाया जाता है । तानपूरे को गोद में बिठा कर या सीधे लिटा कर पहली अँगुली से पहला तार और फिर दूसरे अँगुली से अन्य तीन तार बजाये जाते हैं।

गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्यों के गुरमति परम्परा अनुसार पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जैसा कि हमारे अध्ययन से प्रत्यक्ष है। इन वाद्यों में तंत्री वाद्यों को भिन्न भिन्न गुरू साहिबान ने समय समय पर सरपरस्ती दी और विकसित किया। इन वाद्यों की वादन परम्परा का मूल मनोरथ चाहे शब्द कीर्तन के साथ संगति करना है, परन्तु यह शब्द कीर्तन के साथ संगति करना है, परन्तु यह शब्द कीर्तन क्योंकि एक निश्चित संगीत प्रबन्ध का अनुगामी है, इस लिये इन वाद्यों का पर संगीतिक सुझाव के साथ साथ इस परम्परा का मूल सिद्धान्त स्वरूप और प्रकृति के बारे में ज्ञान भी जरूरी है और इन तन्त्री वाद्यों की विशेषता हमें गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों के संगीतिक वैज्ञानिक विश्लेषण के लिये प्रेरित करती है।

पंचम अध्याय

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण

5.1 गुरमति संगीत : वाद्य वर्गीकरण की संगीत वैज्ञानिकता

5.2 गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों की उपयोगिता व महत्त्व : संगीत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वैज्ञानिक विश्लेषण

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तन्त्री वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण

गुरमति संगीत मूलतया शब्द कीर्तन की गायन परम्परा है जिसमें वादन संगीत सहायक संगीत के तौर पर कार्यशील हे। इसका मूल प्रयोजन शब्द कीर्तन के द्वारा वाणी के आध्यात्मिक संदेश को लोगों तक संचारित करना है। गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्यों पर हम चतुर्थ अध्याय में विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं। सिक्ख धर्म के प्रथम गुरू श्री गुरू नानक देव जी के समय उनके परम शिष्य व देश देशान्तर के रटन के लिये विभिन्न उदासियों के साथी भाई मरदाना रबाब का वादन किया करते थे। इनके बाद इनके सपुत्र सहजाद गुरू अंगदेव जी के समय में भी रबाब का वादन करते रहे। इस तरह गुरमति संगीत के प्रारम्भिक काल में रबाब इस संगीत परम्परा प्रचलित वाद्य रहा। गुरमति संगीत परम्परा में प्रचलित एक अन्य वाद्य सरंदा श्री गुरू अर्जुन देव जी के काल में प्रचलित वाद्य था। श्री गुरू अमरदास जी को इस वाद्य का आविष्कारक माना जाता है। उन्होने इस वाद्य को शब्द कीर्तन में प्रयुक्त करके लोकप्रिय बनाया। इसराज तन्त्री वाद्य का प्रचार श्री गुरू अर्जुन देव जी के काल में माना जाता है। मयूर जैसी आकृति वाले वाद्य ताऊस का वादन गुरू हरगोबिन्द साहिब जी के दरबार में होता था। दिलरूबा वाद्य भी गुरमति संगीत परम्परा में प्रचलित वाद्य है। यह वाद्य विगत दो सौ वर्षों से कीर्तन में प्रचलित है। रबाब, सरंदा, ताउस आदि वाद्य विभिन्न गुरू साहिबान के काल

में प्रचलित रहे हैं। इन वाद्यों के पश्चात् श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के काल में तंबूरा वाद्य प्रचलित होना आरम्भ हो गया था।

सतारहवीं, अठारवीं शताब्दी तक मृदंग अथवा पखावज वाद्यों का वादन गुरमति संगीत में होता रहा।[1] क्योंकि इस समय तक ध्रुपद गायन की प्रधानता थी। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में तबला वाद्य का प्रचार पंजाब में हुआ। इसका प्रयोग शब्द कीर्तन में वर्तमान काल तक होता चला आ रहा है।

ढोलक, चिमटा, छैने, पड़ताल आदि वाद्यों का प्रयोग गुरमति संगीत के लोक गायन अंग में अधिक होता है। गुरूद्वारों में साधारण सिक्ख संगतें परिक्रमा करते समय इन वाद्यों के साथ गायन करते हुए चौकी निकालते हैं। नगर कीर्तन, सतिसंग कीर्तन इत्यादि में भी इन वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

उक्त वर्णित वाद्यों को गुरमति संगीत में विलक्ष्ण वाद्य वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया जिससे तत (वह वाद्य जिनमें तंद व तारों का प्रयोग किया जाता है) बित (वह वाद्य जो चमड़े द्वारा मढ़े हों) घन (धातु से बने वाद्य) मुखर (खोखले वाद्य जिन्हें हाथों के प्रहार से ताड़ित किया जाता हो) सुखर (बाँस या खोखली लकड़ी या धातु के बने वाद्य जो श्वास या पफूँक से बजाये जाते हैं)

मुखर वाद्य वर्गीकरण भारतीय संगीत में प्रचार में नहीं है। गुरमति संगीत में इन वाद्यों में से तत, बित, घन वाद्यों का ही प्रयोग होता है। इन वाद्यों का संगीत वैज्ञानिक

1. (बाजे बजहि मृदंग अनाहद) *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* महल्ला 5, पृ. 1272

विश्लेषण इनकी प्रकृति व गुरमति संगीत में इनकी उपयोगिता के संदर्भ में इतिहासिक दृष्टिकोण से किया जा सकता है। हमारा यह शोध कार्य केवल तंत्री वाद्यों तक सीमित है इसलिये हम गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों की उपयोगिता व उनके संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करेंगे।

1. **रबाब :–** इतिहासिक हवालों से अवगत होता है कि रबाब अरब, पूर्वी व योरूप के देशों में प्रचलित रहा तथा इसके वादन करने वाले भ्रमणकारी सैलानी सोदागर थे। श्री गुरू नानक देव जी ने उदासियों के प्रारम्भ में भाई मरदाना के लिये विशेष प्रकार का रबाब तैयार करवाया जिसे भाई फरंदा ने तैयार किया। भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार फरंदा राग विद्या में पूर्ण पंडित थे जिन्होंने श्री गुरू नानक देव जी की आज्ञा से भाई मरदाने को राग विद्या सिखाई और रबाब वाद्य सतिगुरू गाँव भैरोंआणा (जहाँ गुरूद्वारा मंजी साहब बना हुआ है) में भेंट किया।[2]

यह रबाब दूसरे रबाबों से कुछ भिन्न था। पुरातन समय में दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व अरब के अैल पफाराबी ने एक रबाब का वर्णन किया है जो गज से बजाया जाता था। परन्तु कश्मीर व अपफगानिस्तान में बजने वाला रबाब जवा से ही बजता था और यही उत्तरी भारत में प्रचलित रहा।[3]

गुरू नानक देव जी द्वारा तैयार फिरंदिया रबाब जवा से ही बजाया जाता था लेकिन इसका तूम्बा चपटा न होकर गोल था। भाई मरदाना के कई पुरातन चित्रों में

---

2. काहन सिंह नाभा (भाई) महान् कोष, पृ. 816, 925

3. The Mirror, May 1980, Page 95

दर्शाई गई रबाब व हिमाचल प्रदेश के मंडी शहर में गुरू गोबिन्द सिंह जी के ऐतिहासिक रबाब की बनावट भी ऐसी ही है और यही रबाब गुरमति संगीत में प्रचार में रहा। भाई पिफरंदिया रबाब में छह: तारों की बजाय चार तारों का ही प्रयोग किया जाता था। इस रबाब को बजाने के लिये वादन मुद्रा भी भिन्न है, जैसा कि मरदाना के कुछ पुरातन चित्रों से पता चलता है।

हरिमंदर साहिब में प्राप्त पुरातन चित्रों में दर्शाया गया रबाब और आधुनिक रबाब, इन दोनों प्रकारों से मरदाना के रबाब का स्वरूप भिन्न है। जिसके तूम्बे का आकार चौड़ा और बड़ा दर्शाया गया है। इसके ऊपर चार तारें दिखाई देती हैं। रबाब बजाते हुए भाई मरदाने की बैठक और वादन-विधि भी भिन्न है। जिसमें डाँड वाला भाग बाँयी ओर से ऊपर को उठाया हुआ है और दायीं टाँग और छाती से लगा कर इसकी तारों को छेड़ा जाता है। इस रबाब में परम्परागत तारों का प्रयोग ही किया जाता है। जैसे कि 'जील का तार'।[4]

यह तार रबाब में आरम्भ से ही प्रयुक्त किया जाता था। 'हिमाचल के मंडी शहर में गुरू गोबिन्द सिंह जी के इतिहासिक गुरूधाम में एक रबाब के दर्शन करवाये जाते हैं जिसे गुरू गोबिन्द सिंह जी का रबाब भी कहा जाता है। इसके तार तो चाहे टूट चुके हैं पर जील की तार अभी भी लगी हुई है।[5]

---

4. 'जील बिना कैसे बजे रबाब' *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,* महल्ला 5, पृ. 1140
5. गुरनाम सिंह (डा.) गुरमति संगीत : प्रबन्ध ते पासार, पृ. 159

उक्त वर्णित पिफरंदिया रबाब गुरमति संगीत का विलक्षण रबाब है जो श्री गुरू नानक देव जी का विश्व संगीत को अनुपम योगदान है।

श्री गुरू नानक देव जी के द्वारा रबाब वाद्य का प्रयोग संगीत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। सपफर में ले जाने के लिये अति उपयुक्त रबाब खुली पिफजा को अपनी गहर गम्भीर आवाज से दूर-दूर तक गुँजारित करने में समर्थ है। रबाब का सौदंर्य भरपूर नाद हर मानव मन को आकर्षित करता है। जिससे श्रृंगारिक व उत्तेजित नाद भाव ना होकर गम्भीर नाद भाव प्रकट होते हैं। गुरमति संगीत में आध्यात्मिक वाणी के संचार के दृष्टिकोण से यह अति उपयुक्त वाद्य है। गुरू नानक देव जी अपनी उदासियों के दौरान जिस स्थान पर भी जाते वहाँ वह भाई मरदाना को रबाब छेड़ने के लिये कहते और इस रबाब के वादन के साथ किया गया उनका शब्द कीर्तन जिंज्ञासुओं के मनों को शाँत करता। गुरू नानक साहिब अपनी वाणी के द्वारा अपना आध्यात्मिक संदेश लोगों को देते थे।

गुरू नानक देव जी की उदासियों के लिये रबाब इसलिये भी उपयुक्त वाद्य था, क्योंकि यह वाद्य स्वर व राग धुन के अतिरिक्त लय स्थापित करने के लिये भी सहायक होता है। तारों पर जवा के बार-बार निरंतर झंकार से यह वाद्य विशेष प्रकार का संगीतिक माहौल उत्पन्न करता है। इसीलिये भाई मरदाना का रबाब गुरमति संगीत का प्रथम सपफल वाद्य रहा, जिसने श्री गुरू नानक देव जी की उदासियों के दौरान

अलग-अलग स्थानों के लोगों तक गुरू का संदेश पहुँचाया।

2. **सरंदा :-** गुरमति संगीत में प्रयुक्त दूसरा प्रमुख वाद्य सरंदा है जो रबाब के बाद सिक्ख शब्द कीर्तन में प्रचार में आया। गुरू अर्जुन देव जी के समय तक यह वाद्य सिक्ख कीर्तनकारों में प्रिय हो चुका था। इतिहास से हमें यह भी हवाला मिलता है कि श्री गुरू अर्जुन देव जी स्वंय भी इस वाद्य के साथ कीर्तन किया करते थे।

महान् कोष में भई काहन सिंह नाभा लिखते हैं कि सरंदा उत्तम स्वर देने वाला तारदार वाद्य है जिसको गज़ के साथ बजाया जाता है जिसे गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी तजवीज से बनाकर सिक्ख रागियों को बख्शा और बजाना सिखाया।[6]

यह वाद्य गुरू साहिबान के काल में अत्यन्त प्रचलित हो चुका था। इस वाद्य का प्रचलन श्री गुरू अमरदास जी से हुआ जिन्होने सरंदा को शब्द कीर्तन में विशेष रूप में प्रयुक्त किया। 'अठारवीं उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में भाई करम सिंह, भाई लाभ सिंह, भाई संगत सिंह आदि के इलावा इस वाद्य के वादन ब्रह्म ज्ञानी बाबा शाम सिंह थे जिन्होंने सत्तर वर्षों तक इस वाद्य का वादन कीर्तन में किया। उनके द्वारा बजाया गया सरंदा सिक्ख अजायब घर श्री दरबार साहिब अमृतसर में सुरक्षित पड़ा है।[7]

सरंदा गज से बजने वाला मधुर व गम्भीर वाद्य है। इसकी ध्वनि सारंगी की भाँति तीखापन लिये नहीं होती बल्कि विशेष प्रकार की गम्भीरता लिये होती है। इसलिये शब्द

---

6. काहन सिंह नाभा (भाई) *गुरू शब्द रत्नाकर महान्कोष,* पृ. 171
7. गुरनाम सिंह (डा.) *गुरमति संगीत : प्रबन्ध ने पासार,* पृ.160

कीर्तन के लिये यह अति उपयुक्त वाद्य है। इस वाद्य का 'वाया' (अथवा वह स्थान जिसके उपर अँगुलियों से तारों को स्पर्श कर स्वर उत्पन्न किये जाते हैं) छोटा होता है। इसलिये यह वाद्य गायन में सहायक वाद्य के रूप में ज्यादा उपयुक्त है। इसके स्वतन्त्र वादन की परम्परा विकसित नहीं हो पाई परन्तु गायन में संगति वाद्य के रूप में यह उपयुक्त वाद्य है। गुरमति संगीत में शब्द कीर्तन के अर्न्तगत वाद्यों का स्वतन्त्र वादन नहीं होता। इसलिये यह वाद्य सिक्ख कीर्तनकारों के द्वारा विशेष रूप में प्रयोग किया गया।

3. **इसराज :–** इसराज वाद्य का प्रचार श्री गुरू अर्जुन देव जी के काल में हुआ। यह गज के द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य है। इसकी ध्वनि सरंदे से बारीक और सारंगी से भारी होती है। इस वाद्य को गायकी और तन्त्रकारी दोनों शैलियों के साथ बजाया जाता है। गायकी की विशेष बारीकियों जैसे गमक, मींड, मूर्की आदि को इस वाद्य पर बाखूबी प्रदर्शित किया जा सकता है। इसीलिये गुरमति संगीत में इस वाद्य का प्रयोग इसमें समाहित गायकी के गुणों के कारण होता रहा। इसमें दायें हाथ से गज के द्वारा और बायें हाथ की पहली, दूसरी या तीसरी अँगुली से पर्दों पर तार को दबाने से विभिन्न स्वरों की उत्पति होती है। गज का परिचालन विशेष प्रकार से करते हुए इसके वादन को मधुर व कलात्मक बनाया जाता है।

4. **ताऊस :–** इसराज वाद्य की तबली वाले भाग को यदि म्यूर की आकृति का बना दिया जाये तो उसे ताऊस कहा जाता है। ताऊस अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है म्यूर। इस वाद्य की बनावट और वादन विधि इसराज की भाँति ही है। श्री गुरू हरगोबिन्द जी के दरबार में ताऊस वाद्य का वादन शब्द कीर्तन में किया जाता था। गुरमति संगीत के अर्न्तगत महाराजा हरि सिंह नाभा के संगीतकार महन्त गज्जा सिंह ताऊस वाद्य बजाने में निपुण थे।

5. **दिलरुबा :-** सिक्ख कीर्तन में दिलरूबा का वादन अठाहरवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है। यह वाद्य इसराज की भाँति ही है। इसकी डॉड इसराज की डाँड से छोटी होती है। तबली का आकार बड़ा होता है जिसे खोखली लकड़ी से बना कर चमड़े से मढ़ा जाता है। अन्य तन्त्री वाद्यों की भाँति घोड़ी, तारगहन व खूँटियों की व्यवस्था की जाती है। दिलरुबा में मुख्य चार तार लगाये जाते हैं जिन्हें क्रमश: मन्द्र मध्यम, मन्द्र षडज, मन्द्र पंचम और मन्द्र षडज से मिलाया जाता है। इन चार मुख्य तारों के इलावा पन्द्रह या सतारह तरब की तारें लगाई जाती हैं। जिन्हें राग में लगने वाले स्वर समूहों के अनुसार मिलाया जाता है।

आधुनिक दिलरूबा में पर्दों की व्यवस्था भी रहती है। परन्तु पुरातन दिलरूबा में पर्दे नहीं लगाये जाते थे। दिलरूबा की ध्वनि सारंगी से गम्भीर होती है परन्तु ध्वनि का घनत्व सारंगी से कम होता है। इसलिये इस वाद्य को सारंगी से अधिक प्रयोग किया

जाता है। परन्तु आजकल दिलरूबा वाद्य बजाने वालों की संख्या कापफी कम हो गई है। महन्त गज्जा सिंह के शिष्य उस्ताद हरनाम सिंह प्रसिद्ध दिलरूबा वादक थे। सिक्ख कीर्तन में इस वाद्य का तन्त्री वाद्य के रूप में कापफी प्रचार रहा है।

6. **तंबूरा** : तंबूरा वाद्य गायन संगीत में मूल आधार माना जाता है। इस वाद्य का संबंध तंबूर ऋषि से जोड़ा जाता है। तानपूरे का आधुनिक रूप तंबूरा में अनेक परिवर्तनों और विकास के क्रमों के पश्चात् सामने आया है। गुरमति संगीत के अर्न्तगत श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के काल में इस वाद्य का प्रचार दृष्टिगोचर होता है। कहा जाता है कि वे स्वंय भी तंबूरे के साथ शब्द गायन किया करते थे।

तंबूरे के संगीतिक महत्त्व का स्पष्ट प्रमाण दशम ग्रन्थ और सरबलोह ग्रन्थ की संगीतिक महानता है। वर्तमान काल में कई गुणी उस्ताद सिक्ख कीर्तनकारों द्वारा तंबूरे का प्रयोग निरंतर चला आ रहा है चाहे हारमोनियम के आने से इसका प्रयोग भी अन्य तन्त्री वाद्यों की तरह उतना नहीं रहा पिफर भी गुरमति संगीत के अन्य तन्त्री वाद्यों से इसका प्रचार अधिक है।[8]

7. **सितार** :- सितार सिक्ख कीर्तन में प्रयुक्त होने वाला पुरातन वाद्य नहीं है। परन्तु वर्तमान समय में सिक्ख कीर्तन में इस वाद्य का कापफी प्रयोग हो रहा हैं। इस वाद्य के आविष्कारक के विषय में भारतीय संगीत में अनेक मतभेद पाये गये हैं। सितार के इतिहासिक विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर संगीत विज्ञानी इस निष्कर्ष

---

8. गुरनाम सिंह (डा.) *गुरमति संगीत : प्रबन्ध ते पासार*, पृ. 163

पर पहुँचे हैं कि यह वाद्य पुरातन वीणाओं से ही विकसित होकर नवीन स्वरूप को प्राप्त हुआ है। गुरमीत संगीत के अर्न्तगत इस वाद्य का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी से ही स्पष्ट रूप में सामने आता है। आजकल सिक्ख कीर्तन में अन्य पुरातन तन्त्री वाद्यों की अपेक्षा इस वाद्य का अधिक प्रयोग हो रहा है।

इस वाद्य की ध्वनि में चाहे रबाब व सरंदे जैसी गम्भीरता नहीं है परन्तु शब्द गायन में अनुकरण करने की बहुत क्षमता है। इसमें सौंदर्य उत्पादक तत्त्वों जैसे कण, मींड, खटका आदि के द्वारा गायन का अनुकारण आसानी से किया जा सकता है। इस विशेषता के इलावा सितार के पर्दों को रागों के स्वरूप के अनुसार स्वरों के उचित स्थानों पर निर्धारित किया जा सकता है। इसलिये यह वाद्य गुरमति संगीत के अप्रचलित रागों के अनोखे स्वरूपों को समूर्त करने में विशेष तौर पर सार्थक है। जिस कारण गुरमति संगीत परम्परा में कुछ कीर्तनकारों ने शब्द गायन में इस तन्त्री वाद्य को स्थान दिया है।

गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्यों की उपयोगिता व महत्व

गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों का सिक्ख धर्म में विशिष्ट प्रयोग एक एतिहासिक महत्त्व रखता है। इनका प्रचलन विभिन्न गुरू साहिबानों ने अपने अपने कालों में किया। यह तंत्री वाद्य गुरमति संगीत के विकास का अभिन्न अंग है। गुरू साहिबानों ने इन वाद्यों की मूल प्रकृति व उनके प्रयोगात्मक महत्त्व की दृष्टि के संदर्भ में वादन उच्चता प्रदान की। इन वाद्यों का विकासात्मक अध्ययन किया जाये तो यह

वाद्य किसी विशिष्ट सामाजिक श्रेणी के वाद्य नहीं थे। इन वाद्यों का जनसाधारण में परिचय बनाने के लिये गुरू साहिबान ने इनको शब्द कीर्तन के लिये प्रचारित किया। इन वाद्यों के इस प्रयोग से जनसाधारण में यह वाद्य परिचित हुए और गुरू साहिबानों ने इन वाद्यों की सह उपयोगिता को बढ़ाने के लिये इनमें कुछ परिवर्तन भी किये। इस संदर्भ में गुरू नानक देव जी द्वारा विशेष किस्म का रबाब तैयार करवाना, गुरू अर्जुनदेव जी द्वारा सरंदा का विकास, गुरू हरगोबिन्द जी के काल में इसराज से ताऊस का निर्माण व प्रचार आदि उक्त धारणा का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गुरमति संगीत के यह तंत्री वाद्य चाहे जवा से बजे या गज से इनकी प्रकृति गम्भीर व नाद का घनत्व गायन के लिये उपयुक्त व सधा हुआ है। जैसे कि हम पहले विश्लेषित कर चुके हैं कि इन तंत्री वाद्यों का मूल उद्देश्य शब्द कीर्तन का अनुकरण करना है। इस संदर्भ में इनके उपयोगिक महत्व को पहचानना अनिवार्य होगा। गुरमति संगीत में शब्द कीर्तन के रूप में गाई जाने वाली सामग्री वाणी के रूप में है। इस वाणी को विभिन्न का प्रयोग किया गया है। इन भावों के चित्रण के लिये यह राग अति उपयुक्त है। इसी प्रकार राग मल्हार, बसंत, सूही आदि कई रागों में सम्बन्धित वाणी के भाव चित्रण के अनुसार रागों का प्रयोग विलक्षणीय है।

गुरू साहिबान ने इन रागों का प्रयोग करते हुए रागों के अनेक रूपों का इस्तेमाल किया है। जिनमें एक मुख्य राग के अनेक रूप प्रयोग किये हैं। जैसे :-

1. **गाऊड़ी :**

(अ) गउड़ी गुयारेरी

(आ) गउड़ी दक्षणी

(इ) गउड़ी चेती

(स) गउड़ी बैरागणि

(ह) गउड़ी पूर्वी दीपकी

(क) गउड़ी पूर्वी

(ख) गउड़ी दीपकी

(ग) गउड़ी माझ

(घ) गउड़ी मालवा

(ड.) गउड़ी माला

2. **आसा**

(क) आसा कापफी

(ख) आसावरी

3. **देवगन्धारी**

(क) देवगन्धार

4. **वडहंस**

(क) वडहंस दखनी

5. **तिलंग**

(क) तिलंग कापफी

6. **सूही**

(क) सूही कापफी

7. **बिलाबल**

(क) बिलाबल दखनी

8. **गौड**

(क) बिलाबल गौड़

9. **रामकली**

(क) रामकली दखनी

10. **नट नारायण**

(क) नट

11. **मारू**

(क) मारू कापफी

(ख) मारू दखनी

12. **बसंत**

(क) बसंत हिडोंल

13. **कल्याण**

(क) बसंत हिडोंल

13. **कल्याण**

(क) कल्याण भोपाली

14. **प्रभाती**

(क) प्रभाती विभास

(ख) प्रभाती दखनी

(ग) विभास दखनी

इन विभिन्न राग रूपों के प्रयोग का प्रयोजन इनकी प्रकृति व स्वरों की विचित्रता हैं। जिनको वाणी के अनुरूप अंकित किया गया है।

राग परम्परा के अनुसार यह राग स्वरों के विभिन्न रूप रखते हैं। जैसा कि स्वरों के कोमल, अति कोमल, आन्दोलित, चढ़े हुए या उतरे हुए अनेक स्वर रूप रागों की विलक्षण पहचान बनाने के लिये अनिवार्य हैं। गुरमति संगीत में रागों की परम्परा में देखा जाये तो भैरव और गौडी का रिषभ भिन्न-भिन्न हैं। इसी तरह कान्हडा में गन्धार की स्थिति व गौडी के विभिन्न प्रकारों में स्वरों के रूप भिन्न-भिन्न हैं। जिन्हें प्रकट करने के लिये तन्त्री वाद्य ही उपयुक्त हैं। इन तंत्री वाद्यों में स्वर उत्पन्न करने के लिये स्थान वर्तमान पिफक्स हारमोनियम स्केल की तरह नहीं होते बल्कि स्वर के

शुद्ध व विलक्षण स्वरूप को इनमें कायम रखा जा सकता है। तंत्री वाद्यों की यही महान् विचित्रता व विलक्ष्णता है कि यह रागों के शुद्ध व मौलिक स्वरूप का अनुकरण कर सकते हैं, जिससे राग की शुद्ध प्रकृति भंग नहीं होती। और जब राग का शुद्ध व मौलिक स्वरूप प्रकट होगा तो निश्चय ही शब्द कीर्तन में वाणी के भावों का सही संचार भी होगा।

शब्द कीर्तन में प्रयुक्त आलाप, मींड, कण, खटका आदि सौदंर्य उत्पादक तत्वों का हुबहु अनुकरण भी तंत्री वाद्यों पर ही सम्भव है। इसके इलावा तंत्री वाद्यों की अनुकरणात्मक क्षमता भी इन तंत्री वाद्यों के उपयोगात्मक महत्व को सदृढ़ करवाते हैं। गुरमति संगीत के शब्द संचार के लिये इन वाद्यों की वादन विधि को इस प्रकार विश्लेशित किया जा सकता है।

सिरी राग			तीन ताल
स्थाई	2	0	3
	सरे नीस प प	मे ध मे मे	ग रे - स
	हऽ रिऽ बि नु	जी ऽ उ ज	लि न ऽ लि
गरे - - सरे			
ज ऽ ऽ उ			
	सरे नीस प प	मे ध मे मे	ग रे - स
	दिर दिर दा रा	दा रा दा रा	दा रा ऽ दा
गरे - - सरे			
दा ऽ ऽ रा			
	- - - -	स नी ध प	मे प नी स
	ऽ ऽ ऽ ऽ	मै ऽ आ प	णा ऽ गु रू
	रे रे स -	- स प प	मे ध मे ग
	दे खि आ ऽ	ऽ अ व रु	ना ऽ ही ऽ
गरे - सरे -			
था ऽ उ ऽ			
	सरे नीस प प	मे ध मे मे	ग रे - स
	हऽ रिऽ बि नु	जी ऽ उ ज	लि ब ऽ लि
गरे - - सरे			
जा ऽ ऽ उ			
	सरे नीस प प	मे ध मे मे	ग रे - स
	दिर दिर दा रा	दा रा दा रा	दा रा ऽ दा
गरे - - सरे			
दा ऽ ऽ रा			

सिरी राग

अन्तरा	2	0	3
		सं नी ध़ प	प - मे ग
		म तु दे खि	मू ऽ ला ऽ
- रे़ ग रे़	स - - -	सस प प प	मे ध़ मे ग
ऽ वी ऽ स	रै ऽ ऽ ऽ	तेरा चि ति न	आ ऽ वै ऽ
गरे - - गरे			
ना ऽ ऽ उ			
	सरे़ नीस प प	में ध़ मे मे	ग रे़ - स
	हड रिड बि नु	जी ऽ उ ज	लि न ऽ लि
गरे - - सरे़	सरे़ नीस प प	मे ध़ मे म	ग रे़ - स
जा ऽ ऽ ऊ	दिर दिर दा री	दा रा दा रा	दा रा ऽ दा
गरे़ - - सऱ			
दा ऽ ऽ रा			

राग गउडी			
स्थाई	2	0	तीन ताल
	संनी नीध़ धप म	- ध़ पध़ म	प ग रे ग
	साऽ ऽऽ धोऽ ऽ	ऽ गो ऽबिं ऽद	के ऽ गु न
रे - स -	- रे -नी सरे	म म प -	- सं सं -सं -सं
गा ऽ वउ ऽ	ऽ मा ऽन ऽस	ज न मु ऽ	ऽ अमो ऽल ऽकु
नी - सं -	- सरे -सं -रे	नी - सं सं	ध़ - म प
प ऽ इओ ऽ	ऽ बिर ऽथा ऽऽ	का ऽ हि ग	व ऽ वउ ऽ
- - - -			
ऽ ऽ ऽ ऽ			
	संनी नीध़ धप म	- ध़ पध़ -म	प ग रे ग
	साऽ ऽऽ धोऽ ऽ	ऽ गो ऽबिं ऽद	क ऽ गु न
रे - स -	संनी नीध़ धप म	- ध़ पध़ -म	प ग रे ग
गा ऽ रा ऽ	दिर दिर दिर दा	ऽ दा दिर ऽदा	दा रा दा रा
रे - स -			
दा ऽ रा ऽ			
	संनी नीध़ धप म	- ध़ पध़ -म	प ग रे ग
	दिर दिर दिर दा	ऽ दा दिर ऽदा	दा रा दा रा

राग गउडी

तीन ताल

X				2				0				3			
	अन्तरा			–	धप	–ध	–म	प	ग	म	–	–	पध	पम	प
				ऽ	पति	ऽत	–पु	नी	ऽ	त	ऽ	ऽ	वी	ऽऽ	न
नी	नी	सं	सं	–	रेंरें	–रें	–रें	रें	–	–	–	सं	रें	गं	रें
बं	ध	ह	रि	ऽ	सर	ऽनि	ऽता	हि	ऽ	ऽ	ऽ	तु	म	अ	ऽ
सं	–	–	–												
वउ	ऽ	ऽ	ऽ												
				–	रेंरें	–रें	–रें	रें	–	–	–	सं	रें	गं	रें
				ऽ	दिर	ऽदा	ऽरा	द	ऽ	ऽ	ऽ	द	रा	द	रा
सं	–	–	–												
दा	ऽ	ऽ	ऽ												
				–	धप	–ध	–म	प	ग	म	–	–	पध	पम	प
				ऽ	गज	ऽको	ऽऽ	ता	ऽ	सु	ऽ	ऽ	मिटि	ओऽ	जिह
नी	नी	सं	सं	–	–	रेंरें	रें	रें	–	–	–	सं	रें	गं	रें
मि	म	र	त	ऽ	ऽ	तुम	का	हे	ऽ	ऽ	ऽ	नि	स	रा	ऽ
सं	–	–	–	–	–	सरे	सरे	नी	–	सं	सं	ध	–	म	प
वउ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	तुम	काऽ	हे	ऽ	ब्रि	स	रा	ऽ	वउ	ऽ
–	–	–	–												
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ												
				संनी	नीध	धप	म	–	ध	पध	–म	प	ग	रे	ग
				साऽ	ऽऽ	धोऽ	ऽ	ऽ	गो	ऽबिं	ऽद	के	ऽ	गु	न
रे	–	स	–												
ग	ऽ	वउ	ऽ												
				संनी	नीध	धप	म	–	ध	पध	–म	प	ग	रे	ग
				दिर	दिर	दिर	द	ऽ	द	दिर	ऽदा	द	रा	द	रा
रे	–	स	–												
द	ऽ	रा	ऽ												

राग माझ

स्थाई	2	0	3
	ध - पम प	मग म -	ग - रे -
	हउ ऽ धोऽ ऽ	लीऽ ऽ ऽ	जी ऽ उ ऽ
प - -	प - प -	ध - -	पम प मग म
घो ऽ ऽ	लि ऽ घु ऽ	म ऽ ऽ	ईऽ ऽ ऽऽ ऽ
ग रे -			
ऽ ऽ ऽ			
	ध - पम प	मग म -	ग - रे -
	दा ऽ दिर दा	दिर दा ऽ	दा ऽ ऽ
	प - दिर दा	ध - -	पम प मग म
	प - प -	दा ऽ रा ऽ	दिर दा दिर दा
प - -			
दा ऽ ऽ			
ग रे -			
दा रा ऽ			
	मेरे मम प प	नी - -	सं - - -
	गुर दर स न	सं ऽ ऽ	त ऽ ऽ ऽ
	सं नी ध प	मंप ध -	पम प मग म
	आ ऽ रे ऽ	जीऽ ऽ ऽ	उ ऽ ऽ ऽ
ग रे ऽ			
ऽ ऽ ऽ			

राग माझ

X | 2 | 0 | 3

अन्तरा

			रे	म	प	प	नी	सं	–	नी	नी	–	–
			मे	रा	म	नु	लो	चै	ऽ	गु	र	ऽ	ऽ
–	–	–	सं	सं	सं	सं	रें	–	नी	सं	–	–	–
ऽ	ऽ	ऽ	द	र	स	न	ता	ऽ	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–											
ऽ	ऽ	ऽ											
			रे	म	प	प	नी	सं	–	नी	नी	–	–
			दा	रा	दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	रा	ऽ	ऽ
–	–	–	सं	सं	सं	सं	रें	–	नी	सं	–	–	–
ऽ	ऽ	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–											
ऽ	ऽ	ऽ											
			रें	रें	रें	गं	रें	–	–	–	–	–	–
			बि	ल	प	क	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	रें	गं	रें	गं	सं	रें	–	नी	सं	–	–	–
ऽ	ऽ	चा	त्रि	क	की	ऽ	नि आ	ऽ	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–	सं	सं	–	रें	नी	नी	–	ध	–	प	–
ऽ	ऽ	ऽ	त्रि	खा	ऽ	न	उ	त	ऽ	रै	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–	ध	–	प म	प	म ग	म	–	ग	–	रे	–
ऽ	ऽ	ऽ	सां	ऽ	ति ऽ	न	आ ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–	सं सं	सं	सं	रें	नी	–	–	ध	–	प	–
ऽ	ऽ	ऽ	बि नु	द र	स	न	सं	ऽ	ऽ	त	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	प	ध	–	पम	प	मग	म	–	ग	–	रे	–
ऽ	ऽ	पि	आ	ऽ	रेऽ	ऽ	जीऽ	ऽ	ऽ	उ	ऽ	ऽ	ऽ
–	–	–											
ऽ	ऽ	ऽ											

राग टोडी		दीपचन्दी ताल	
	2	0	3
			ध़ ध़ ग मे
			ह रि नि नु
ध़ - -	- - ध़ मे	ग़ - -	रे़ - ग़ रे़
रहि ऽ ऽ	ऽ ऽ न स	कै ऽ ऽ	म ऽ नु ऽ
स - नी	स - - -	- - सस	ध - ध़ ध़
मे ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ मेरे	प्री ऽ त म
स - -	स - - -	- - सस	स रे ग मे
प्रा ऽ ऽ	न ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हरि	प्र भु गु रू
ध़ - -	प - - -	- - -	- - - -
मे ऽ ऽ	ले ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
- - -	सं नी ध प	प प -	मे - मे -
ऽ ऽ ऽ	ब हु रि न	भ व ऽ	ज - लि ऽ
ध - -	मे ग रे ग	रे स -	
फे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	रा ऽ ऽ	
			ध़ ध़ ग मे
			ह रि बि नु
ध़ - -	- - ध़ मे	ग - -	रे़ - ग रे़
रहि ऽ ऽ	ऽ ऽ ऩ स़	कै ऽ ऽ	म ऽ नु ऽ
स - नी	स - - -	ऽ ऽ ऽ	
मे ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ		
			ध़ ध़ ग मे
			दा रा दा रा

ध – –	– – ध मे	ग – –	रे – ग रे
दा ऽ ऽ	ऽ ऽ दा रा	दा ऽ ऽ	दा ऽ दा रा
स – नी	स – – –	– – –	
दा ऽ रा	दा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	
			ध ध ग मे
			दा रा दा रा
ध – –	– – ध मे	ग – –	रे – ग रे
दा ऽ ऽ	ऽ ऽ दा रा	दा ऽ ऽ	दा ऽ दा रा
स – नी	स – – –	– – –	
दा ऽ रा	दा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	

राग टोडी

	2 अन्तरा	0	3
		ध़ ध़	मे -ध़ -
		मे रै	हीअ ऽ रै ऽ
सं - -	सं - - -	- - सं	सं - रें गं
तो ऽ ऽ	च ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ल	गी ऽ प्र भ
रें - -	सं - - -	- - गं गं	गं - गं रें
के ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हरि	नै ऽ नहु ऽ
सं सं -	ध़ - ध़ -	- - -	ध़ - मे ध
ह रि ऽ	प्र ऽ भ ऽ	ऽ ऽ ऽ	के ऽ ऽ ऽ
नी - -	ध़ - - -	- - -	
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	
		ध़	मे - ध -
		दा	रा ऽ दा ऽ
स - -	स - - -	- - स	स - रे ग
दा ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ दा	दा ऽ रा दा
रे - -	स - - -	- - -	
दा ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	
			ध़ ध़ मे ध
			स नि गु रि
सं - -	सं - - -	- - संसं	सं - रें गं
दइआ ऽ ऽ	लि ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हरि	ना ऽ मु द्रि

रें - -	सं - - -	- - धध	मे - ध ध
डा ऽ ऽ	इआ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ हरि	पा ऽ ध रू
सं सं -	नी ध - -	- - -	ग - मे -
ध रि ऽ	प्र भ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	के ऽ ऽ ऽ
ध - -	मे ग रे ग	रे - स	
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	
			ध ध ग मे
			दा रा दा रा
ध - -	- - ध मे	ग - -	
दा ऽ ऽ	ऽ ऽ दा रा	दा ऽ ऽ	
स - नी	स - - -	- - -	रे - ग रे
सा ऽ रा	दा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	दा ऽ दा रा

राग बैराडी

तीन ताल

X				2				0				3			
					स्थाई						प	प	ध	–	ग
											ह	रि	ज	ऽ	नु
प	–	प	प	मे	ध	मे	ग	मे	ग	रे	स	स	रे	ग	ग
रा	ऽ	म	न	ऽ	म	गु	न	गा	ऽ	वै	ऽ	जे	ऽ	को	ई
प	–	प	प	मे	–	ध	ध	सं	सं	सं	–				
निं	ऽ	द	क	रे	ऽ	ह	रि	ज	न	की	ऽ				
												स	रे	ग	ग
												द	रा	द	रा
प	–	प	प	मे	–	ध	ध	सं	सं	सं	–				
द	ऽ	द	रा	द	ऽ	द	रा	द	रा	द	ऽ				
												सं	नी	रें	–
नी	रेंनी	प	प	मे	ग	प	–	ग	रे	स		अ	पु	न	ऽ
गु	नुऽ	न	ग	व	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ					
											प	प	ध	–	ग
											ह	रि	ज	ऽ	नु
प	–	प	प	मे	ध	मे	ग	मे	ग	रे					
रा	ऽ	म	न	ऽ	म	गु	न	ग	ऽ	वै					
											प	प	ध	–	ग
											द	रा	द	ऽ	रा
प	–	प	प	मे	ध	मे	ग	मे	ग	रे					
द	ऽ	द	रा	द	रा	द	रा	द	द	रा					
											प	प	ध	–	ग
											द	रा	द	ऽ	रा
प	–	प	प	मे	ध	मे	ग	मे	ग	रे					
द	ऽ	द	रा	द	रा	द	रा	द	द	रा					

राग बैराडी

तीन ताल

X				2				0				3			
				अन्तरा								मे	–	ध	ध
												जो	ऽ	कि	छु
सं	सं	–	सं	सं	–	सं	सं	रें	–	सं					
क	रे	ऽ	सु	अ	ऽ	पे	ऽ	सुआ	ऽ	मी					
												मं	–	ध	ध
												दा	ऽ	दा	रा
सं	सं	–	सं	सं	–	सं	सं	रें	–	सं					
दा	रा	ऽ	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	रा					
												मे	–	ध	ध
												जो	ऽ	कि	छु
सं	सं	–	सं	सं	–	सं	सं	रें	–	सं	संसं	नी	रें	गं	रें
क	रे	ऽ	सु	अ	ऽ	पे	ऽ	सुआ	ऽ	मी	हरि	अ	ऽ	पे	ऽ
सं	–	सं	सं	रेंनी	प	रें	–	नी	–	प					
का	ऽ	र	क	माऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ	ऽ				
											संसं	नी	रें	गं	रें
											दिर	दा	रा	दा	रा
सं	–	सं	सं	रेंनी	प	रें	–	नी	–	प	=				
दा	ऽ	दा	रा	दिर	दा	रा	ऽ	दा	ऽ	रा	ऽ				
												मेमे	मे	ध	–
												हरि	आ	पे	ऽ
सं	–	सं	सं	सं	–	सं	नी	रें	–	सं	–	नीनी	रें	ग	रें
ही	ऽ	म	ति	दे	ऽ	वै	ऽ	सुआ	ऽ	मी	ऽ	हरि	आ	पे	ऽ
सं	सं	–	सं	रेंनी	प	रें	–	नी	–	प	–	पप	प	ध	ग
बो	ऽ	लि	बु	लाऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ	ऽ	हरि	आ	पे	ऽ
प	–	प	प	मे	ग	मे	ग	रे	–	स					
बो	ऽ	लि	बु	ला	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ	ऽ					

निष्कर्ष

भारतीय संगीत परम्परा में गुरमति संगीत अपने मौलिक सिद्धान्तिक और व्यवहारिक रूप के कारण विलक्ष्ण नवीन स्थान रखता है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में जहाँ कहीं भी सिक्ख धर्म के अनुयायी रहते है, वहीं उन के द्वारा गुरमति संगीत का प्रचार व्यवहारिक रूप में हो रहा है। गुरमति संगीत का आधार श्री गुरू ग्रन्थ साहिब है और सिक्ख धर्म में सदियों से गुरमति संगीत की व्यवहारिक परम्परा भी कायम हैं। गुरमति संगीत में प्रयुक्त होने वाले भिन्न भिन्न वाद्य इस परम्परा की मौलिकता विलक्ष्णता सृजन में सहायक होते हैं। यह वाद्य चाहे ऐशियाई और भारतीय संगीत में पहले भी प्रयुक्त हो रहे हैं और उन का प्रयोग जारी है फिर भी गुरमति संगीत में इन के प्रयोग का महत्व नवीन है। इस संदर्भ में इन का अध्ययन करते हुए हमने अपने कई कार्यों को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय हिन्दोस्तानी संगीत गायन, वादन, नृत्य (एतिहासिक दृष्टि से), में हमने हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचलित भिन्न भिन्न वाद्यों की वादन परम्परा वाद्य वर्गीकरण और व्यवहारिक उपयोगिता को इन वाद्यों की सौदंर्यात्मक प्रकृति के संदर्भ में अध्ययन का विषय बनाया गया है। इस अध्ययन से हमारे सामने यह तथ्य प्रत्यक्ष होता है कि हिन्दोस्तानी संगीत ने समूची वादन परम्परा समूचे एशियाई और विविध भारतीय लोकाई लोक संगीत परम्परा पर आधारित है। यह वाद्य सदियों के विकास के

बाद हम तक पहुँचे हैं। इस विकास में भिन्न-भिन्न संगीत परम्पराओं के देशी और शास्त्रीय संगीत रूपों ने अपना बुनियादी योगदान डाला है। इन वाद्यों का एक विशाल इतिहासिक विकास है और अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार इन के वादन की भौतिक वादन विधि और सौंदर्यात्मक आधार हैं। इन पर बजने वाली संगीत शैलियों के मूल सौंदर्य से अपने वर्तमान समय को गायन की तुलना में स्वतन्त्र वादन शैली और वादन विधि का निर्माण भी प्रकट होता है।

गुरमति संगीत प्रबन्ध के अध्ययन से यह प्रत्यक्ष हुआ है कि गुरमति संगीत की एतिहासिक व वरिष्ठ परम्परा रही है। इस संगीत का मूल स्रोत्र भी गुरू ग्रन्थ साहिब सिक्ख धर्म का आधार ग्रन्थ हैं बल्कि शब्द कीर्तन में श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की इसी वाणी में शब्द और संगीत का सिद्धान्तिक और व्यवहारिक सुमेल है जो गुरमति संगीत की शब्द कीर्तन परम्परा द्वारा निर्मित विभन्न गायन शैलियाँ, विभिन्न राग , विभिन्न कीर्तन चौकियाँ और श्री गरू ग्रन्थ साहिब में अंकित विभिन्न संगीतिक संकेत, शब्द कीर्तन की व्यवहारिक पेशकारी को विलक्षणता प्रदान करते है।

दूसरे अध्याय में हमने गुरमति संगीत की उत्पति और विकास का अध्ययन किया है क्योंकि हमारे शोध का मूल विषय गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्यों का संगीतिक विश्लेषण था इस लिये हमने सर्वप्रथम गुरमति संगीत की उत्पत्ति और विकास के विषय में अध्ययन करना उचित समझा। गुरमति संगीत की उत्पति और विकास का अध्ययन

करते हुए इस अध्याय में हमारे सामने यह तथ्य प्रकट हुआ है कि गुरमति संगीत की उत्पत्ति सिक्ख धर्म के प्रारम्भ से ही हो गई थी। सिक्ख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरू नानक देव जी ने शब्द द्वारा भाव वाणी को समूची लौकाई को अपना संदेश दिया और इस वाणी की पेशकारी कीर्तन द्वारा की गई। इस कीर्तन का आधार संगीत किये सिद्धान्तों और स्वरूप की अनुसारी थी। यही परम्परा बाद में भिन्न-भिन्न गुरू साहिबान की निगरानी और सरपरस्ती में विकसित होते हुए हमारे तक पहुँची है। वर्तमान समय में गुरमति संगीत के इस एतिहासिक विकास से प्रत्यक्ष है कि गुरमति संगीत व्यवहारिक तौर पर एक विशाल परम्परा के रूप में प्रचलित हो रही है। इसमें कीर्तन का अभिन्न अंग गायन और वादन है। जिससे गुरमति संगीत अन्य सभी भारतीय गायन शैलियों से अपनी अलग पहचान बनाता है। विभिन्न वाद्यों को प्रयोग भी इस संगीतिक परम्परा को विलक्ष्ण बनाता है। अपने आरम्भिक काल से लेकर अब तक वाद्यों के प्रयोग और प्रचलन ने गुरमति संगीतिक परम्परा के स्वरूप पर ना केवल प्रभाव डाला है बल्कि इसकी विशष्टता व मोलिकता को कायम रखा है।

गुरमति संगीत प्रबन्ध का विश्लेषण अध्ययन करने के लिये हम तीसरे अध्याय के अंतर्गत श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के आधार पर गुरमति संगीत का सिद्धन्तिक परिचय दिया है और इन की सम्मलित कार्यशीलता के द्वारा एक निशचित संगीत प्रबन्ध की सृजनता होती है। जिसमें विभिन्न वाद्य विशेष तौर पर तंत्री वाद्य गुरमति संगीत की

रागात्मक परम्परा को कायम रखने में अहम भूमिका निभाते हैं। तंत्री वाद्यों के इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण ही श्री गुरू नानक देव जी से लेकर विभिन्न गुरू साहिबानों ने इन्हें शब्द कीर्तन में अपनाया । और इन वाद्यों का विकास किया । इन तंत्री वाद्यों का संगीतिक विशलेषण करने से पहले इन वाद्यों का बुनियादी अध्ययन और गुरमति संगीत में इन के विकास के सम्बन्ध में जान लेना भी आवश्यक था।

अपने खोज कार्य के विष्य के अनुरूप गुरूमति संगीत में प्रयुक्त वाद्यों को हमने चतुर्थ अध्याय में विश्लेषित किया। जिसमें सबसे पहले गुरमति संगीत के वाद्यों का अध्ययन किया गया है। इन वाद्यों को पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है। यह हमारे अध्ययन से प्रत्यक्ष होता है। इन वाद्यों में से तंत्री वाद्यों को विभिन्न गुरू साहिबानों ने शब्द कीर्तन में समय समय पर प्रचलित किया। इन वाद्यों के वादन का मूल उद्देदश्य शब्द कीर्तन के साथ संगति करना ही है। परन्तु इस लिये इन वाद्यों के और इस परम्परा के मूल सिद्धान्त स्वरूप और प्रकृति का अध्ययन भी आवश्यक था। इस लिये इन तंत्री का संगीतिक वैज्ञानिक विशलेषण किया गया है।

अपने खोज विषय के पाँचवें और अन्तिम अध्याय में हमने गुरमति संगीत में प्रयुक्त तंत्री वाद्योां की परम्परा ने संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। इस अध्याय में हमने अध्ययन से हमारे सामने प्रत्यक्ष हुआ है कि गुरमति संगीत में प्रयुक्त वाद्य चाहे हिन्दोस्तानी संगीत में प्रचार अधीन है। परन्तु गुरमति संगीत में इन का प्रयोग नवीन एंव विलक्ष्ण है। हिन्दोस्तानी संगीत में इन वाद्यों के प्रयोग का उद्देदश्य

निरोल कलात्मक है। जबकि गुरमति संगीत में इन वाद्यों का प्रयोग वाणी के संचार के लिये संगीत सहायक के तौर पर किया जाता है, चाहे शब्द कीर्तन सम्बन्धी यह वाद्य स्वतन्त्र रूप में नहीं बजते बल्कि गायन की गई शब्द रचना का भार संचार के लिये ही प्रयुक्त किये जाते हैं। जिस में यह वाद्य मूल राग मूल गायन शैली पर कीर्तन की रचना के विधान की अनुसरी हो कर कार्यशील रहती है। गुरमति संगीत में इन वाद्यों की स्वतन्त्र होंद नहीं बल्कि यह श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के संगीत प्रबन्ध की समचे तौर पर अनुगामी है जैसे किसी कीर्तनकार के लिये श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के संगीत प्रबन्ध वाणी का ज्ञाता होना जरूरी है। इसी तरह इन तंत्री वाद्यों के वादकों के लिये या कीर्तनकारों के लिये जरूरी गुणों के इलावा अपने वाद्यों की मुहारत का होना भी लाजमी है। गुरमति संगीत के तंत्री वाद्यों के वादन के लिये गुरमति और संगीत की सिद्धि होनी लाजमी है।

उपरोक्त भिन्न-भिन्न अध्यायों में की गई विचार चर्चा से प्रत्यक्ष है कि गुरमति संगीत में तंत्री वाद्यों की बुनियादी उपयोगिता एवं महतव है। गुरमति संगीत परम्परा एक निशचित संगीत प्रबन्ध की धारणी परम्परा है। जिसमें राग इस परम्परा का विशेष आधार हैं। गुरमति संगीत में रागों के शुद्ध और मौलिक रूप को कायम रखना बुनियादी तौर पर जरूरी है। इसलिये गुरमति संगीत में रनान, सरंदा, ताऊस, दिलरूबा, इसराज, तबूरा , जैसे तंत्री वाद्य गुरू साहिबान ने गुरमति संगीत में प्रचलित किये। वर्तमान समय में चाहे बाद में हारमोनियम किये । वर्तमान समय में चाहे बाद में हारमोनियम का प्रयोग

गुरमति संगीत में होने लग गया है परन्तु इस से गुरमति संगीत की रागात्मक परम्परा का बुनियादी नुकसान हुआ है। हारमोनियम के इस प्रयोग द्वारा जहाँ गुरमति संगीत में यह वाद्य लुप्त हुए हैं वही गुरमति संगीत के राग और उनके सीधे मौलिक स्वरूप में यह परम्परा से बिछुडते जा रहे हैं। फलस्वरूप गुरू साहिबान द्वारा स्थापित की गई मौलिक और नवीन गुरमति संगीत परम्परा अपने शुद्ध स्वरूप से दूर जा रही है इसलिये गुरमति संगीत में तंत्री वाद्यों को पुनः जीवित करना बेहद जरूरी हो गया है।

वाद्यों के यह चित्र गुरमति संगीत विभाग, पटियाला यूनिवर्सिटी से लिये गये हैं।

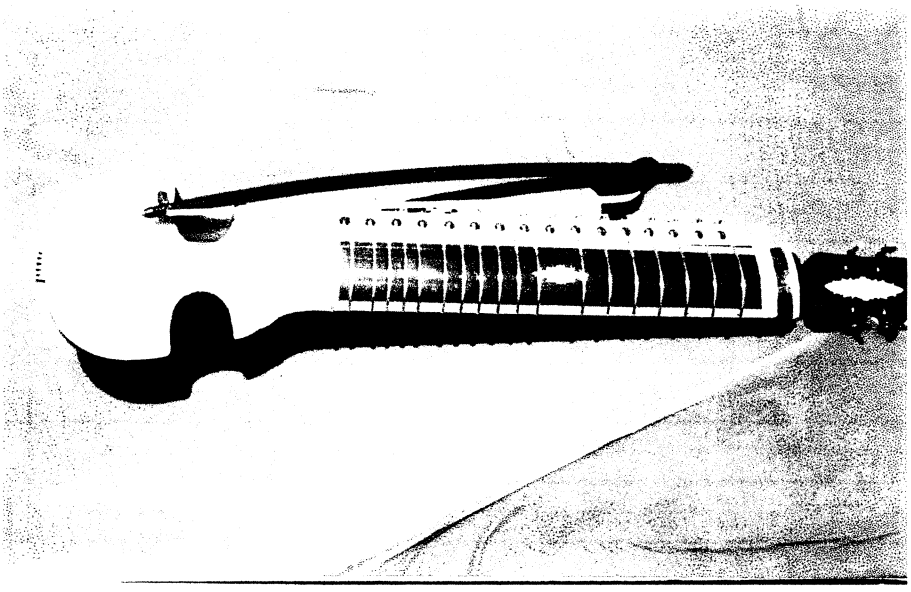

दिलरुबा

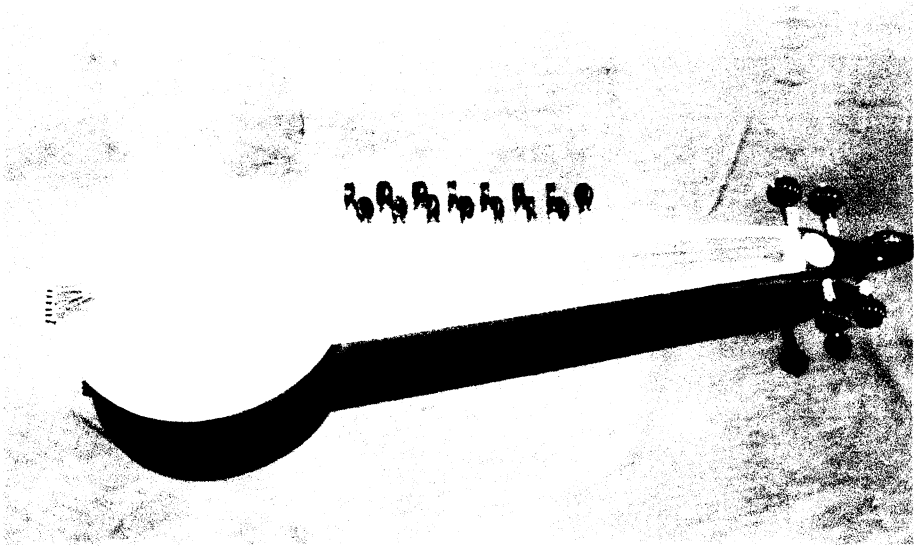

रबाब

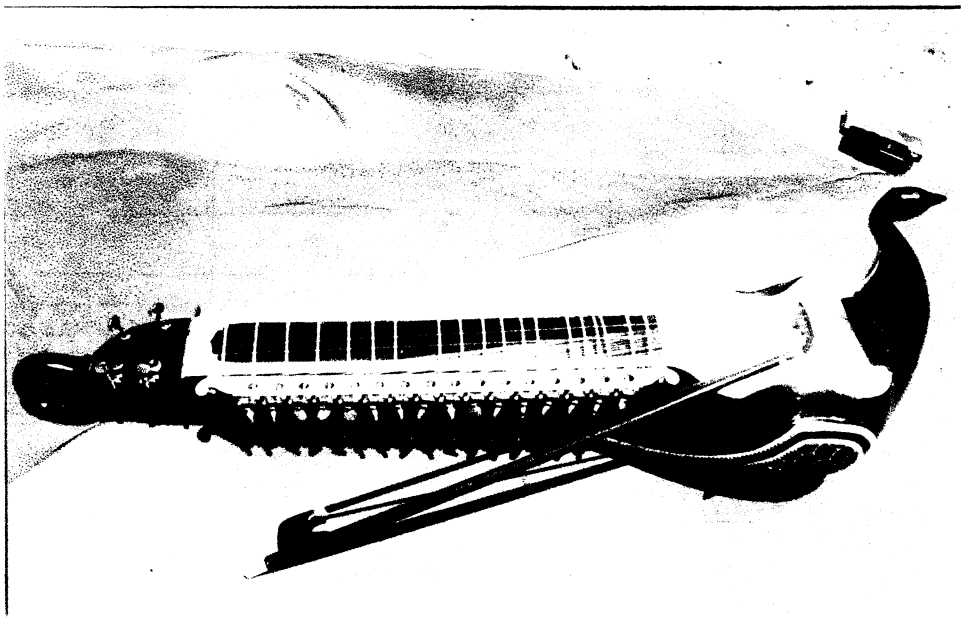

ताऊस

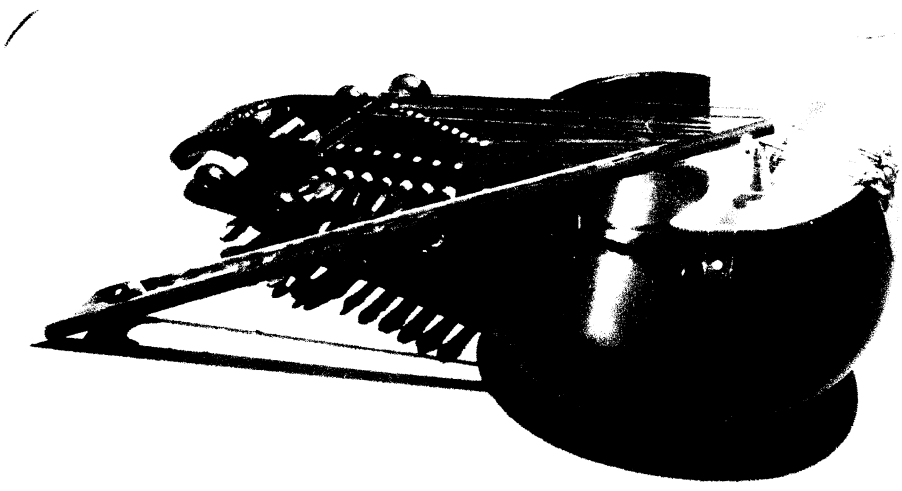

सरंदा

पुस्तक सूचि

हिन्दी

1. ***आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत,*** डा. हुक्म चन्दए ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, *जवाहरनगर*, दिल्ली, 1998.
2. ***गुरमति संगीत : परिचायात्मक अध्ययन***, डा. हरजस कौर, संगीत प्रकाशन, 11-फोर्ट बाजार, पटियाला, 1993.
3. ***तफसीले-ए-मौसीकी,*** मुहम्मद अहपफजल खां, अचीपसन कालेज, लाहौर, 1931.
4. ***निबंध संगीत*** (संपा) लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रथम संस्करण, संगीत कार्यलय हाथरस (उ.प्र), मई 1978.
5. ***पंजाब की संगीत परम्परा,*** डा. गीता पेंतल, राधा पब्लीकेशन, नई दिल्ली, 1988.
6. ***प्राचीन भारत में संगीत,*** डा. धर्मावती श्रीवास्तव, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1967.
7. ***भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव :*** असद अली, एच.ई.एस. प्रकाशन, दिल्ली - 6, प्रथम संस्करण, जुलाई 1971.
8. ***भातखण्डे संगीत शास्त्र (हिन्दोस्तानी संगीत पद्धति),*** प. विष्णु नारायण भातखण्डे, (संपा. एंवम् प्रकाशक, लक्ष्मी नारायण भातखण्डे, (संपा एंवम् प्रकाशक, लक्ष्मी नारायण गर्ग), संगीत कार्यलय हाथरस, मार्च 1957.
9. ***भारतीय संगीत,*** राम अवतार वीर, वीर संगीत प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986.
10. *भारतीय संगीत वाद्य*, डॉ० लाल मणि मिश्र, संगीत कला विहार, अगस्त 1974.
11. ***भारतीय संगीत का इतिहास,*** उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, (उ.प्र) चतुर्थ संस्करण, 1984.
12. ***भारतीय संगीत का इतिहास,*** भगवत शरण शर्मा, संगीत कार्यलय हाथरस, दूसरा संस्करण 1982.
13. ***भारतीय संगीत का इतिहास,*** डा. शरचचन्द्र श्रीधर परांजपे, चौखम्बा विद्या भवन चौक, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 1985.
14. ***भारतीय संगीत का इतिहासः आध्यात्मिक एवं दार्शनिक,*** डा. सुनीता शर्मा, सजंय प्रकाशन, 100-184 ब्लाक- ए, सोम बाजार, सारूप गभरी एक्सटेंशन, दिल्ली, 1996
15. ***भारतीय संगीत एक एतिहासिक विश्लेषण,*** डा. स्वतन्त्र शर्मा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988.
16. ***भारतीय संगीत का दर्शनपरक अनुशीलन,*** डा. विमलामुसलगाँवकर संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता, 1995.
17. ***भारतीय संगीत में इतिहास,*** पं. रविशंकर शर्मा, 10 दुकानी स्ट्रीट, खुरजा, प्रथम संस्करण, अगस्त 1981.

18. ***भारतीय संगीत वाद्य,*** डा. लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, बीध45-47, कनाट पलेस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, जुलाई 1973, द्वितिय 1974.
19. ***भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,*** डा. अरूण कुमार सेन, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1973.
20. ***मध्यकालीन धर्मों में शास्त्रीय संगीजत का तुलनात्मक अध्ययन,*** जतिन्द्र सिंह खन्ना, अभिषेक पब्लिकेशंस, एस.सी.ओ.57-58, 59, सेक्टर - 17सी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, 1992.
21. ***मुसलमान और भारतीय संगीत,*** आचार्य वृहस्पति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1974.
22. ***वैदिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*** (भाग दो), सुधिकान्त भारद्वाज, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1989.
23. ***विश्व संगीत का इतिहास,*** अमलदास शर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1990.
24. ***संगीताजलि*** (भाग 5), पं. ओंकार नाथ ठाकुर, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1958
25. ***संगीत विशारद,*** बसंत (संपा-लक्ष्मी नारायण गर्ग), संगीत कार्यलय, हाथरस, 20वां संस्करण, अगस्त 1994.
26. ***संगीतायन,*** अमलदास शर्मा, आर्य प्रकाशन मण्डल, गाँधी नगर, दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण, जनवरी 1984.
27. ***संगीत बोध,*** डा. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.त्र), तृतीय संस्करण, 1986.
28. ***संगीत शास्त्र,*** के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ (उ.प्र), 1968.
29. ***संगीत भाष्य,*** श्री पद बन्धोपाध्याय, बी.आर.पब्ली शिंग कारपोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985.
30. ***संगीत चिंतामणि,*** आचार्य वृहस्पति, संगीत कार्यलय, हाथरस (उ.प्र) 1959). संपा. लक्ष्मी नारायण गर्ग, द्वितीय खण्ड बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987.
31. **सितार तंरगिनी**, प्रो तारा सिंह, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला, 1980.
32. **सितार सिंद्धान्त**, जगदीश नारायण, राजकमल प्रकाशन, 1989.
33. ***स्वतन्त्र कला शास्त्र,*** डा. कान्तिचद्र पाण्डेय चौखम्भा संस्कृत, वाराणसी, 1967
34. ***स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान,*** डा. इन्द्राणी चक्रवर्ती, चौखम्भा ओरियन्टालिय, वाराणसी, 1979.
35. ***ऋगवेदीय ब्राह्मणों का सांगीतिक अध्ययन,*** डा. बलवीर आचार्य, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1991.
36. ***संस्कृत साहित्य का इतिहास,*** वाचस्पति गैरोला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982
37. ***हिन्दु धर्म, सर मोनियर बिलियम्स*** (रूपान्तरकार, मानसिंह), भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1972.

37. ***हिन्दोस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास,*** डा. सुनंदा पाठक, राधा पब्लीकेशनज, नई दिल्ली, 1992.

38. ***मध्यकालीन काव्य, चित्र एवं संगीत में राग तत्त्व,*** डा रघुनन्दन प्रसाद तिवारी

कोष, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1972।

उर्दु– हिन्दी शब्द कोष (संकलनकर्ता) मुहम्मद मुस्तफा खां, मधाह, हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रयाग), लखनऊ (उ.प्र) चतुर्थ संस्करण, 1980.

बृहत हिन्दी कोष, (संपा) कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाये, मुंकदी लाल श्रीवास्तव, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, समंत 2003, तृतीय संस्करण, रामनवमी संवत् 2013.

भारतीय संगीत कोष, विमलकाँत राय चौधरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975

संगीत कोष, विमलकाँत राय चौधरी, भारतीय ज्ञान पीठ, प्रकाश, नई दिल्ली, 1975

पत्रिकाएं

संगीत, संगीतकार्यलय हाथरस, (उ.प्र), 1973

संगीत, गुरमति संगीत अंक (संकलक) डा. गुरनाम सिंह (संपा) डा. लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यलय, हाथरस, जनवरी–फरवरी 1997.

समाजिक विज्ञान दर्पण, मार्च 1972.,

PUNJABI

1. ***आदि ग्रन्थ, राग कोष,*** डा. गुरनाम सिंह, पवित्र प्रमाणिक प्रकाशन, पटियाला, 1983
2. ***गुरबाणी अध्ययन : नव परिपेख,*** डा. अमृतपाल कौर, निशांत प्रकाशन, 479, सैक्टर 19, फरीदाबाद (हरियाणा) 1990.
3. ***गुरप्रताप सूरज ग्रन्थ,*** भाई सन्तोख सिंह, खालसा समाचार, हाल बाजार, अमुतसर, 1980.
4. ***गुरमति संगीत,*** प्रथम भाग, गुरद्वारा गुरू नानक सतसंग सभा 5/11 बाऊन रोड, लुधियाना।
5. ***गुरमति संगीत, प्रबन्ध ते पासार,*** गुरनाम सिंह (डा.) पब्लीकेशन बिऊरो, पंजाबी युनीवर्सिटी, पटियाला 2000
6. गुरमति संगीत: विभिन्न परिपेख, (संपा) गुरनाम सिंह, पब्लीकेशन बिऊरों पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला 1990.
7. गुरमति संगीत विषय वजों पहचान ते सार्थकता, शोध पत्र, डा० गुरनाम सिंह, पंजाबी युनीवर्सिटी, पटियाला, 1990.
8. गुरबाणी संगीत, बारे, डा० दर्शन सिंह नरूला, सट डी सरकल मलोट, 1985
9. ***वारां भाई गुरदास,*** ज्ञानी हजारा सिंह पं. द्वारा तैयार डा. वीर सिंह द्वारा संशोधित और संपादित, प्रकाशक : ज्ञानी महान सिंह, मैनजर खालसा समाचार, अमृतसर, 1972.
10. ***तवारीख गुरू खालसा,*** ज्ञानी लाल सिंह, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, 1940

11. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब दर्पण,* (पोथी छः) प्रो. साहिब सिंह, राज पब्लीशरज़, जालन्धर (22 सितम्बर 1963) दूसरी छाप मई 1970.
12. *श्री गुरू अमरदास, राग रत्नावली,* प्रो. तारा सिंह, लोक संपर्क विभाग, पंजाब, चंढीगड़ 1979
13. *श्री करतार पुर बीड के दर्शन,* भाई जोध सिंह, पब्लीकेशन बिऊरो, पंजाबी यूनीवर्सिटी पटियाला, 1990.
14. *सुर सिमरण संगीत,* (भाग 5), सन्त सरवण सिंह गन्धर्व, फगवाडा, 1978-79
15. *स्मृति ग्रन्थ,* अदूति गुरमति संगीत सम्मेलन, 1991
16. सिक्ख धर्म अते संगीत, ए. एस गौसल पंजाब यूनीवर्सिटी टैक्सट कार्ड चण्डीगढ़ 1982.
17. *दशम ग्रन्थ* (प्रकाशक) भाई जवाहर सिंह कृपाल सिंह ऐंड कंपनी, बाजार भाई सेवा अमृतसर
18. *श्री गुरु ग्रन्थ कोष,* भाई साहिब डा. वीर सिंह, खालसा ट्रस्ट सोसाइटी, अमुतसर, 1983 (रजिस्ट्रड मुताबक ऐक्ट 21 सं : 1960)
19. *प्रो० तारासिंह*, सुखी तंकार पंजाबी युनीवर्सिटी, पटियाला, 1972.
20. *पंजाबी कोष,* भाषा विभाग, भाग दूसरा भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1970
21. *पंजाबी साहित्य कोष,* भाग प्रथम, पंजाबी युनीवर्सिटी पटियाला, 1971
22. *विस्माद नाद,* (संपा) डा. गुरनाम सिंह, अक्तूबर 1992.
23. *गुरमति संगीत विषय वजों पहचान ते सार्थकता,* शोध पत्र, डा. गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत अंक, जनवरी पफरवरी 1997.
24. **भारती संगीत दा इतिहास योगेन्द्रपाल शर्मा**, बच्चित्तर सिंह पब्लीकेशन नियूरो, पंजाबी यूनीविर्सिटी, पटियाला 1988.
25. *चोणवीआं कापफीआं,* (संपा. सुरिन्द्र सिंह काहली), पंजाब, भाषा विभाग, 1973.
26. *साहित्यकोष, परिभाषिक शब्दावली,* पब्लीकेशन बिऊरो, पंजाबी युनीवर्सिटी, पटियाला, 1989.
27. *पंजाबी लोक संगीत : सिधांत ते सरुप,* डा. गुरनाम सिंह पब्लीकेशन बियरो पंजाबी यूनीविर्सिटी, पटियाला 1998.
28. *आदि ग्रन्थ का संगीत प्रबन्ध,* प्यारा सिंह पदम,
29. *गुरवाणी संचार विज्ञान,* डा. अमृत पाल कौर पब्लीकेशन बियरो पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला 1990
30. *श्री गुरू ग्रन्थ साहिब,*
31. *गृरु शब्द रत्नाकर महान् कोष,* भाई काहन सिंह नाभा, नैशनल बुक शाम, पलईअर गार्डन मारकिट, चांदनी चौंक, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1996

ENGLISH

1. ***An Introduction to Indian Music***, B.C Deva, the director, Publications Division ministry of Information and Broadcasting Government of India, Patiala House, New Delhi, Second Edition, Aug 1992.
1. ***Indian Music,*** Shahinda Begom Fuzee Rehamin, william marchant & Co. The Cupil Gallery, 5 Regent Street, London, 1914.
2. ***Indian Musical Traditions,*** vaman Rao. H.Deshpande, Popular prakashan private limited, 35-C, Pandit Madan mohan malaviya Marg, Popular Press Blodg. Tardeo, Bombay, Second edition, 1987.
3. ***Jayadeva***, suniti Kumar chatterji, Shitya Akademi, New Delhi, Second edition, 1981.
4. ***Musical Insruments,*** B.C. Deva, National Book trust India, A-5 Green Park, New Delhi, Third Reprint, 1993.
5. ***Musical Instruments of India - History and Development,*** Ram Avtar Vir, Pankaj publications, Cambridge Book Depot, 3 Regal Building, New Delhi-I, 1983.
6. ***Musical Instruments of North India,*** Robert L. Hardgrave Jr. Stephen M. Slawer, Manohar Publishers & Distributors 2/6 Ansari Road, Daryaganj, New Delhi 1997.
7. ***My Music My Life,*** Ravi Shankar, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 5 Ansari Road, New Delhi, First published in India 1969, Eight impression, 1979.
8. ***Sangeet Prabandh of Gurbani,*** Adutee Gurmat Sangeet Sammelon Oct.1991, Dr. Gurnam Singh.
9. ***Sikh Sacred Music,*** Sikh Sacred Music Society, A-209, Defence Colony, New Delhi-3, 1967.
10. ***Sri Guru Granth Sahib, 4 Vols, English version,*** (Trans. by Dr. Gopal Singh, Gurdas Kapoor & Sons Pvt. Ltd., Delhi, 1960.
11. ***String Instruments of North India,*** Sharmistha Ghosh, Eastern Book Linkers, 5825, New Chandrawal, Jawahar, Nagar, Delhi, 1988.

12. ***The Music and musical Instruments of Southern India and Deccan,*** C.R. Day, Low price publicatins, 425, Nimri, Ashok Vihar, Phase IV, Delhi, Reprinted 1990.
13. ***The Music of Hindustan,*** A.H. Fox Strangways, oriental Books Reprint Corporation,54, Rani Jhansi Road, New Delhi, 1975
14. ***The Music of India : Legend and History,*** H.A. Popley, Award Publishing House, Darya Ganj, Delhi, 1986.
15. ***Universal History of Music,*** S.M. Tagore, Low price publications, Delhi, Reprint, 1990.

Indian Culture, Lakshman Sawroop (Dr.) The Rigveda and Mohanjodaro, October 1937

The Penguin Dictionary of India Classical Music, Raghva R.Menon, Penguin Books India Pvt. Ltd, 210, Chiranjit Tower, 43, Nehru place, New Delhi, 1995

The Mirror, Shikhar Hattangadi, J.C. Jain Sons Vartaman Press, Samachar Marg, Fort, Bombay, May 1980.

Thesis

A Musicological study of Guru Nanak Bani, Dr. Gurnam Singh, Punjab University, Chandigarh, 1988.

The Nature and place of music in Sikh Devotional Music and its affinity with Hindustani Classical Music, Dr. A.S. Paintal, faculty of Music & Fine Arts, Delhi University, Delhi, 1971.

692002